बुन्देली बसंत

२००४



पंजी. क्र. MPHIN-17761/12/1/2002-TC

बुन्देली साहित्य, संस्कृति तथा इतिहास को समर्पित -

बुन्देली बसन्त

अंक ६, वर्ष ६, १७ फरवरी २००८

❄

संरक्षक :
शंकरप्रताप सिंह बुन्देला 'मुन्नाराजा'
राजमहल परिसर, छतरपुर (म.प्र.)
☎ : (०७६८२) २४१२६०, २४१४२६

❄

संपादक :
डॉ. बहादुर सिंह परमार
एम.आई.जी.-७, न्यू हाउसिंग बोर्ड कॉलोनी,
पन्ना रोड, छतरपुर (म.प्र.) ४७१००१
☎ : ९४२५४७४६६२

❄

सह संपादक
डॉ. के.एल. पटेल
रेडियो कॉलोनी के सामने, पन्ना रोड, छतरपुर (म.प्र.)
☎ : ९४२५८७९७७३

डॉ. हरिसिंह घोष
घोषयाना, संकटमोचन मार्ग, छतरपुर (म.प्र.)
☎ : ९४२५१४२०६६

शुभकामनाओं सहित

प्रकाशक :

बुन्देली विकास संस्थान

बसारी, जिला छतरपुर (म.प्र.) ☎ : (०७६८६) २८१२२२

- संपादन एवं प्रबंध पूर्णतया अवैतनिक एवं अव्यावसायिक

- **आवरण चित्र :**
  राम कुमार सोनी,
  ग्वालमगरा, छतरपुर (म.प्र.) ☎ : (०७६८२) २४३८३६

- **सहयोग राशि :**
  १००/- (एक सौ रुपये)

- **संगणकीय अक्षर संयाजन :**
  जीतेन्द्र बस्वापट्टनकर, छतरपुर
  ☎ : ०६३२६७०५१६३

- **मुद्रक :**
  जिला सहकारी संघ मुद्रणालय मर्या०,
  छतरपुर (म.प्र.) ☎ : (०७६८२) २४८६८६

अनुक्रम

भाषा, साहित्य एवं आलोचना

बुन्देली परम्परा और संस्कृति

इतिहास और पुरातत्व

बुन्देली काव्य

बुन्देली गद्य

अन्य

संपादकीय –

आज हमारे देश का सतत व तीव्रगति से विकास हो रहा है। वह हमें भौतिकता से चमत्कृत, वैज्ञानिक व तकनीकी संसाधनों से परिष्कृत तथा बौद्धिक–तार्किक विश्लेषण से युक्त मात्र सतही दिखाई देता है। किन्तु गहन अनुभूति के स्तर पर सांस्कृतिक अवमूल्यन, नैतिक पतन, सामाजिक विघटन एवं सांप्रदायिक संकीर्णता आदि अनेक विषमताएँ और विसंगतियाँ हृदय को विचलित कर देती है। हमें तो ऐसा लगता है कि यह गौरवशाली विकास की परम्परा हमारे समाज में गरीब और अमीर के बीच खाई को लगातार चौड़ा कर रही है। अपने चारों ओर विद्रूपता का विकट तांडव अट्टहास करता सुनाई देता है और समस्त आशावादिता के बावजूद भारत का भविष्य संकट के विकट बादलों से आच्छादित दिखाई देता है। अशिक्षा, अंधविश्वास, भ्रष्टाचार, जनसंख्या वृद्धि, भ्रूण हत्या, दहेज प्रथा, बेरोजगारी आदि अनेक समस्याएँ हमारे समक्ष मुँह बाये खड़ी है। जात–पाँत के आधार पर शोषण और भाषा, धर्म तथा क्षेत्र के आधार पर बँटवारा जैसी विकृतियाँ भारतीय समाज को खोखला बनाए जा रही है। राजनैतिकों में प्रबल इच्छा शक्ति का अभाव परिलक्षित हो रहा है और चाटुकारिता का चमत्कारी शास्त्र सफलता के सारे मापदंड निर्धारित कर रहा है। आज योग्यता, निष्ठा एवं मानवीयता का कोई मान नहीं, वैयक्तिक कर्तव्य, सामाजिक दायित्व और राष्ट्रीय चेतना का भान नहीं, अपनी परम्परा, अस्मिता और विरासत के प्रति सम्मान नहीं। आदर्शों का सर्वथा अभाव युवा मन को दिशा देने में असमर्थ है। ऐसी स्थिति में हम जैसे साधारण नागरिकों के मन में यह प्रश्न बार–बार उभरता है कि क्या होगा हमारा भविष्य? कहां ले जायेगी पाश्चात्य प्रभाव की यह आक्रामक आँधी और कब पूरा होगा वह सुनहरा स्वप्न जो हमारे स्वतंत्रता सेनानियों ने सर्वस्व बलिदान करते समय देखा था? इन प्रश्नों के उत्तर खोजते हुए मन में यही उत्तर बार–बार आता है कि लोगों को अपनी गाँवों की जड़ों की ओर लौटना होगा। हमें गाँवों में विकास की गंगा खेतों के माध्यम से बहाना होगी। गाँवों में धन्ना सेठों के कारखानों हेतु जमीनों की जबरन खरीदी बन्द करना होगी। गाँवों में अधोसंरचना से युक्त शिक्षा व स्वास्थ्य की सुविधाएँ उपलब्ध कराना होगी। इसके लिए दृढ़ इच्छा शक्ति के साथ निर्णय लेने होंगे। आज गांव और शहर के बीच विकास की खाई बढ़ने से, रोजगार के साधन गाँव में न होने से शहर की ओर भीड़ भाग रही है जिससे शहरों में भी नई समस्याएँ पैदा हो रही हैं तथा ग्रामीण किसान भी मजदूर बनकर पेट की खातिर अपनी अस्मिता खो रहा है।

आज हमें अपने लोगों में यह भावना भरना होगी कि जो आपका स्थानीय है, वह हेय नहीं है। चाहे वह भाषा हो, खानपान हो या जीवन जीने का तरीका। इसी परिप्रेक्ष्य में जब हम अपने अँचल बुन्देलखण्ड की ओर देखते हैं तो पाते हैं कि सूखे की विकराल मार झेल रहा यह अँचल संसाधनों से भरपूर है। कमी है तो मात्र इच्छा शक्ति व दृष्टि की। आज हम अपनी स्थानीय बोली में बात करने में हेटी समझते हैं। स्थानीय खान–पान के स्थान पर बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा प्रचारित 'अंकल चिप्स' खा रहे हैं एवं 'कोका–कोला' पी रहे हैं। इससे बचाने हेतु नई पीढ़ी को संस्कार देना होंगे। इन्हीं संस्कारों को केन्द्र में रखकर प्रतिवर्ष बुन्देली विकास संस्थान द्वारा 'बुन्देली उत्सव' का आयोजन किया जा रहा है। वह अपने उद्देश्य में कितना

सफलीभूत हो रहा है, यह निर्णय तो आप ही ले सकते है। मै इतना जरूर विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि बसारी के आसपास के इलाके की हवा बदली है। लोगों में अपनी माटी, अपनी संस्कृति के प्रति लगाव पैदा करने में कुछ हद तक हम सफल हुए हैं। उपेक्षित लोककलाकारों को मंच मिला है साथ ही रोजगार भी मिला है।

लोक कलाकारों में बहुत कुछ नया करने की भावना रहती है। वे नया गढ़ते हैं, स्वाभाविक पुराने से रस प्राप्त करते हैं इसी से विकास की परम्परा बनती है। यही चक्र लोक संस्कृति में भी निरन्तर चलता है। हमारी परम्परा नए और पुराने के बीच संतुलन की रही है, दोनों का समीक्षण करने के बाद जो श्रेयस्कर हो, उसी को ग्रहण करना उचित होगा। आज बुन्देली लोक संस्कृति, साहित्य तथा इतिहास के क्षेत्र में काम करते हुए ध्यान रखना होगा कि इसे केवल संरक्षण की जरूरत नहीं है बल्कि इसका संवर्धन भी करना होगा। संवर्धन हेतु हमें संस्कृति के उन पहलुओं को उद्घाटित करना होगा, जो मानवीय अस्मिता से आपूरित हो और हमें संघर्षपूर्ण जीवन जीना की कला सिखायें। हमें साहित्य के उन पक्षों का चिन्तन व विश्लेषण करने की जरूरत है, जो आज की विषम परिस्थितियों में ढाँढस बँधाकर आगे बढ़ने को प्रेरित करें। इतिहास की उन गलतियों से भी सबक लेने की भी जरूरत है जिससे हमारा समाज अधोपतन को जाता है। इतिहास से न केवल सबक लें बल्कि त्रुटियों का परिमार्जन भी करें।

आज छोटे राज्यों की माँगों के परिप्रेक्ष्य में बुन्देलखण्ड राज्य निर्माण का आन्दोलन चल रहा है। इसके पीछे प्रबल भावना यह है कि बुन्देलखण्ड राज्य निर्माण से दो प्रान्तों में बँटे बुन्देलखण्ड का जहाँ एकीकरण होगा वहीं इससे आम आदमी का विकास ज्यादा सुभीते से हो सकेगा। लोक संस्कृति, साहित्य, कलाओं का अधिक विकास हो सकेगा। हमें अपनी कलम के माध्यम से ऐसा परिवेश निर्मित करना है, जो अन्यायमुक्त बुन्देलखंड राज्य बनाने में सहायक हो।

हर बार की तरह इस बार भी हमने बुन्देलखण्ड के विविध रूपों को इस अंक में समेटने का प्रयत्न किया है। १८५७ के स्वातंत्र्य समर में बुन्देलखण्ड बांकुरो के योगदान का, उसका साहित्य पर प्रभाव केन्द्रित आलेखों को हमने स्थान दिया है। बुन्देली गद्य की परम्परा में ललित निबंध, संस्मरण, कथायें आदि पाठकों का परिचय कराया है। बुन्देली नाटक अपेक्षित है। कवियों ने लोक भावनाओं को वाणी देते हुए सूखा व उसकी मार पर केन्द्रित कलम चलाई है। इसके साथ जल स्रोतों व उनके संरक्षण की चर्चा इस बार के अंक में है। उम्मीद है कि आपकी आशाओं पर हम खरे उतरेंगे। आपकी प्रतिक्रियाओं की भी हमें अपेक्षा रहेगी।

विगत बसन्त से इस बसन्त तक हमारे बीच से श्रीनिवास शुक्ल छतरपुर, डॉ. मोहन लाल गुप्त 'चातक' झांसी, डॉ. बलभद्र तिवारी सागर, श्री लक्ष्मण सिंह गौर ओरछा, डॉ. रघुवीर श्रीवास्तव जबलपुर, श्री शिवानन्द मिश्र 'बुन्देला' उरई, मयंक त्रिपाठी झांसी, शिवकुमार श्रीवास्तव सागर कायिक रूप में हमसे बिछुड़े है, किन्तु उनकी रचनाएँ हमारा पथ प्रदर्शन करती रहेंगी। 'बुन्देली बसन्त' परिवार इन रचनाकारों को अश्रुपूर्ण श्रद्धांजलि अर्पित करता है।

बहादुरसिंह परमार

चिट्ठी मिली अपुन की

एफ–८९/२७, तुलसी नगर,
सेकेण्ड स्टॉप, **भोपाल**

आपकी संस्था द्वारा प्रकाशित 'बुन्देली बसन्त' वार्षिक स्मारकायें अचानक हाथ लग गयी तथा उन्हें पढ़ने का सुअवसर प्राप्त हुआ, इनकी विषयवस्तु अत्यंत रोचक एवं ज्ञानवर्धक है तथा इनमें बुन्देलखण्डवासियों, जो बुन्देलखण्ड से कहीं अन्यत्र प्रवास कर रहे हैं तथा अपनी भावी पीढ़ी को बुन्देली साहित्य, संस्कृति, परम्परा, पर्व, नृत्य एवं चित्रकला आदि से परिचय कराने का भागीरथी प्रयास प्रशंसनीय है, आपकी संस्था एवं संस्था के कर्णधारों को ईश्वर शतायु प्रदान करे।

लोक परम्पराओं के अन्तर्गत आपके लेख जैसे 'सावनी', 'बीजासेन मैया', 'कारसदेव' कार्तिक स्नान एवं लोकपर्व में 'नौरता', 'मामुलिया', 'टेसू' सारगर्भित एवं संग्रहणीय है। बुन्देलखण्ड की ये परम्परायें, पर्व, लोकगीत, फागें कहावतें, बुआउल, खेल, नृत्य, रसोई आदि बिलुप्ति के कगार पर हैं। इन्हें संजीवनी प्रदान कर बुन्देलखण्ड की यह तो सेवा कर रहे हैं। इनके संरक्षण एवं संवर्धन हेतु प्रतियोगिताओं, स्पर्धाओं का आयोजन हर वर्ष बसारी (छतरपुर) में हो रहा है यदि इनका आयोजन अन्य बुन्देली अंचलों जैसे टीकमगढ़, दतिया, जबलपुर, सागर, झांसी, मऊरानीपुर, ललितपुर आदि जगह हो सके तो इनको प्रचार–प्रसार प्रचुर मात्रा में हो सकेगा तथा इन अंचलों के लोगों की इसमें सहभागिता बढ़ेगी। कम से कम इस संबंध में प्रारंभिक स्तर पर गोष्ठियाँ, चर्चायें, परिचर्यायें का आयोजन तो हो ही सकता है।

— चौ. धीरेन्द्र यादव, प्रदेशाध्यक्ष
मुलायम सिंह यादव यूथ ब्रिगेड मध्यप्रदेश

सीकर भवन, ठंडी सड़क, **दतिया**

सजी/सँवरी, बुंदेली–मिठास सामग्री, संजोये १२८ पृष्ठीय अंक ८, १७ फरवरी २००७ वाली 'बुन्देली बसन्त' पढ़ते ही रह गया। गागर में सागर की उपमा ही सही उतरती है। अब निम्न पंक्तियाँ बुन्देली भाषा की भी पढ़कर आनन्द ले लें —

"नोनीं, मिली बसंत बुंदेली, खूब–खूब अलबेली।
गेटअप नोनो लगे सुहानो, चित्र–कथा है नवेली।
कछु लेखन की गरिमा भारी, हथ लेखन अठखेली।
संपादक 'परमार बहादुर' सीकर मेहनत झेली।।"

— डॉ. एल.आर. सोनी 'सीकर'

ग्राम सुरौली, जिला **हमीरपुर** (उ.प्र.)

बुन्देली बसन्त का नया अंक प्राप्त हुआ। कलेवर ने मन प्रसन्न कर दिया। ईसुरी जैसे कवियों पर नई दृष्टि देने हेतु कृपया लेखकों से आग्रह करें यह भी निवेदन है कि पुरस्कार हेतु कृपया हमारे क्षेत्र की भी जानकारी लेने का कष्ट करें। बुन्देली गद्य में आलेखों को प्राथमिकता मिलने से बुन्देली समृद्ध होगी। सम्पादक मण्डल का प्रयास सराहनीय है।

— बृजकिशोर यादव

ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, **रीवा**

आदरणीय परमार जी, आपके द्वारा सम्पादित बुन्देली बसन्त पत्रिका लगातार पढ़ने को मिल रही है। उत्तरोत्तर प्रगति के लिए आप सभी को बधाई। सम्भवतः वर्तमान में बुन्देलखण्ड की एकमात्र ऐसी पत्रिका है जो बुन्देली हेतु समर्पित है। इसकी शोधात्मक सामग्री शोध छात्रों हेतु काफी उपयोगी सिद्ध हो रही है। शुभकामनाओं सहित।

— डॉ. पी.आर. तिवारी
प्राध्यापक, दर्शन शास्त्र

ग्राम उटियाँ, पोस्ट धरौन, जिला महोबा (उ.प्र.)

बुन्देली बसन्त का अंक आमुख से पूर्णता तक सरस, रोचक, क्रमबद्ध, कलात्मक, सुष्ठु एवम् विद्वता से ओतप्रोत मिला। सम्पादक जी को अनन्ताशीष वचन। कुछ काव्य भावनायें प्रस्तुत हैं–

लग रए हैं जब सें बसारी में मेले।
रैहैं अब सब मिल के वीर बुन्देले।
ज्योति जली उन्नत की गैलें उजियारी।
महकी हैं भारत की फूलीं सब क्यारीं।
हिल मिल चलाहें घर बाहर कमेले। रैहैं....।।
एकता औ लोक विधा, खेल–कूँद न्यारे।
राई औ फागें कबताई लिख वारे।।
गूँज रये गीत गान निपटे झमेले। रैहैं....।।
भारत में साख लौट आई अब लग रई।
बासन्ती चल रई, औ छप रई औ सज रई।।
सँग रहैहैं सभी, अब न अकेले... । रैहैं....।।
धन्य संस्थापक संचालक जू प्यारे।
साथी संगाती सहयोग देन बारे।
डीलमणि बांट रये रतन जे मंझोले। रैहैं....।।

— बीरेन्द्र सिंह परमार 'बीर'
संगीताचार्य

राजीव सदन, नायक मोहल्ला, **टीकमगढ़** (म.प्र.)

मैं आपकी पत्रिका बुन्देली बसन्त से श्री हरिविष्णु चाचा जी के माध्यम से जुड़ा हूँ। हर अंक पढ़ा है, बुन्देली धरा के लिए 'मधुकर' के बाद ठोस प्रयास हुआ है, पूरा मण्डल आपका आभारी है, धन्यवाद सहित।

— अजीत श्रीवास्तव, एडवोकेट

कंचनपुरा, **निवाड़ी** (म.प्र.)

बुन्देली बसन्त २००७ का अंक प्राप्त हुआ, पढ़कर के मन अभिभूत हो गया। कृपया इसे निरन्तर इसी तरह से प्रकाशित करते रहें। हमारे ओर से यह शुभकामना कि यह निरन्तर प्रगति के पथ पर अग्रसर हो।

— भानु प्रताप शुक्ला 'भानु'

विद्यापुरम्, मकरोनिया, सागर (म.प्र.)

प्रिय परमार जी, बुन्देली बसन्त २००७ पत्रिका नहीं, बुन्देलखण्ड के साहित्य संस्कृति और इतिहास की त्रिवेणी है। सभी रचनाएं महत्वपूर्ण और पठनीय है। इस अंक में नये और पुराने, शोधक और रचनाकार सभी एक साथ हैं। आपने अपने सम्पादकीय में बुन्देलखण्ड के जिजीविषा और जीवटता का जो चित्र अंकित किया है वह चार–छः उपन्यासों की सामग्री है। लगता है हमें अभी और भी वृन्द्रावन लाल वर्माओं की आवश्यकता है।

इस प्रकार की पत्रिकाएं संस्थाओं को निकालनी चाहिए, पर आप बुन्देली विकास संस्थान के सीमित संसाधनों से यह विलक्षण कार्य कर रहे हैं, वास्तव में साधन नहीं लगन महत्वपूर्ण है। आपको और आपकी पूरी टीम को बधाई।

– कांति कुमार जैन

करेरुआ, पो. खमरिया, मिर्जापुर (उ.प्र.)

आपके द्वारा सम्पादित बुन्देली बसन्त का आठवां अंक मिला। आभारी हूँ अंक बहुत अच्छा था, मेरे एक मित्र उसे पढ़ते–पढ़ते दिल्ली उठा के ले गये हैं और वहां से उसे लेकर विदेश चले गये। इसी प्रकार से बुन्देली बसन्त को नयी ऊँचाईयां प्रदान करते रहें।

– उदय शंकर दुबे

५१, महावीर नगर, गरौठा (उ.प्र.)

आपका द्वारा प्रेषित बुन्देली बसन्त की प्रति प्राप्त हुयी। लोकसाहित्य एवं लोकसंस्कृति के उन्नयन की दिशा में बुन्देली बसन्त ने प्रकाश स्तम्भ का काम किया है। पत्रिका वैज्ञानिक दृष्टिकोण से सम्पादित है। साहित्य जगत में विशिष्ट पहचान बनाने वाली अपनी बुन्देली बसन्त उत्तरोत्तर प्रगति करे, बस हमारी यही हृदयाकाँक्षा है।

– अशोक चतुर्वेदी, लोक संस्कृति शोध संस्थानम्

१४३, कुरेंचा नाका, मऊरानीपुर (उ.प्र.)

पटना से वापस आने पर बुन्देली बसन्त २००७ का अंक मिल गया। पढ़कर प्रसन्नता हुयी कि आप लोग छतरपुर में बुन्देली उत्सव के माध्यम से साहित्यिक व सांस्कृतिक गतिविधियों को जीवन्त व स्थायी बनाये हुए हैं। इस काम में श्री शंकर प्रताप सिंह मुन्नाराजा का योगदान सराहनीय है।

– वीरेन्द्र शर्मा 'कौशिक'

सीपरी बाजार, झांसी (उ.प्र.)

बुन्देली बसन्त स्मारिका प्राप्त हुयी। अच्छी विषय वस्तु का चयन, स्वच्छ मुद्रण, आकर्षक मुख्य पृष्ठ आपके कुशल सम्पादन को सम्पादित करते हैं। उत्तरोत्तर स्मारिका एवं बुन्देली उत्सव प्रगति कर रहा है। मेरी ओर से सभी लोगों को हार्दिक शुभकामनाएँ।

– साकेत सुमन चतुर्वेदी

कुंजनपुरा, दतिया (म.प्र.)

बुन्देली बसन्त २००७ प्राप्त हुआ, आपके परिश्रम से अंक निरन्तर आगे बढ़ रहा है। इसके लिए हार्दिक बधाई स्वीकारें।

– डॉ. रामस्वरूप ढेंगुला

लाल कोठी कम्पाउन्ट, निमचौनी, टीकमगढ़ (म.प्र.)

बुन्देली बसन्त का अंक प्राप्त हुआ, इसके माध्यम से बुन्देलखण्ड की लोक संस्कृति के दर्शन मिले। मैं एक शोधार्थी हूँ। यह पत्रिका हमारे लिए शोध सन्दर्भ का काम करती है।

– हर्षवर्धन चतुर्वेदी

हिन्दी विभाग, अ.प्र.सिंह. वि.वि० रीवा (म.प्र.)

बुन्देली बसन्त २००७ प्राप्त हुआ इसके माध्यम से हमें पूरे बुन्देलखण्ड की साहित्य संस्कृति व इतिहास के दर्शन हुए यह पत्रिका शोधार्थियों के साथ–साथ विद्वानों को बुन्देलखण्ड को जानने समझने में मददगार साबित हो रही है। बेहतर हो बुन्देलखण्ड में प्रकाशित साहित्य की जानकारी भी आप इसमें देना प्रारम्भ करें।

– डॉ. दिनेश कुशवाह, विभागाध्यक्ष

चिनार निकुंज, भोपाल (म.प्र.)

बुन्देली बसन्त के माध्यम से आप सबने बुन्देलखण्ड के अनछुए पहलुओं को उद्‌घाटित करने का श्लाघनीय प्रयास किया है। इसके माध्यम से दूरस्थ अंचलों में निवासरत रचनाकारों को न केवल मंच मिला है बल्कि उनकी ज्ञान आभा को साहित्य जगत में बिखरने का मौका भी मिला है।

कुशल सम्पादन व मुद्रण के लिए पूरी टीम बधाई की पात्र है। इस प्रकाशन हेतु मदद करने के लिए श्री शंकर प्रताप सिंह बुन्देला 'मुन्नाराजा' का बुन्देलखण्ड ऋणी है।

– डॉ. राधावल्लभ शर्मा

महात्मा गांधी, अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी वि.वि. वर्धा (महा.)

बुन्देली बसन्त ने 'मामुलिया' और 'मधुकर' की कमी को पूरा करने का प्रयास किया है। इसके माध्यम से बुन्देलखण्ड के इतिहास, संस्कृति, लोकसाहित्य को राष्ट्रीय परिदृश्य पर स्थापित करने में मदद मिली है। मैं आप सभी को हार्दिक साधुवाद देता हूँ।

– डॉ. संतोष भदौरिया, रीडर

डॉ. हरिसिंह गौर वि०वि० सागर (म.प्र.)

बुन्देली बसन्त के माध्यम से हमें यहां के संस्कारों, रीतरिवाजों, उत्सवों, खान–पानों और भाषा की समृद्धि से अवगत होने का मौका मिला। मैं इसको आद्योपान्त पढ़ गया। पढ़ने के बाद मैंने अनुभव किया कि इस तरह की पत्रिकाएं ही वास्तव में अंचलों के साहित्य को बचाये हुये हैं।

अवध, ब्रज अंचल के साथ–साथ बुन्देलखण्ड में लम्बी काव्य परम्परा रही है जो आज भी लोक में परिव्याप्त है। इस के दर्शन हमें बुन्देली बसन्त के माध्यम से हुए।

– डॉ. आनन्द प्रकाश त्रिपाठी, आचार्य

प्रथम स्वाधीनता संग्राम के महायोद्धा राजा मर्दन सिंह बानपुर

– पं. हरगोविन्द तिवारी 'कवि हृदय'

बुन्देलखण्ड क्षेत्रान्तर्गत ललितपुर जिले में बानपुर नाम का एक कस्बा स्थित है। काफी समय पूर्व यह एक छोटे से राज्य के रूप में स्थापित था। यहां स्थित, खंडहर किला आज भी अपनी कीर्ति और शौर्य गाथा का द्योतक है। उन्नीसवीं सदी में ओरछा महाराज रामशाह की ग्याहरवीं पीढ़ी के वंशज राजा मर्दन सिंह बानपुर में राज करते थे। इनका जन्म सन् १७९९ ई. में हुआ था। इनके पिता का नाम राजा मोर प्रहलाद सिंह था व इनकी माता का नाम राजकुंवरि था तथा इनकी बहिन का नाम क्रांतिकुंवरि था। जिसका विवाह शाहगढ़ नरेश बखतवली शाह के साथ हुआ था और मर्दन सिंह का विवाह नाराहट के जमींदार राव विजय बहादुर सिंह की पुत्री मानकुंवरि के साथ हुआ था। इनका एक पुत्र भी था जिसका नाम करनसिंह था। राजा मर्दनसिंह अपने परिवार सहित राज्य के सभी लोगों से खूब प्रेम करते थे चूंकि प्रेमी तो वे बचपन से ही थे इसलिये बचपन में वे अपना अधिकांश समय अपने बाल साथियों के साथ रहकर ही व्यतीत करते रहे तथा बचपन से ही वे अपने बालसाथियों के साथ प्रेमपूर्वक रहकर विद्यार्जन, घुड़सवारी, तलवारबाजी और शिकार करने के शौकीन रहे। इसी के साथ-साथ बचपन से ही उनके मन में देश-प्रेम और स्वराज की भावना भी कूट-कूट कर भरी थी। वे यहां अंग्रेजों को कतई बर्दाश्त नहीं करते थे। इस संबंध में उनके बचपन का एक वाक्या यह है कि जब वे अपने साथियों के साथ चोर-सिपाही के खेल में मग्न थे तभी वहां पास वाली एक खोली (गली) से होकर ही कुछ अंग्रेज लोग गुजरे। जैसे ही अंग्रेज वहां से निकले वैसे ही मर्दनसिंह ने उन्हें देखते ही साथ कहा कि "भूरे मान्स अटपट्टी बोली, अंग्रेजों की आई टोली, जागो उठो वीर बुन्देली शैतानों की रोको खोली।" मर्दन सिंह का कहना सुनकर उनके सभी साथियों ने दौड़कर अंग्रेजों को घेर लिया और उनका रास्ता रोक लिया। जिससे अंग्रेजों का वहां से निकलना मुश्किल हो गया। कुछ समय पश्चात् अन्य लोगों ने वहां आकर मामला सुलझाया।

इस घटना से यही साबित होता है कि बचपन से ही उन्हें अंग्रेजों से चिढ़ थी। उन्हें अपनी मातृभूमि से अटूट प्रेम था वे मातृभूमि के रक्षक और स्वतंत्रता के पुजारी थे। वे यहां अंग्रेजी राज को बर्दाश्त नहीं करते थे। बल्कि वे यहां स्वराज चाहते थे और इसके लिये वे हमेशा आगे रहते थे। चूंकि इनके पिता राजा मोर प्रहलाद सिंह अठारह वर्ष राज्यच्युत रहने के बाद जब पुनः बानपुर के राजा बने तो उन्होंने अपने राज्य का कार्यभार अपने होनहार व वीर पुत्र युवराज मर्दनसिंह को सौंप दिया। इसलिये युवराज मर्दनसिंह अपने पिता के निर्देशन में बड़ी कुशलता के साथ राज्य का कार्यभार संभालने लगे। मगर उन्हें यहां अंग्रेजों का रहना बहुत खटक रहा था और वे अंग्रेजों को यहां से हटाने का उपयुक्त अवसर तलाश रहे थे। अतः सन् १८४२ ई. में राजा मोर प्रहलाद सिंह के निधनोपरांत मर्दनसिंह जब बानपुर के राजा बने तो वे यही प्रयास करने लगे कि किसी न किसी तरह अंग्रेजों को खदेड़कर यहां स्वराज कायम किया जाय। वे चाहते थे कि किसी भी हालात में अंग्रेजों से हमारी मातृभूमि को मुक्ति मिलना ही चाहिए। वे हमेशा इसी उधेड़बुन में रहते कि जैसे भी हो अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह कर उन्हें यहां से हटा दिया जाय।

इसी बीच अंग्रेजों ने नाराहट के जमींदार मधुकरशाह व उनके भाई गनेशजू एवं चंद्रपुर के मालगुजार जवाहर सिंह के ऊपर जमीनों के कर के रूप में थोपी गई भारी राशि की वसूली हेतु सख्त कार्यवाही की। जिससे उन्होंने अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोही कदम उठाया। इसके लिये उन्हें हीरापुर के लोधी राजा हिरदेशाह व उनके भाइयों तथा सहयोगियों को अपने साथ लेकर विद्रोहियों का एक बड़ा भारी गुट बना लिया तथा वे अंग्रेजों से विद्रोह कर जगह-जगह मारपीट व लूटपाट की वारदातें करने लगे। जिसे रोकने के लिये अंग्रेजों ने बड़ी सतर्कता और चालबाजी के साथ यहां के लोगों को बहला-फुसला कर अपने साथ लेते हुए विद्रोहियों के खिलाफ जाल बिछाना शुरू कर दिया। इसके दुष्प्रभाव से शाहगढ़ नरेश बखतबली शाह के छोटे भाई लक्ष्मनसिंह राज्य की सुख-सुविधाओं के उपभोग हेतु बँटवारे की बात को लेकर बखतबली से लड़ बैठे। वे अपने लिये शाहगढ़ राज्य के अधीन रहने वाले बिनेका की मांग करने लगे। जिसे बखतवली ने मंजूर नहीं किया। इससे रुष्ट होकर वे भी मधुकर शाह के साथ जा मिले तथा विद्रोहियों के साथ मिलकर वे भी जगह-जगह मारपीट व लूटपाट की वारदातें करने लगे। इस तरह अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोही गतिविधियां दिन प्रतिदिन बढ़ने लगीं। अतः विद्रोही गतिविधियों की रोकथाम के लिये अंग्रेज अधिकारी एम.सी. ओमेनी ने इन सभी विद्रोहियों को बागी घोषित कर दिया तथा इनकी गिरफ्तारी के लिये पांच-पांच हजार रुपये के इनाम की घोषणा भी कर दी। साथ ही सभी विद्रोहियों को गिरफ्तार करने के लिये चारों ओर अंग्रेजी जाल बिछा दिया। फिर भी मधुकरशाह, गनेशजू, जवाहर सिंह, लक्ष्मन सिंह और हिरदेशाह इत्यादि सभी विद्रोही लोग जगह-जगह मारपीट व लूटपाट की वारदातें कर रहे थे। सभी विद्रोहियों ने धामौनी जाकर अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह करते हुए मारपीट कर उनके अधीन रहने वाली भारी संपत्ति को लूट लिया। इसी के साथ लक्ष्मनसिंह के कहने पर सभी विद्रोहियों ने शाहगढ़ राज्य के अधीन रहने वाले बिनेका पर भी हमला कर दिया तथा वहां मारपीट व लूटपाट करके वे वहीं आस-पास की पहाड़ियों में ही जा ठहरे। चूंकि बिनेका शाहगढ़ राज्य के अधीन था इसलिये शाहगढ़ नरेश बखतवली शाह को जैसे ही वहां मारपीट व लूटपाट की वारदात होने की जानकारी मिली। वैसे ही उन्होंने राज्य एवं जनहित की सुरक्षा का प्रबंध किया तथा उन्होंने

बिनेका पर हमला कर वहां मारपीट व लूटपाट करने वाले हमलावरों को पकड़ने के लिये अपनी सेना तैयार की। इसके लिये उन्होंने बानपुर राजा मर्दनसिंह को भी बुलावा भेज दिया। राजा मर्दन सिंह बानपुर के बखतवली बहनाई थे साथ ही दोनों में परस्पर मित्रवत् व्यवहार भी था। चूँकि उम्र में मर्दनसिंह बखतवली से बड़े थे इसलिए बखतवली हमेशा प्रेम से उन्हें दाऊ कहकर बुलाते तथा जब भी वे उन्हें याद करते तो वे फौरन दौड़े चले आते और संकट के समय दोनो एक-दूसरे की मदद करने को तैयार रहते। अतः बखतवली के बुलावे पर मर्दनसिंह सेना सहित तुरंत बखतवली के पास दौड़े चले आये तथा बखतवली के साथ मिलकर बिनेका के हमलावरों को पकड़ने के लिये घेराव डाल दिया। इससे घबड़ाकर सभी हमलावर इधर-उधर भागे जिससे वहां की पहाड़ियों के बीच भागते हुये लक्ष्मनसिंह चट्टान से टकराकर गिर पड़े और उनके हाथ की हड्डी टूट गई। मगर इसके बावजूद भी वे घेराव से बचकर भाग निकले तथा शेष सभी हमलावरों की लूटी हुई संपत्ति सहित मर्दनसिंह व बखतवली ने अपने घेरे में ले लिया। ठीक इसी समय अंग्रेज अधिकारी कैप्टिन हैमिल्टन ने सेना सहित वहां आकर धावा बोल दिया। जिससे मौका पाकर मधुकरशाह, गनेशजू, जवाहर सिंह और हिरदेशाह इत्यादि वहां से भाग निकले। इससे मर्दनसिंह व बखतवली अंग्रेजों से रुष्ट हो गये तथा वे खुलकर अंग्रेजों का विरोध करने लगे। अंग्रेजों का विरोध करते हुये उन्होंने बिनेका के हमलावरों को ऐन-केन-प्रकारेण अपने संपर्क में लेकर उन्हें यथोचित हिदायत दी। इसके परिणाम स्वरूप लक्ष्मनसिंह ने बखतवली के पास आकर उनसे माफी मांग ली तथा फिर कभी उन्होंने बखतवली से कोई बंटवारे की बात नहीं की। किन्तु वे मधुकर शाह इत्यादि के साथ रहकर अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोही गतिविधियों को अंजाम देते ही रहे और मर्दनसिंह तथा बखतवली भी अंग्रेजों से रुष्टता रखते हुये विद्रोहियों को आश्रय देने लगे तथा वे भी अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोही गतिविधियां अपनाने लगे। मगर अंग्रेजों के द्वारा विद्रोहियों पर दमनचक्र चलाया गया तथा अंग्रेजों के द्वारा चलाये गये दमन चक्र में मधुकरशाह फंस गये। ऐन-केन-प्रकारेण अंग्रेजों ने मधुकर शाह को गिरफ्तार कर फांसी पर चढ़ा दिया। मधुकरशाह को फांसी पर चढ़ाये जाने से विद्रोहियों में हड़कम्प मच गई और विद्रोही गतिविधियां कुछ समय के लिये थम गई। अंग्रेजों के दमन चक्र से विद्रोही गतिविधियां कुछ समय के लिये थमी जरूर मगर विद्रोह की ज्वाला धधकती रही क्योंकि फांसी पर चढ़ने वाले मधुकरशाह मर्दनसिंह के खास रिश्तेदार यानि साले थे। अतः मधुकरशाह को फांसी होने से मर्दनसिंह के मन में आग लग गई और उनके मन में अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह की ज्वाला धधकने लगी। अस्तु उन्होंने अंग्रेजों के खिलाफ अमल में लाई जाने वाली विद्रोही कारगुजारियों के संबंध में बखतवली से आवश्यक सलाह मशविरा करके बचे-खुचे विद्रोहियों से सम्पर्क किया तथा उन्हें अंग्रेजों के खिलाफ बगावत करने का सम्बल दिया। जिससे बचे-खुचे विद्रोहियों ने गुट बनाकर अंग्रेजों के विरुद्ध बगावत शुरू कर दी। इससे अंग्रेजों को एक बहुत बड़ी डाकू समस्या का सामना करना पड़ा। चूंकि अंग्रेज भली-भांति यह जानते थे कि डाकू समस्या को लाने में राजा मर्दनसिंह बानपुर का ही हाथ है। इसलिये उन्होंने सन् १८४४ ई. में मर्दनसिंह पर शिकंजा कसने के लिये बानपुर राज्य को अपने अधीन करने का प्रयास किया। लेकिन वे इसमें सफल नहीं हुये वरन उन्हें मर्दनसिंह के सामने घुटने टेकने को मजबूर होना पड़ा। मजबूरन सन् १८४६ ई. में अंग्रेजों ने डाकू समस्या के अंत हेतु राजा मर्दनसिंह बानपुर से आग्रह किया तो उन्होंने न चाहते हुये भी स्थिति एवं जनहित को ध्यान में रखकर अपनी कार्यकुशलता से आनन-फानन डाकू समस्या का अंत कर दिया। उनकी कार्यकुशलता की सर्वत्र प्रशंसा की गई और इसके परिणाम स्वरूप ही उन्होंने 'मसौरा' व 'गढ़ी' ग्राम भी जागीर में प्राप्त किया।

अंग्रेजों के आग्रह पर न चाहते हुये भी मर्दनसिंह ने डाकू समस्या का अंत तो कर दिया मगर अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोही गतिविधियों का अंत उन्होंने कभी नहीं किया। बल्कि अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोही गतिविधियों को मर्दनसिंह ने निरंतर जारी रखा। जिससे मर्दनसिंह हमेशा अंग्रेजी आंखों की किरकिरी बने ही रहे। जिसे हटाने के लिये अंग्रेजों ने भरसक प्रयत्न किया। मगर वे कामयाबी हासिल नहीं कर सके। फलतः जब अंग्रेजी सरकार ने सन् १८५५ ई. में राजा मर्दनसिंह को सायर का महसूल लेना बंद करने का आदेश दिया तो उन्होंने इसे अमान्य व अस्वीकार करते हुये अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध उग्र रूप धारण कर युद्ध का ताना-बाना बुनना शुरू कर दिया। मर्दन सिंह ने अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध ऐसा ताना-बाना बुना कि वह एक भयंकर क्रांतिकारी युद्ध के रूप में सामने आया। जो भारतीय इतिहास में प्रथम स्वाधीनता संग्राम के नाम से जाना गया। हुआ यह कि झांसी के राजा गंगाधर राव का निधन हो गया और उनके निधन का समाचार द्रुतगति से चारों ओर फैल गया। अतः चारों ओर से राजा महाराजा जागीरदार लंबरदार इत्यादि सभी लोग शोक में डूबी रानी लक्ष्मीबाई को सांत्वना देने झांसी दौड़े। चूंकि झांसी के राजा गंगाधर राव व रानी लक्ष्मीबाई से शाहगढ़ नरेश बखतवलीशाह व राजा मर्दनसिंह बानपुर के सम्बन्ध बहुत ही अच्छे थे तथा वे हमेशा राजा गंगाधर राव व रानी लक्ष्मीबाई से मिलने झांसी आया-जाया करते थे। अतः जैसे ही उन्हें राजा गंगाधर राव के निधन का समाचार मिला वैसे ही वे झांसी जा पहुंचे और उन्होंने शोक में डूबी रानी लक्ष्मीबाई को सांत्वना दी व ढाढस बंधाया तथा अंग्रेजों द्वारा अपनाई जा रही हड़पनीति का विरोध करते हुये राजा मर्दनसिंह ने वहां यह सुझाव रखा कि रानी की देखरेख में उनके गोद लिये बेटे दामोदर राव को ही राज्य का वारिस बनाया जाए। मगर अंग्रेजों ने इस सुझाव को स्पष्ट रूप से अमान्य कर दिया। इसके बावजूद भी राजा मर्दनसिंह ने अपना सुझाव झांसी की मंत्री परिषद के समक्ष रखकर यही तय करवाया कि गोदानामे के अनुसार दामोदर राव ही रानी के मार्गदर्शन में राज्य चलायेंगे किन्तु अंग्रेजों ने राजा गंगाधर राव व रानी

लक्ष्मीबाई के गोदनामे को अमान्य करते हुये झांसी राज्य को अपने अधीन कर लिया। इससे राजा मर्दनसिंह आग-बबूला हो गये और उन्होंने अंग्रेजों से स्पष्ट कह दिया कि रानी लक्ष्मी बाई ही झांसी राज्य की उत्तराधिकारिणी होकर राज्य करेगी। यदि अंग्रेजी सरकार ने किसी भी प्रकार की कोई धमकी दी या कोई दमन चक्र चलाया तो अंग्रेजों को वह बहुत महंगा पड़ेगा। इसके बावजूद भी अंग्रेजों ने झांसी राज्य को जब जबरन अपने कब्जे में ले लिया और वहां का कार्यभार अंग्रेज कमिश्नर मेजर स्किन संभालने लगा, तो राजा मर्दनसिंह ने झांसी राज्य वापिस लेने के लिये अंग्रेजों के विरुद्ध रानी लक्ष्मीबाई को खड़ा कर दिया और तन, मन, धन से वे उनका सहयोग करने लगे। मगर झांसी से अंग्रेज टल नहीं रहे थे इससे पूरे देश में हलचल मच गई और पूरे देश में अंग्रेजों के विरुद्ध क्रांतिकारी युद्ध की लहरें उठने लगीं।

बुंदेलखंड में मर्दनसिंह ने अपने सगे सम्बन्धियों और मित्रों से संपर्क कर शाहगढ़ नरेश बखतवली शाह व उनके लघुभ्राता लक्ष्मन सिंह तथा उनके अन्य साथी ऊदल सिंह, सबदलसिंह, माधौसिंह, हरबल सिंह, हीरा सिंह, गिरवर सिंह, बोधन सिंह, गजराज सिंह, व मलखुवां के परमानंद और राजधर रावत को अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध के लिये प्रेरित किया। साथ ही उन्होंने नाराहट के जंगी सिंह ठाकुर, सागर के दौलत सिंह, हिण्डोरिया के जागीरदार किशोरसिंह, पिण्डारी के नवाब कादिर खान, अंग्रेजों की बियालीसवीं पल्टन के सूबेदार शेख रमजान, सोहागपुर के जमींदार बलभद्रसिंह, बालाकोट के राव साहब सरूपसिंह, मानसिंह, सोनेसिंह तथा मानगढ़ के राजा गंगाधर, सिंग्रामपुर के राजा देवी सिंह, अभाना के राजा तेज सिंह, कारीजोग खैजरा के ठाकुर पंचम सिंह, किशुनगंज के सूबेदार रघुनाथ राव एवं गोविन्द राव को भी अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध के लिये प्रेरित किया। इसके अलावा मर्दनसिंह ने रानी लक्ष्मीबाई, रानी अवंतिबाई, बहादुरशाह जफर, बेगम जीनत महल, तात्या टोपे, नाना साहब, अजीमुल्ला खान, बत्तर खान, खान बहादुर खान, अहमद शाह, नवाब बाजिद अली शाह, बेगम हजरत महल, कुंवर सिंह, अमरसिंह, ठाकुर सरयू प्रसाद, राजा शंकर शाह इत्यादि क्रांतिकारियों से सघन संपर्क किया और वीरता के साथ अंग्रेजों के विरुद्ध क्रांतिकारी युद्ध का शंखनाद किया। अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध करने वालों पर तत्कालीन ब्रिटिश प्रशासन के अंग्रेज अधिकारी गवर्नर जनरल लार्ड डलहौजी, लार्ड केनिंग, गवर्नर एल.फिस्ट, कमाण्डर ह्यूरोज, लेफ्टिनेंट वॉकर, मेजर मेक्कम, मेजर स्किन, लैफ्टिनेंट राइकेश, लैफ्टिनेंट हरबर्ट, सी.फ्रेजर, कर्नल वाटसन, मेजर डब्लू, एच. स्लीमन, कैप्टिन हैमिल्टन, कर्नल होम्स, राबर्ट्स पार्क, मिचेल, होप, लाकहार्ट, नेपियर, शावर्स, सामर, वानर, सेट, जनरल स्मिथ, जनरल ओर, बेनसर, वाडिगटन, एम.सी. ओमेनी, कैप्टिन मैकिन टोस, कैप्टिन ब्राउन, कैप्टिन पिंकी, गोसन, कमिश्नर एफ.डी. पिंकने, ब्रिगेडियर सेज के साथ-साथ अंग्रेजों की भारी सुसज्जित अंग्रेजी फौजों द्वारा दमन चक्र चलाया जा रहा था।

जैसे ही सन् १८५७ ई. में अंग्रेजों के विरुद्ध मेरठ में युद्ध प्रारंभ हुआ वैसे ही मर्दन सिंह अपने साथ एक सुसंगठित एवं हथियारों से सुसज्जित बुन्देली सेना लेकर यहां अंग्रेजों पर टूट पड़े। मर्दन सिंह ने अंग्रेजों पर हमला करके सागर, खुरई, खिमलासा, खनियाधाना, सानौदा, उल्दन, पाटन, ढाना, बीना, बरौदिया, धमौनी, रहली, हटा, हिण्डोरिया, दमोह, गढ़ाकोटा, नरसिंहपुर, पथरिया, बरगी, जबलपुर, टीकमगढ़, छतरपुर, पन्ना, बल्देवगढ़ नाराहट, तालवेहट, महरौनी, बानपुर, शाहगढ़, मदनपुर, ललितपुर, झांसी, ग्वालियर, दतिया और कालपी इत्यादि स्थानों पर जाकर अंग्रेजों से कई मुठभेड़ें लीं। जब तेईस मार्च अठारह सौ संतावन को रानी लक्ष्मी बाई ने अंग्रेजों से घमासान युद्ध किया तो मर्दन सिंह ने उनका साथ देते हुए अंग्रेजों से डटकर मुकाबला किया। जिसके फलस्वरूप लैफ्टिनेंट वॉकर घायल होकर अपने साथियों सहित प्राण बचाकर भागा। इसके बाद रानी लक्ष्मीबाई और तात्या टोपे ने कालपी में जब अंग्रेजों के विरुद्ध अगले युद्ध की योजना तैयार की तो उस समय भी मर्दनसिंह उनके साथ वहां मौजूद रहे और मर्दनसिंह ने ही वहां अंग्रेजों के मित्र ग्वालियर के राजा सिंधिया पर हमला करने का सुझाव दिया। जिसे सभी ने स्वीकार करते हुए ग्वालियर पर आक्रमण किया। जिससे ग्वालियर के राजा सिंधिया को अपने प्राण बचाकर भागना पड़ा। इस तरह क्रांतिकारियों ने ग्वालियर पर कब्जा करके नाना साहब को वहां का पुनः पेशवा घोषित कर दिया। इसके उपलक्ष्य में मर्दन सिंह ने वहां विजयोत्सव मनाने का सुझाव दिया। जिसे स्वीकार करते हुए सभी ने वहां नाच-गान के साथ एक शानदार विजयोत्सव भी मनाया। इस तरह मर्दनसिंह से अंग्रेज त्रस्त और पस्त पड़ गये तथा बौखला कर उन्होंने ब्रिटिश सरकार से सुरक्षा की मांग की। तो ब्रिटिश सरकार ने सुरक्षा का कड़ा प्रबंध करते हुए मर्दन सिंह की गिरफ्तारी के लिये दस हजार रुपयों के इनाम की घोषणा कर उनके खिलाफ दमनात्मक कार्यवाही शुरू कर दी। फलतः ब्रिटिश सरकार द्वारा हथियारों से सुसज्जित भारी अंग्रेजी फौजें बुंदेलखंड में भेजी गयी।

१८ जून १८५७ ई. को ह्यूरोज ने अंग्रेजों की भारी फौजों को अपने साथ लेकर ग्वालियर पर हमला कर दिया। जिसके परिणाम स्वरूप वहां सभी क्रांतिकारियों सहित मर्दनसिंह ने अंग्रेजों के विरुद्ध भारी घमासान युद्ध किया। इस युद्ध में अनेक क्रांतिकारियों को अंग्रेजी फौजों द्वारा मौत के घाट उतार दिया गया। दुर्योग से इस युद्ध में झांसी की रानी लक्ष्मीबाई भी शहीद हो गई। शाहगढ़ नरेश बखतवली शाह और राजा मर्दनसिंह बानपुर वीरतापूर्वक अंग्रेजी फौजों का मुकाबला करते हुये बच निकले। मगर ह्यूरोज ने इनका पीछा करते हुए शाहगढ़ जाकर बखतवली के किले पर हमला किया। जिसमें बखतवली के परिवार के लोगों सहित उनके किले को ध्वस्त कर दिया गया। फिर ह्यूरोज ने बानपुर जाकर मर्दनसिंह के किले पर हमला किया। जिसमें मर्दनसिंह के परिवार के लोगों सहित उनके किले को ध्वस्त कर दिया गया। चूंकि इस समय बखतवली और मर्दन सिंह नाना

साहब के बुलावे पर पुनः ग्वालियर की ओर जा रहे थे। इसलिए ह्यूरोज को जैसे ही इस बात की जानकारी मिली वैसे ही उसने बखतवली और मर्दनसिंह का पुनः पीछा किया। पीछा करते हुये ह्यूरोज ने मदनपुर के समीप अमझिरा घाटी से गुजरते हुये बखतवली और मर्दनसिंह पर आक्रमण कर दिया। जिसमें बखतवली और मर्दनसिंह के बहुत से साथी वीर गति को प्राप्त हो गये। मगर ह्यूरोज व उसकी भारी फौजों से बखतवली व मर्दनसिंह बामुश्किल बच निकले तथा वे नाना साहब के पास ग्वालियर जा पहुंचे। इसी समय ह्यूरोज भी अंग्रेजी फौजों को लेकर ग्वालियर पहुंच गया तथा उसने वहां पहुंचकर बखतवली व मर्दनसिंह को तलाशते हुए ग्वालियर पर हमला कर दिया। हमले से बचकर बखतवली व मर्दनसिंह मुरार की ओर भागे, किन्तु भारी अंग्रेजी फौजों सहित ह्यूरोज ने तुरंत ही उनका पीछा किया और पीछा करते हुये ह्यूरोज व उसकी भारी फौजों ने मुरार के समीप ही उन्हें घेर लिया। इस तरह भारी अंग्रेजी फौजों सहित ह्यूरोज ने घेराव कर अट्ठाइस सितम्बर अठारह सौ अंठावन को मुरार के समीप बखतवली व मर्दन सिंह को गिरफ्तार कर लिया। ह्यूरोज उन्हें गिरफ्तार कर लाहौर ले गया और वहां से जाकर उसने उन्हें हाकिमराज की हवेली में बंद कर दिया। ब्रिटिश सरकार द्वारा उन्हें फांसी दिये जाने की कार्यवाही की जाने लगी। मगर जब बखतवली व मर्दनसिंह की गिरफ्तारी के बाद रानी विक्टोरिया ने नाना साहब से क्रांतिकारी गतिविधियों को रोकने हेतु आग्रह किया तो नाना साहब ने रानी विक्टोरिया से स्पष्ट कह दिया कि यदि बखतवली व मर्दनसिंह को फांसी दी जाती है तो किसी भी हालत में क्रांतिकारी गतिविधियां नहीं रुकेंगी। इस पर रानी विक्टोरिया ने नाना साहब को यह आश्वासन दिया कि बखतवली व मर्दनसिंह को किसी भी हालत में फांसी नहीं होगी। बल्कि उन्हें सभी सहूलियतों के साथ आजीवन नजरबंद कैदी के रूप में रखा जावेगा। इस तरह उनके खिलाफ होने वाली फांसी की कार्यवाही को रोक दिया गया।

वे लाहौर में नजरबंद थे। मगर उन्हें वहां नजरबंद रहना बर्दाश्त नहीं हो रहा था। इसलिए उन्होंने ब्रिटिश सरकार के समक्ष लाहौर से वृन्दावनधाम के लिए तबादले की मांग रख दी। ब्रिटिश सरकार ने उनकी मांग मंजूर कर ली तथा उन्हें गुजारा भत्ता के रूप में एक हजार रुपये मासिक पेंशन भी स्वीकृत कर दी। जिसे उन्होंने कभी ग्राह्य नहीं किया बल्कि वृन्दावनधाम आकर उन्होंने अपना सर्वस्व ठाकुरजी के श्रीचरणों में समर्पित कर दिया। इस तरह देश की आजादी के लिये अंग्रेजों से लड़ते हुए गिरफ्तार होकर मर्दनसिंह ने अपने जीवन के इक्कीस वर्ष नजरबंद कैदी के रूप में व्यतीत किये। अंततोगत्वा अपने देश की आजादी के लक्ष्य को धारण किये हुये "प्रथम स्वाधीनता संग्राम के महायोद्धा राजा मर्दनसिंह बानपुर" ने बाईस जुलाई सन् १८७६ ई. को ब्रिटिश सरकार की कैद में जकड़ी निज देह का त्याग कर दिया। भारत वर्ष के इतिहास में उनका नाम सदैव अमर रहेगा।

– इंदिरा प्रियदर्शिनी वार्ड, शाहगढ़
जिला सागर (म.प्र.) 卐

बुन्देली गीत

– नवल किशोर सोनी 'मायूस'

मेला देखन जानें सैंया सिमवा देव सलूका।
देखे सें जाड़ो कप जावै ऐसो होय मलूका।।
गए ते जब परसाल बजारै तबँइ सलूका लओ तो।
साल भरे सें जादा हो गओ भीत पुरानो भओ जो।
देखौ तौ जाँगन-ताँगन सें दैन लगो जो कूका। देखें सें...।।
इयै पैरकें तौ मोसें अब द्वारें कड़ो न जावै।
सवरो पुरा कुआ के ऊपर मोरी हँसी उड़ावै।
ऐसी खुन्स चड़त ईके अब कर दइये दो टूँका। देखें सें...।।
तकलो जाड़े की रित मोपै कैसो जुलम जना रइ।
विजना सी मैं कपी जात हौं तुमैं दया नाँ आ रइ।
चार दिनाँ हो गए चिल्लातन तुम दै रए नाँ हूँका। देखें सें...।।
लाल छींट को ल्याव सलूका अवइँ बजारै जाकें।
मैंने जोरे पाँच रुपइया सो लै जाव हराकें।
सेरक दोक पिसी लै जइयो सौने घाँइ कनूका। देखें सें...।।
आसौं फसल बिगर गइ जानों ईसें जा हैरानी।
एक सलूका मैं रै लैहों नाँ करहौं मनमानी।।
हैं किसान तौ राम भरोसें काल परै कै सूका। देखें सें...।।
जाव बजारै अबइँ अकेलें समर समर कें रइयो।
गैल घाट में डर है ईसें सौकारूँ आ जइयो।
मौं बनाव नाँ ओजू फैंको मौं में दबो तिनूका। देखें सें...।।
तुम सीदे-सादे देहाती वे बजार के छैला।
देखत भर में लगें आदमी बिना सींग के बैला।
बनियो नाँ बजार मैं जाकें तुम 'मायूस' विजूका।। देखें सें...।।

– कोतवाली के पीछे, छतरपुर 卐

संकट के दोहे

– नीरज कुमार खरे

आंसू टपके खेत के, रोता है खलिहान।
नंदीग्राम में टाटा जी, होरी कब्रिस्तान।।
मोहन काबै बाप सें, ऐसो परो अकाल।
सूखा राहत कार्य में, नेता मालामाल।।
धरती की छाती फटी, तला में उड़ रइ धूर।
प्रानन गाँठें परी सब, दिल्ली खां मजबूर।।
अरुआ बोलें गाँव में, समय बड़ी गम्भीर।
सबखां अपनी फिकर है, ना काहू की पीर।।
देख दशा संसार की, बब्बा की जा राय।
रखवारी को करै जब, खेत बिजूकी खाय।।

– शास. उत्कृष्ट उ.मा. विद्यालय
बल्देवगढ़ (टीकमगढ़) 卐

सन् १८५७ की क्रान्ति और बुन्देलखण्ड के लोकगीत

— डॉ. हरिमोहन पुरवार 'बुन्देलरत्न'

मुगल साम्राज्य था। एक समुद्री पोत भारत के तट पर आकर रुका। उसमें से कुछ गोरी चमड़ी के लोग उतरे। इन लोगों को राजा के सामने पेश किया गया। इन गोरी चमड़ी वालों ने बड़ी मिन्नत करते हुए राजा से उसके राज्य में व्यापार करने की अनुमति मांगी। उदारमना राजा ने इसकी अनुमति दे दी। फिर सात समुन्दर पार इंग्लैण्ड से आये इन गोरी चमड़ी वाले अंग्रेजों का व्यापार इस देश में प्रारंभ हो गया। व्यापार का क्षेत्र शनैः शनैः व्यापक होता रहा, व्यापार भी बढ़ता रहा। अपनी तथा अपने व्यापार की सुरक्षा के नाम पर धीमे-धीमे सेना का गठन होता रहा और फिर समूचे भारतवर्ष में 'ईस्ट इंडिया कंपनी' नाम की विशाल भव्य व्यापारिक इकाई का बोलबाला बढ़ता गया। इस कम्पनी की अपनी क्षमतायें भी अत्यन्त व्यापक होती गई। प्रलोभन तथा "बांटो और राज्य करो" की नीति का सहारा लेकर इन अंग्रेजों का इस देश में सामाजिक व राजनैतिक हस्तक्षेप बढ़ता गया और अंततः सोने की चिड़िया कहलाने वाला यह भारत देश इन अंग्रेजों के चंगुल में बुरी तरह से फंसता चला गया। अंग्रेजों की क्रूरता, बूटों, हन्टरों की मार के आगे भारतवासी घुटने टेकने लगे और अंग्रेजों की दासता की बेड़ियां बढ़ने लगीं। इन बेड़ियों के भार के नीचे भारतवासी कराहने लगे।

यमुना, नर्मदा, चम्बल और टौंस नदियों के मध्य घिरा बुन्देलखण्ड भी अंग्रेजों के दमन से अछूता नहीं रहा। यहां का लोकजीवन भी अभावग्रस्त हो गया। भूख के मारे यहां का जन जीवन क्षत-विक्षत हो गया। जन जीवन का यही कारुणिक दृश्य इस गीत में सजीव हो उठता है -

जियरा सूख गये खटका में
अरे मीड़ा मौड़ी रोटी मांगे, नाज नहीं मटका में
जिनके घर के नाज बढ़ा गये, मठा पियें अटका में
उन्ना फट गये, कपड़ा फट गये, दिन काटें फड़का में
मांगे उधार देत कोऊ नइयां, दिल न सटें अटका में।[१]

जीवन जीने के लिये पेट का भरना जरूरी होता है परन्तु हालात तो ये हैं कि लड़के लड़कियों को खिलाने के लिये भी कुछ नहीं बचता। फिर सरकारी लगान यहां का किसान कैसे दे पाये? अतः लगान वसूली के लिये मुंशी, पटवारी, तहसीलदार आदि आने लगे और घर की कुर्की होने लगी। कुर्की में घर की पोता लगाकर सफाई हो गई। यही मार्मिक व्यथा इस गीत में दृष्टव्य है-

पोता लाग रहा महाराज
जुनरिया हो गई मन भर की
मुन्सी आये पटवारी आये
आये तहसीलदार, होन लगी कुरकी
लहंगा बिग गओ, लुगरा बिक गओ
बिक गई अंगिया तन की
राजा के बाँधत को सैला बिक गओ
फजियत है गई घर घर की।"[२]

इस देश के घर घर की हालत बद से बदतर होती जा रही थी। यहां के लोग जहां भूख से तड़प रहे थे वहीं ये अंग्रेज मौज मस्ती में झूम रहे थे।

भारत के लोग आजु दाना बिनु तरसें
लन्दन के कुत्ता उड़ावें मौज
माल हो विदेशी तोरे राज में।[३]

इस देश को उजाड़ कर अपना भला कर रहे थे ये अंग्रेज। यहां पर आपस में जहां राम रहीम एक थे वहीं अंग्रेजों ने आपस में फूट डाल डाल कर हम हिन्दु मुस्लिम भाइयों को अलग अलग करके हम सबको भिखारी बना दिया -

हरे हरे खेत उजड़ गये सिगरे
रे लूटी है सम्पत सारी विदिसिया
बय बय बीज फूट के तू नें
रे कर दओ देस भिखारी।[४]

अंग्रेजी हुकूमत से सभी त्रस्त थे। लोकजीवन तो बुरी तरह से टूट चुका था। उसके मुंह में बस कराह ही निकल रही थी। अतः जहां कहीं भी कोई गोरी चमड़ी वाला अंग्रेज दिखलाई पड़ता तो जन मानस कह ही उठता था -

जे आ गये अंग्रेज बिदिसिबा, हमें चूस के खाने
इनके लाने इज्जत नइयां, करत रहत मनमाने
बहू बेटियन जे ना छोड़ें, बनत बहुत सयाने
चापलूसन की कमी नइयां, काहे को गिनवाने
करैं हजूरी अंग्रेजन की, अपने में भरमाने।[५]

उक्त लोकगीत में जहां अंग्रेजों की ज्यादतियों का वर्णन है। वहीं हम में से उन चापलूसों के विषय में भी बतलाया गया है जो अपने निजी स्वार्थों की पूर्ति हेतु अंग्रेजों के तलुये चाट चाट कर अपने आप को गौरवान्वित समझ रहे थे। अब जन मानस की अंग्रेजों के अत्याचारों को सहने की सहनशीलता समाप्त होती जा रही थी। यहां की जवानी अंगड़ाइयां ले रही थी। यहां का खून खौल रहा था। यहां की मांसपेशियां मछलियां बन कर कल्लोल कर रही थीं और मन कुछ न कुछ कर गुजरने के लिये छटपटा रहा था। एक युवक अपनी मां से कहता है -

अम्मा मोंसे रहो न जावै।
देख देख ज्यादती गोरन की, बांह बहुत फरकावै
क्रान्तिकारिन ने लरी लराई, गोरन को खूब छकावै
धर धर पानी सांग पै अपनी, मौका तलासवे जावै
अम्मा मों से रहो न जावे।[६]

अंग्रेजों की लूटपाट का शिकार वहां का आम आदमी भी था। वह भी इनकी बन्दर बांट नीति को समझ रहा था तभी वह

क्रोध के मारे भभक रहा था और अपनी भकभकाहट को शांत करने हेतु आवाह्न करते हुये कह रहा था -

विदिसियन खूब मचाई लूट
भइया भइया लड़ा दये, डार बीच में फूट
बंदर बांट के खा गये सब कुछ, बची न एकऊ खूंट
पकर के मारो इन गोरन को, देओ न कोऊ छूट
विदिसियन खूब मचाई लूट।[७]

जहां पुरुष वर्ग अपनी आजादी का मतवाला बनकर आत्मोत्सर्ग को तत्पर हो रहा था वहीं यहां की मातृशक्ति भी प्रेरणा के मार्ग प्रशस्त कर रही थी। माता के मन्दिरों में वीर रस से ओतप्रोत गीत मातृ-शक्ति का आवाह्न कर रहे थे -

जय हो मात भवानी मैया जय हो मात भवानी
महिसासुर को तुमने मारो, कहत पुरान की बानी
राक्षसरूपी इन गोरन की हो रई खूब मनमानी
अब मैया तुम फिर से प्रगटो, रहे न कोऊ निसानी
जय हो मात भवानी।[८]

यहां के लोक जीवन ने अपनी सांस्कृतिक चेतना को जीवन में जीने का संकल्प ले लिया था। उसे ऋग्वेद का उक्त मन्त्र पुकार रहा था और उसके कर्तव्यों का बोध कराते हुये दुष्ट अंग्रेजों के दमन हेतु प्रेरित कर रहा था। सारा देश क्रांतिकारियों का कार्यस्थल बन गया था। रोटी और कमल की भाषा से देशवासी आगे बढ़ रहे थे एवं अंग्रेजों के विरुद्ध सशक्त अभियान का सूत्रपात हो रहा था।

सगरे देश में धूम मची है रोटी और कमल की।
अब तो बेरा आ गई भैया, कर लेओ अपने मन की।
ना अब डरने ना अब झुकने, सीना ताने सनकी
जहां पकर में आवैं पकरो, काट नाक देओ इनकी
घिघयायें पतयायें चाहे जितनो, सुनौ न एकऊ इनकी
गुपचुप गुपचुप करौ सफाई तुम, नासुकरे गोरन की।[९]

यहां के लोग भी दुष्ट अंग्रेजों का हनन करने के लिये मतवाले हो रहे थे। सन् १८५७ की क्रांति में धूम मचाने वाली, अंग्रेजों के छक्के छुड़ाने वाली खूब लड़ने वाली झांसी की मर्दानी रानी अपने किले के द्वारा अपनी प्रजा का उत्साहवर्धन कर रही थी। उन्हें अंग्रेजों के खिलाफ मोर्चा लेने के लिये प्रेरित कर रही थी। यहीं झांसी का किला अपने बुर्ज से अपनी स्वातन्त्रप्रियता का ध्वज लहरा रहा था। इसी किले के विषय में बुन्देलखण्ड में प्रचलित था -

"सहर झांसी है जहां आला, किला बना बुन्देलखण्ड वाला
नगर के आसपास है कोट, तोप लगी किले में ओट
मारता तीन कोस तक चोट, न व्यापै दुस्मन की कोई चोट
लड़ी लक्ष्मी रानी की गोट, करी अंग्रेजन पै चोट
डिवीजन रेल का निराला, किला बना बुन्देलखण्ड वाला।"[१०]

झांसी की रानी के निराले किले ने अंग्रेजों को ललकारा। युद्ध के बादल छा गये। सब तरफ जोरों से लड़ाई की तैयारी होने लगी। झाँसी के किले में भी तैयारी चल रही है -

गुरजन गुरजन तोपें चढ़ गईं,
ऊँची गुरज पै ठाड़ी सागरवाली रानी
मार मार तोपन के धुंआ उड़ा दये,
बांकी लड़ी मरदानी खूबई झांसी रानी।"

रानी ने लड़ाई लड़ी, परन्तु जिनके राज्य में सूर्य अस्त नहीं होता था, उन अंग्रेजों के सामने उसकी छोटी सेना ठहर नहीं सकी और रानी झांसी को अपना किला छोड़ने के लिये विवश होना पड़ा। रानी के किला छोड़ते ही अंग्रेजी फौज द्वारा झांसी पर कब्जा कर लिया गया और पूरी झांसी में इन दुष्ट अंग्रेजों ने जो उत्पात मचाया, उसकी बानगी निम्न गीत में देखी जा सकती है-

कट गई झांसी वाली रानी, चौतरफा से आफत आ गई
झांसी भई बिरानी
बहुयें बेटी पकर लेत हैं, करत रहत मनमानी
झांसी भई वीरानी।[१२]

सन् १८५७ की क्रान्ति चल रही थी। क्रान्तिकारी पूरे जोशो खरोश के साथ अंग्रेजों से लोहा ले रहे थे। समूचे देश में अलग-अलग स्थानों पर क्रांतिकारी अपने अपने हिसाब से अंग्रेजों के दांत खट्टे करने में लगे थे। इन क्रांतिकारियों के पास सूचना प्रसारण तन्त्र का अभाव था जिसके कारण एक निश्चित योजना के अन्तर्गत योजनाबद्ध तरीके से कोई कार्य नहीं हो पा रहा था। हमारे अपने क्रांतिकारी अपनी भारतमाता की स्वतंत्रता हेतु अपने प्राणों तक का उत्सर्ग किये जा रहे थे और ९० वर्षों की अथक उपासना रंग लायी। स्वतंत्रता देवी प्रसन्न हुयी और हम भारतवासी अंग्रेजों की दासता की बेड़ियों से मुक्त हो गये। सन् १८५७ की क्रांति में जन जन की भागीदारी रही और इसी कारण लोकगीतों की भी क्रान्ति की ज्वाला को और भड़कने में अद्वितीय भूमिका रही।

पहले जो लोकगीत जन जन में स्वतंत्रता प्राप्ति हेतु अलख जगाते थे, लोगों के हृदयों को झंकृत कर उनमें आजादी का जज्बा भरते थे, उन्हें अपना बलिदान तक देने के लिये प्रेरित करते थे, वही लोकगीत आज आजादी के बाद अपने भाव बदल चुके हैं। एक स्त्री अपनी सहेली से कहती है -

अब सारो पलट गओ राज, देश में आजादी आई बहिना।
मिट गई कारी रात, सबेरो हँसत दिखा रओ बहिना।[१३]

संदर्भ -

१. बुन्देली लोक साहित्य, डॉ. रामस्वरूप श्रीवास्तव, पृ. ३८८
२. वही, पृ. ३८६
३,४. बुन्देली लोक साहित्य, डॉ. रामस्वरूप श्रीवास्तव, पृ. ४००
५,६,७,८. लोकगीत संग्रह भाग १५, बुंदेलखण्ड संग्रहालय, उरई
९. लोकगीत संग्रह भाग १५, बुंदेलखण्ड संग्रहालय, उरई
१०. बुन्देली लोक साहित्य - डॉ. रामस्वरूप श्रीवास्तव, पृ. ३६२
११. वही, पृ. ४०४ १२. वही, पृ. ४०५ १३. वही, पृ. ४०३

- संस्थापक निदेशक
बुन्देलखण्ड संग्रहालय, उरई

बुन्देलखण्ड का लोकोक्ति साहित्य

– डॉ. दुर्गेश दीक्षित

लोकसाहित्य में लोकोक्तियों का महत्वपूर्ण स्थान है। इनके द्वारा किसी कथन में तीव्रता और प्रभाव उत्पन्न किया जाता है। इनके द्वारा भाषा की शक्ति बढ़ जाती है। लोकोक्तियों और मुहावरों में युक्त भाषा बड़ी ही मनोहारी और प्रिय प्रतीत होती है। इस प्रकार की भाषा को पढ़कर लेखक के अनुभव और ज्ञान की परिपक्वता का सहज ही में अनुमान लगाया जा सकता है। डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल के शब्दों में "लोकोक्तियां मानवी ज्ञान के चोखे और चुभते हुए सूत्र हैं। अनंत काल तक धातुओं को तपाकर सूर्य रश्मि नाना प्रकार के रत्न उपरत्नों का निर्माण करती है। जिनका आलोक सदा छिटकता रहता है। इसी प्रकार लोकोक्तियां प्रकृति स्फुर्लिंगी, (रेडियो-ऐक्टिव) तत्वों कीं भांति अपनी प्रखर किरणें चारों ओर फैलाती रहती है। उनसे मनुष्य को व्यावहारिक जीवन की गुत्थियों या उलझनों के सुलझाने में बहुत बड़ी सहायता मिलती है। लोकोक्ति का आश्रय पाकर मनुष्य की तर्क बुद्धि शताब्दियों के संचित ज्ञान से आश्वस्त सी बन जाती है और अंधेरे में उजाला दिखाई देने लगता है। यह अपना कर्तव्य निश्चित करने में स्वयं समर्थ बन जाती है। जो प्रत्येक मनुष्य के हेतु एक महत्वपूर्ण उपहार बन गई है।"

लोकोक्तियाँ हमारी एक अमूल्य निधि है। मनुष्य ने इनके माध्यम से अपने अनुभवों और चिंतन को साकार किया है। ये मानवी ज्ञान के संकेत मात्र हैं या यों कहिये कि संक्षिप्त सूत्र रूप हैं। इनका गहन अध्ययन करने से ज्ञान का भण्डार प्राप्त होता है।

डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने लिखा है कि लोकोक्तियाँ अनुभव सिद्ध व ज्ञान की निधि हैं। मानव ने युग युग से जिन तथ्यों का साक्षात्कार किया है उनका प्रकाशन इनके द्वारा होता है। ये चिरकालीन अनुभूत ज्ञान के सूत्र हैं। समास रूप में चिर संचित अनुभूत ज्ञान राशि का प्रकाशन इनका प्रधान उद्देश्य है। शताब्दियों में किसी जाति की विचार धारा किस ओर प्रवाहित हुई है यदि इनका दिग्दर्शन करना हो तो उस जाति की लोकोक्तियों का अध्ययन करना आवश्यक है। ब्रज और बुन्देलखण्ड में तो लोकोक्ति साहित्य का भण्डार भरा पड़ा है। यह साहित्य न तो किसी ने प्रकाशित किया और न ही संग्रह करने का प्रयास कुछ छोटे-मोटे संकलन प्रकाशित भी हुए किन्तु वे उस विशाल महासागर में से ली गई चंद बूंदें ही हैं। लगता है कि उन रत्नों के भण्डार में से अत्यल्प रत्न ही निकाले गये हैं जो नहीं के बराबर हैं। उत्तर भारत के हर अंचल की लोकोक्तियों में विचारों की दृष्टि से कोई भेद नहीं है। थोड़ा बहुत भाषा और प्रस्तुतीकरण का ही अंतर है किन्तु उनमें से ध्वनि एक सी निकलती है। लोगों के जिह्वाग्र पर सैकड़ों लोकोक्तियाँ रखी रहा करती हैं। यदि किसी से पूछा जाए कि तुम्हें कितनी लोकोक्तियाँ याद हैं - 'तो वह कह देगा कि एक भी नहीं। उसी व्यक्ति से यदि कुछ दूर बातचीत की जाए तो उसी के मुख से अचानक सैकड़ों लोकोक्तियाँ निकल पड़ेगी। जैसे - वौ तौ बसोर कौ मठा है, वौ सोनी कौन काम कौ तीसे कान छनबैं, वौ लरका मर जाय जो मैतर के झारैं जिये, ऊँट की चोरी न्यौरै न्यौरै नई होत, कौआ के कोसें ढोर नई मरत, जनम की पदू चनन खौ खोर, आलसी गदइया कुसगुन की बाट हेरै, नाँऊँ के बार आँगे आँगे, मर गई किल्ली काजर खौ, गिरदौला गोपी चंदन खौं, जबर मारै रोवन न देय, मोई मोई मारै रुरकारी सी का परी, बंदर का जाने अदरक की स्वाद, आदि यहाँ तक कि बड़े बड़े झगड़े भी लोकोक्तियाँ कह कर कर निपटा लिये जाते हैं। जो बातचीत करते समय जितनी अधिक लोकोक्तियों का प्रयोग करता है उसको उतना ही अधिक बुद्धिमान और ज्ञानी समझा जाता है। यह साहित्य प्रकृति के ज्ञान की भांति सार्वभौम है। इनके द्वारा रस का स्त्रोत सभी के लिए खुला है। इनका भण्डार अक्षय है। हजारों बार कही सुनी जाने पर भी जब उनका अवसर पर प्रयोग किया जाता है तब वे नवीन प्रतीत होने लगती हैं। इनसे सदा एक सा आनन्द रस टपकता रहता है। यह साहित्य संसार के नीति शास्त्र का प्रमुख अंग है। मिश्र आदि प्राचीन संस्कृतियों में भी इस प्रकार के बुद्धिमूलक साहित्य का अच्छा विकास हुआ है। संस्कृत और अपभ्रंश में भी लोकोक्तियों के अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं। जिनका बुन्देलीकरण भी हमारे पास सुरक्षित है। उदाहरण स्वरूप "आयसैरायसं छें (कांटे से कांटो काड़ौ जात) "ना क्षुधार्तोऽपि सिंहस्तृणस्चरन्ति" (कै हंसा मोती चुने कै लंघन मर जाँय) "श्वोसहस्नादध काकिणी श्रेयसी" (भगे भूत की लँगोटी ही भली) या ना नौ नगद ना तेरह उधार "हत्थ कंकणं किं दर्पणं दर्शति" (हांथ के कंगन खों का आरसी) आदि अनेक संस्कृत कहावतें आज भी बुन्देली में सुरक्षित हैं (लोकसाहित्य के प्रमुख ध्येता श्री जगदीश उपाध्याय के शब्दों में "लोकोक्ति साहित्य समाज संपोषित भव्य विचारों का रुचिर दर्पण होता है। जन जीवन की दिव्य छटा इस साहित्य में ही दृष्टिगोचर होती हैं जनपदों में सांसारिक जीवन उपकरणों का सौजन्य होने के कारण लोग आनन्दानुभूति एवं शाश्वत आनंदोपलब्धि को अपने जीवन का लक्ष्य मानते हैं। उसकी परिणिति उन्हें इसी साहित्य में दृष्टिगत होती है। यह साहित्य जनपदीय संस्कृति का अक्षय भण्डार होता है। यह अपनी अनुपम आभा से अनुप्राणित पावन भाव से पोषित समाज में संवर्द्धित तत्कालीन तद्देशीय संस्कृति में रमणीय रूप की झांकी दिखलाता हुआ सहृदयों के हृदय को बरवश आकृष्ट करने की क्षमता रखता है।"

लोकोक्तियों की सामान्य विशेषताएं -

लोकसाहित्य के प्रमुख अध्येता डॉ. कृष्ण देव उपाध्याय, डॉ. शंकर लाल शुक्ल, डॉ. सत्येन्द्र, डॉ. रामाजी उपाध्याय, डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल, डॉ. सरोजनी रोहतगी और डॉ. श्रीराम शर्मा प्रभृति विद्वानों ने लोकोक्तियों की निम्नलिखित विशेषताओं का उल्लेख किया है -

१. **संक्षिप्तता** - यह तो पहले ही उल्लेख किया जा चुका है कि ये मानवी ज्ञान के चोखे और चुभते हुए सूत्र हैं। इनके द्वारा कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक भावों को व्यक्त करने का प्रयास किया गया है। या यों कहिये कि 'गागर में सागर भरने का प्रयास किया गया।' बुन्देलखण्ड की अधिकांश लोकोक्तियां संक्षिप्त ही हैं। जरा देखिये कुछ उदाहरण - गैल में हँसें उर आँख नटेरें, बंदर का जाने अदरक की स्वाद, घर में वैद मरी मइया, काँख में लरका गाँव में टेर, अगायीं सो सवायों पैलाँ मारे सो पीर आँख फूटी पीर निजानी, घरी भरकी बुरवाशन सब दिनकी आराम, चूले खाई मजोटै कड़नें, चूले में हगै शनीचर खौं खोर आदि संक्षिप्त लोकोक्तियों के उदाहरण हैं।

२. **लय या गति** - इनमें लय और गति को विशेष स्थान दिया जाता है। कुछ बुन्देली कहावतों में पद्यात्मकता के दर्शन होते हैं। वे प्रायः लय और प्रवाह में आबद्ध होते हैं। उनके कहने में मुख सुख प्राप्त होता है। कुछ लोकोक्तियां तुकांत और गेय होती हैं। राँड़ माँड़ई में राजी, खों गाड़े, कौरा माँगे, स्यारी सबसैं न्यारी, कोऊ कये कऊ की मदँऊ कयें मऊ की, घर के जान बरातें गये, रानीपुरा कठवा में दये, अगौनी सबसे नौनी, राँढ़ कड़ी सें दार भली, ना बात बिरानी कैये ना ऐचातांनी सइयें, उत्तम खेती मध्यम वान, अधम चाकरी भीख निदान। जागैं सो पावैं सोबै सो खोवैं, अक्कल बिन पूत लटेंगर से, गुन बिन बिटिया डेंगुर सी। बाँड़ी सबसैं चाँड़ी, आरी बाँड़ी आरी लिइयै, मैं तौ पूछई उंठायें ठाँढ़ी, अपनी अपनी परी आन को जाबै कुरयानें, कान, सूत न पौनी उर कोरिया सै, लठा लठी, आँदरी मूते जगत्तर देखै आँख के अंधे नाम नैनसुख, साँसी कयैं मौसी की काजर आदि।

३. **सच्चाई और अनुभव** - इनमें 'सत्यता और अनुभव की परिपक्वता के दर्शन होते हैं। अनुभव से प्राप्त ज्ञान परिपक्वता और सत्यता के अधिक समीप होता है। मनुष्य ने जो कुछ देखा और अनुभव किया और सीधे शब्दों में व्यक्त कर दिया और वहीं लोकोक्तियां बन गईं। ये अनुभवजन्य ज्ञान के संक्षिप्त सूत्र हैं। मौसम और कृषि संबंधी कहावतें अनुभव जन्य ही हैं। मनुष्य ने जो कुछ देखा समझा और अनुभव किया उसी के आधार पर इन कहावतों की रचना की थी। जो सत्यता के अधिक समीप हैं। जैसे एक पाख दो गाना राजा मरें के साना, शुक्रवार की बादरी रही शनीचर छाय, ऐसी बोले भड्डरी बिन बरसै ना जाय। परमा तुए दोज घाराय, कछू दिना साँवन कै लजाय। पूनै परमा गाजैं तो दिना बहत्तर बाजै, बरस लगेगी ऊतरा माँड़ पियेगे कूतरा, बरस लगै अगनीवा पटो फेर दो दीवा, गुन घट गओ गाजर खाये सै, बल बढ़ गओं बाल चबाये सै, सावन व्यारू जब कब करिये भादौं वाकौ नाव न लिइये क्वाँर माँस के जे पखवारे जतन जतन सैं, जे निनवारे, आदे कातक पर दिवारी, भर भर पेटाँ करो दिवारी। व्यारी कबँहुना छोड़िये, बिन व्यारी बल जाय, जो व्यारी औगुन करें, दुपरै थोरी खाय। बादर में हुन बादर खमसैं कहें भड्डरी पानी बरसैं। पूस न बइये पीस खइये। अगौनी सबसे नौनी। खेती धन की नाश धनी न हुइयै पास। परहत बंश संदेशन खेती। खेती पाती बीनती औ घोड़क की तंग।

अपने हाथ समारिये लाख लोग हो संग।।
चैतें गुड़ बैशाखे तेल, जेठे लटा असाढ़े बैल।
साँवन निब्बू भादी दई, क्वाँर करेला कातक मई
अगनें 'जीरे पूसे' धना, 'माँवमें मिसरी फागुन चना
जो जे चीजे बंद के खाय, बिना बुलाये सरग खों जाय

अषाढ़ की चूकी किसान उर डार की चूकी बंदरा। खेती करे बंज खो धावै, दोमे सै एकऊ नई पावै। आधी छोड़ सारी खौं धावैं आदी मिले न सारी पावैं। सौत की लरका जेठ की घाम, आँसत सबकी नई आराम।

आषाढ़ करी गोंतरी, साँवन करी अथइया।
क्वाँर में तलाश रये, गर्रू कौन तलइयाँ।
घनो बौका उर गैरी जोता, कबँहु हारत नइयाँ।
लाल बरसें ताल भरें, कारे बरसै पारे।
जब उठे धुंआँ धारे, तब आये नदी नारे।
साँवन के आँदरे खौं, हरौ हरौ सूजत।।
जाके पाँव न फटी बिमाई, वौका जाने पीर पराई।
सौ सुनार की, एक लुहार की।।
सौ पै फुली सहस पै काना, सवा लाख पै ऐंचक ताना।
ऐचक ताना करें विचार, मैं 'मानो कैरा सो' हार।।
कैरा बुद्धि विनासी, करै बाप की हाँसी।
जीकी नइयाँ छतियँन बार, ऊसैं मानें कैरा हार।।

इस प्रकार की अनुभव जन्य कहावतों का भण्डार बुन्देलखण्ड में भरा पड़ा है।

४. **घरेलू भाषा का प्रयोग** - इनकी भाषा बहुत ही सहज सरल और लोक प्रचलित होती है। जिसे सुनते ही इसका सीधा प्रभाव मानव हृदय पर पड़ता है। मानसिक व्यायाम करने की आवश्यकता नहीं होती। मुँह से निकलते ही लोग इनका अर्थ समझ लेते हैं। इनसे क्लिष्टता और भावों की गूढ़ता का कोई प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। प्रायः ये प्रसाद गुण प्रधान होती है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत है - गोला नाऊ सबसै अंगाऊ, नाऊ के बार आँगे आँगे, धोबी की कुत्ता न घर की ना घाटकी, लोह, जाने, लुहार जाने। धोकन हारे की बलाय जाने। अंधे पीसै कुत्ते खाय, अंधे के हाँथ बटेर, नाँव बड़े उर दरशन थोरे, आँख के अंधे उर नाँव नैन सुख, गुर खाँय गुगुलन सैं परेज। अपने नैन मोय दै, उर तै डोलत फिरै, कये सै धोवी गदा पै नई चढ़त, कुमार की बहू घूरन घूरन। गदा सै नई जीतै गदइया के कान मरोरै, साँसी कें मौसी की काजर, ऊँची दुकान फीका पकवान, आदि अनेक लोकोक्तियाँ हैं जिन्हें सुनते ही लोग उनके अर्थ को समझ लेते हैं।

वयोवृद्ध व्यक्तियों ने अपने अनुभवों को सीधी सादी भाषा में समाज के समक्ष परोस दिया। जिनका लाभ आज जन सामान्य प्राप्त कर रहा है। भड्डरी और बोधा ने मौसम और कृषि पर आधारित अधिकांश कहावतों की रचना की है जिनके द्वारा आज के कृषक समाज का मार्गदर्शन हो रहा है।

आज ये मानव समाज की अमूल्य निधि है। इन पर किसी व्यक्ति विशेष का अधिकार नहीं है। समय एवं परिस्थिति के अनुकूल मनुष्य अपने बौद्धिक बल से इनकी रचना करता आया है।

५. **लोकप्रियता** :- इन्हें समाज में सर्वाधिक लोकप्रियता प्राप्त हुई है। ये इतनी सहज होती है कि इन्हें सुनते ही लोगों को अभ्यास हो जाता है। अवसर आने पर वे स्वतः ही मानवमुख से निसृत होने लगती है। हर व्यक्ति अवसर पर इनका प्रयोग करता है। ऐसे कम लोग होंगे जिन्हें दस बीस लोकोक्तियाँ याद न हो। इसका अर्थ यह हुआ कि मानव-समाज में इन्हें अधिक लोकप्रियता प्राप्त है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं - जिनमें कुछ जातीय विशेषताएं भी दिखायी देती है। जैसे -

जो अहीर पिंगल पढ़े एक भूत लागो रहे।
अहि अहीर की एकगत, अहिसैं कठिन अहीर।
अहितौ बाचा में बंधे, बाचा काटि अहीर।।
माँगे बनिया दाम न देय, घिची मरोरैं सबरौ देय।
व्यापारी उर पाहुनों, तिरिया और तुरंग।
ज्यों ज्यों ये ठनगन करे, त्यों त्यों बाढ़े रंग।
लरका सीकै नाऊकी, मूढ़ कटे गमार की।
नीम न मीठे होय, खाव गुर घी सै।
मौपे राम राम, पेटे कसाई के काम।।
साँसन खौ फाँके परे, लाबर लड्डू खाँय।
मर्द मरे नाँव खौ, ना मर्द मरे पेट खौ।
करम हीन किल्पत फिरे कलप विरछ की छाँय।
साँस की आँच नई आऊत।
लोभी कौ धन खौ लाबर खाय और बचें सरकारे जाय।
शूर कटारी विप्रधन, सिर कट्टे सो लेय।

चमड़ी जाय, दमड़ी न जाय, जैसे नाग नाथ ऊसई सांपनाथ, नांक नंगी गरे हमेल, नंगू कैं गढ़ई भई बेर बेर-बायरै गई। सोने की छुरी पैटे नई पचत। घर में नइयाँ चून चनन की ससुरे बरीं सुहाबै। मो दुखिनी खौ लांगा नइयां कुत्ते झूल सुमाबै। सौ सौ जूता खांय तमाशौ घुसकै देखै, मोई मोई मारैं रुरकारी सी कापरी आदि कहावतें कही जाती हैं।

लोकोक्तियाँ मानव जीवन में पग पग पर उपयोगी हैं। प्रत्येक क्षेत्र में उनकी उपयोगिता है। इस बात को किसी भी प्रकार नकारा नहीं जा सकता। इन कहावतों का वर्गीकरण करें तो यह स्पष्ट हो जायगा कि उनसे मानव जीवन का कोई क्षेत्र अछूता नहीं है। डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल एवं श्रीकृष्णानंद जी गुप्त ने लोकोक्तियों का वर्गीकरण निम्नानुसार किया है।

१. **स्थान संबंधी** - कुछ स्थान विशेष पर घटित घटनाओं के आधार पर बुन्देलखण्ड में लोकोक्तियाँ निर्मित हो गई। पहले तो उसका महत्व उसी स्थान पर रहता था। धीरे-धीरे वे सार्वजनिक हो गई और किसी अर्थ विशेष के लिए उनका प्रयोग किया जाने लगा। वे सार्वदेशीय हो गई और हर क्षेत्र के लोग अवसर विशेष पर उनका प्रयोग करने लगे जैसे, 'घर के जान बराते गये रानीपुरे कठवा में दये।' कोऊ कये कँऊ की। मदऊकये मऊकी। अपनी अपनी परी आन कौ जावै कुरयाने कान। जितै की गैल नई चलने उतै के कोस का गिनने। उतै तो बरसाने कैसी होरी हो रई। देवी फिरै बखत की मारी पण्डा करकै परचै दो। वेतौ सकराँत सी बाँच रये। उतै तौ खरेला कैसो पुरान बच रओ। भरतपुर लुट गओ। उनकी तौ पलेरा कैसी लगी। तुम कौन बल्दोगढ़ की तोप आव। वे तौ डूँढ़ा वारे राव साव आँय, दार भात में मूसर चन्द्र, बाप ने मारी, मेंढ़की बेटा तीरन्दाज, बेई कथूले कक्का के मौ में उर बेई पाँडे के पत्तरा में, उठाई जीव तरुवा से मारी। आदि अनेक कहावतें स्थान विशेष के आधार पर निर्मित हुई है किन्तु वे अर्थ विशेष के लिए रूढ़ हो गई है। भले ही उनका जन्म स्थान बुन्देलखण्ड रहा है किन्तु आज वे सार्वदेशिक और सार्वभौम हैं।

२. **इतिहास संबंधी** - कुछ लोकोक्तियों में प्राचीन इतिहास की झलक दिखाई देती है। कुछ कहावतों में ऐतिहासिक महापुरुषों के नामों और उनके कार्यों का संकेत होता है, जो समाज के लिए अनुकरणीय है। कुछ ऐतिहासिक कहावतों के उदाहरण प्रस्तुत हैं - काँ राजा भोज काँ भुजुवा तेली, लंका खौका सोनो दिखाऊत, घमण्ड तौ रावण कौ नई रओ, जीकी बैन अन्दर ऊकी भइया सिकंदर, लरका राजा बूढ़ी मंत्री - काम बिगरबै संजा शाम। वे कौन बड़े राजा हरिचंद आंय। राजा नल के पांसे सांसे के सांसे, जौतो विक्रमादित्य कौ सिंहासन आय, ओछी मंत्री राजै नासैं ताल विनासै काई आदि ऐतिहासिक कहावतें हैं। ये अर्थ विशेष के लिए रूढ़ हो गई हैं और लोग समय पर उनका प्रयोग करते हैं।

३. **कथाओं पर आधारित** - कुछ कथायें सूत्र रूप में प्राप्त होती हैं और वे लोकोक्तियों के रूप में आज भी सुरक्षित है। उनमें एक कथा समाई रहती है जिनको सुनकर लोगों को कौतूहल मिश्रित आनंद प्राप्त होता है। लोग उनमें छिपी हुई कथा को सुनने के लिए लालायित रहते हैं जिन्हें सुनकर अच्छा खासा मनोरंजन होता है। जैसे - जौ त्रिसूली पइसा पंडित के लाने, नंगी भली कै मूसर आड़ी, पई पई करत फिरौ गिरदा नौवां कैसो हाल हुइयै, घी देतन वामुन नर्रयात, नई नाइन बांस कौ नहन्ना, सब एकई गड़ई के पीबे वारे हैं, ठाकुर की बरात में सब ठाकुरई ठाकुर, माते दुके प्याँर में कौ कये कौ बैरी होय, बाप ने मारी मेढ़की बेटा तीरंदाज, कये सै धोबी गधा पै नई चढ़त, पूत के लक्षछन पालना में दिखात, तिरिया चरित जाने ना कोई खसम मारकै सत्ती होई, नट के करम बेड़िया करें तौ काय खौ बेड़िया बर पै चढ़े, कोरी कौ व्याव कड़ेरौ हाँत जोरें, फिरै आदि इस प्रकार की अनेक कहावतें प्रचलित है। जो एक अर्थ विशेष के लिए सीमित है किन्तु उनमें एक एक लघु कथा छिपी हुई है। उन सारी कथाओं को लेकर एक ग्रंथ की रचना की जा सकती है।

४. **समाज चित्रण** - कुछ कहावतों में तत्कालीन समाज का

यथार्थ स्वरूप दिखाई देता है। उनमें सामाजिक परिस्थितियों और समाज के विविध कार्यकलापों की झांकी दिखाई देती है। उनमें समाज के अच्छे बुरे कार्यों के संकेत होते हैं। जिनसे आधुनिक समाज का मार्गदर्शन होता है। उनके कुछ उदाहरण दृष्टव्य है - 'चूले खाई मजोटे हुनड़ने', चौबे छब्बे बनबे गये ते उर दुब्बे बनकै आ गये, नर्दा की विन्त्वारी करन गये उर बखरी हार गये, तीन कनबजिया तेरा चूले, बारा माते तेरा किसान, तीन में ना तेरा में ढोल बजावै डेरा में, कानी अपनीं टेंट ती निहारत नइयाँ उर दूसरे की फुली परपर कै देखत, कनवाँ सै कनवाँ कहो तुरतई आबै टूट। बिदी बिदी सें पूछ लौ कैसे गई ती फूट। छिदाम की बुढ़िया टका मुड़वाई, दान की बछियन के प्रान नई होत, गोला नाऊ सब सै अँगाऊ, बामुन कुत्ता नाऊ जात देख गुर्राऊ, जैसी तोरी ढपली ऊसऊ मोरौ राग, जैसो तैने त्रिशूली पइसा दओ ऊसई हमनें पिंडपारे, पूजा तीन प्रकार की छोटी बड़ी मजोल, जा जैसो मौका परे ताँ तैसी दई खोल। जबर मारै रॉवन ना दैय, मोई मोई मारै रूरकारी सी कां परी, काँख में लरका गाँव में टेर, लाबर बड़ी कै दौंदा, सांसन खौ फाँकै परे लाबर लड्डू खाय, कसाई की सुकैनी कऊँ बुकरा खा सकत। आलसी गदइया कुसगुन की बाठ हेरै, जौ लौ लालाजू पाग समारत तो लौ दरबारई उठो जात, कये सैं धोबी गदा पै नई चढ़त, ऊँट चढ़े मलकइया आबै, साहब की अँगाई उर घुरवा की पछाई सै बचो चइयै, सौ दिना चोर की एक दिना सावकी, साँसी कये मौसी कौ काजर, साँसी बात सटोले कये सबके मनसै उतरे रये, कै हंसा मोती चुनै कै लंघन मर जाँय, कौवा के कोसै ढोर नई मरत, कुतियाँ पिरागै जांय तो हुडिया ती की चाटै, हंडिया में हाँत नई डारी जात सीतआ टटोव जात। मांगे वनिया दाम न देव, घिची मरोरै सबरो देय। अमिया निमुआ बानिया मसके सैं रस देय, आव भाव सै ठाकुर माने, बामुन पूड़ी ख्वाये सैं, लाँच घींच सै लाला मानें और जात पनयाये सैं। मीन भके सो सब भके बचो न एकैऊ माँस कायथ घर भोजन करे, बची न एकऊ जात। हंडिया है सरमदार छै मईना नौ-चुरे दार पाँवनी है गम्मखोर साल भरनी अड़ो दोर। एक दिना के पाँवने, दूसरे दिना के पई, तीसे दिना रुके सो पूरे बेशरम सई, कौवा के कोसै ढोर नई मरत, वी सोनी बरे जीसैं कान छनें, वी लरका मर जाय जो मैं तर के झारे जिये, जो तुम करन फैसला चाहो दोई जनें गम खाओ। उत्ते पाँव पसारिये जित्ती चादर होय आदि अनेक कहावतों में सामाजिक जीवन के चित्र उभर कर आये हैं। इसे सहेज कर रखना आवश्यक है। अन्यथा इससे वंचित हो जायेंगे।

५. धर्म और जीवन दर्शन पर आधारित - हमारा भारत ध र्म प्रधान देश है। इसलिए लोक साहित्य की विविध विधाओं में ध ार्मिकता के दर्शन होते हैं। कुछ लोकोक्तियों में चिंतन की गहनता भी दिखाई देती है। हमारे पूर्वज धार्मिक दार्शनिक और चिंतक रहे हैं। इसी कारण से कहावतों में भी धर्म और दर्शन का प्रभाव दिखाई देता है। लोकोक्तियों के माध्यम से पूर्वजों ने नई पीढ़ी के शुभ संदेश दिए हैं। कुछ कहावतों के उदाहरण दृष्टव्य हैं। करम हीन किलपत फिरै, कलप विरछकी छाँय, जैसी करनी वैसी भरनी, जाही विध साखै राम ताही विध रहिये, भगवान के घरै देर है, अंध ेर नइयाँ, अक्कल बिन पूत लठेंगर सै, गुन बिन बिटिया डेंगुर सी। जोई राम सोई राम, कर लेय काम भजलेय राम। मीपे राम राम पेटै कसाई के काम, गाय न बाछी नींद आय आछी, अन्त में सबखौं ओई घरै जाने। कुछ उक्तियाँ कबीर तुलसी रहीम और वृंद ने दोहों के रूप में कह दी है। जो मानव जीवन के मूल मंत्र हैं-

"राम नाम कहते रहो धरे रहो मन धीर।
कारज बेई सुधारिहै कृपा सिन्धु रघुवीर।।
रूखा सूखा खायके ठण्डा पानी पीव।
देख पराई चूपड़ी मत ललचावै जीव।
गर्ज परे कछु और है गर्ज सटे कछु और।
तुलसी भाँवर के परत नदी सिरावत मौर।
खेती पाती विनती औ घोड़े की तंग।
अपने हाथ समारिये लाख लोग हो संग।।

कुछ और उदाहरण - बुरई मार करतार की दिल सै देय उतार, अंत भलौ सब भलो, अनेक कवियों ने अपने काव्य में इन लोकोक्तियों का प्रयोग किया है। जो जन-जीवन और समाज कल्याण की दृष्टि से अधिक मूल्यवान है। मानव जीवन में पग-पग इनका प्रयोग किया जा सकता है।

६. कृषि कार्य पर आधारित लोकोक्तियां - प्राचीन काल में कृषि को ही मूल व्यवसाय माना जाता था। जीविकोपार्जन का यही एक प्रमुख धंधा है। हमारे पूर्वजों ने जो अनुभव किए वे सबके सब नई पीढ़ी को बांट दिए और वे सबके सब सत्यता की कसौटी पर खरे उतरते हैं। भारतीय कृषि वर्षा और मौसम पर आधारित है। कहावतों में प्रदर्शित मौसम के लक्षणों पर विचार करते हुए कृषक कृषि की भावी योजनायें तैयार कर लेते हैं। कृषि कहावतों से उनका मार्गदर्शन होता रहता था। आज भी उनकी उपयोगिता को नकारा नहीं जा सकता। बुन्देलखण्ड का कृषक आज भी इनका आश्रय लेता है। कुछ मोटे मोटे उदाहरण प्रस्तुत हैं - एक पाख दो गाना, राजा मरे साना। पूनौ परमा गाजै तौ दिना बहत्तर बाजै। सुन घनेरी बन बेगरी आदि।

सावन शुक्ला सप्तमी, चंदा चटक करें।
कै जल दीखे कूप में, कामिनी कलस भरें।।
शुक्रवार की बादरी, रही शनीचर छाय।
ऐसी बोलै भड्डरी, बिनु बरसै ना जाय।
बरस लगेगी ऊतरा, माड़ वियेंगे कूतरा।
बरस लगै अगनीवा, पटो फेर दो दौवा।।

पूसन बैये पीस खइये आदि कहावतें बुन्देलखण्ड के किसानों को दिशा निर्देशन देती है। आज भी ये कहावतें कृषि के क्षेत्र में उपयोगी हैं।

७. शिक्षा और ज्ञान सम्बन्धी कहावतें - कुछ बुन्देली लोकोक्तियाँ शिक्षण प्रधान होती हैं। उनमें उपदेशात्मक प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं। जिन्हें सुन सुनकर जन साधारण को ज्ञान और अनुभव की वृद्धि होती है। मानव समाज इन लोकोक्तियों का स्मरण करके अपने जीवन के दोषों को दूर करने का प्रयास

करता है। इनको प्रस्तुत करके बड़े बड़े पेचीदे और उलझे हुए झगड़े निपटाये जाते हैं। पंचायतों में तो इनका बहुत प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार की लोकोक्तियों के कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं - सावन व्यारी जब कब करिये भादौं वाकौ नाँव न लिइयै, अलकस नींद किसाने खोबै चोरै खोबै खांसी। सावन के आंदरे कौ हरो हरो सूजत, ऊँट की चोरी निओरै निओरै नई होत, दूद कौ जरो मठा खौ फूँक कै पियत, पानी में रैकै मँगर सै बैर नई बिसावने आऊत, एक हाँत सै तारी नई बजत, दोई पलीतन दै दओ तेल, हम नाचै तुम देखो खेल, हाथी के पलान गदन पै नई चलत, सांप के पांव सांपई खौं दिखात, नांव बड़े उर दरसन थोरे, ना बात बिरानी कइसे ना ऐचातानी सइये, ऊमर फोरो ना पखा उड़ाव, काँसे की सुर काँसे, अपनी दाम खोटो तो परखइये का दोष, सूदी उगरियन घी नई कड़त, दुधार गइया की लातें सऊने आऊती, ना ऊधो सै लैने ना माधो की दैने, मनकी बात मनई में राखैं, का कहूं सै काने, कये सै कोऊ पुजै नई देत, सुनिये सबकी करिये मन कीं, डरे रओ भोमे दये रओ गोमें। भोके ना दर्रयाएं मसकऊ काट खांय, देखत के इंदवान नौने गुलबेल उर नीम पै चढ़ी, सम्पत सै भट नई उर दालुद्दुर सै लठा लठी, नम न मीठे होय खाव गुर घी सें। डरे रहो दरबार में ढका पानी के खाव। इक दिन ऐसी आयगी स्वयं धनी हो जाव। दान की बछियन के कान नई होत, बीदे पै सीदौ दओ जात, आदि सैकड़ों शिक्षा प्रद लोकोक्तियों बुन्देलखण्ड में प्रचलित है।

८. **नीति सम्बन्धी कहावतें** - कुछ उक्तियाँ नीति प्रधान होती है। जिनसे समाज को नैतिक शिक्षा मिलती है। संस्कृत साहित्य में इस प्रकार की उक्तियों की अधिकता है। इनसे पथभ्रष्ट समाज का मार्ग प्रदर्शन करता है। इस प्रकार की नीति प्रधान कहावतों के कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं कांटे सै काटो जाड़ो जात। लोहा सै लोहा कटत, साँसी बात सटोले कयं, दूर कै ढोल सुहावने, नाक नंगी गर्रे हमेल, हीरा की परख जौहरी जाने, ऊँग ना देखै टूटी खाट प्यास न देखे धोबी घाट, कै हंसा मोती चुने कै लंघन मर जाँ, बंदरा का जानें अदरक की स्वाद। नाच न आबै आँगन टेड़ो, जनम की पदू चनन खौ खोर, सासै ना भाबै बऊये बताबै नी मैंदा की कै ठनकाँ लागन, दूद की दूद पानी की पानी, मान न मान मैं तेरी मेहमान, आदि हजारों लोकोक्तियों बुन्देलखण्ड के वयोवृद्ध लोगों के मुख में सुरक्षित है। यह लोक साहित्य की एक मूल्यवान विधा है। इनको सुरक्षित रखना हम सबका कर्तव्य है।

संदर्भ ग्रंथ -
१. लोक साहित्य की भूमिका - डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय,
२. ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन - डॉ. सत्येन्द
३. पृथ्वीपुत्र - डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल

- कुण्डेश्वर, जिला टीकमगढ़ (म.प्र.) 卐

मन धीरज छूटे

– भारतेन्दु अरजरिया 'इन्दु'

सावन भादों सूके कड़ गये, मन धीरज छूटे।
छाई बदरिया बूंदें-पर गईं, विधना हैं रूठे।।

गाँव-घरन में डर गये तारे,धरवारी संग बच्चा बारे।
ब्योरे से कछु कर्जा काड़े,धर दये घर के बासन भाड़े।

का काऊ खाँ दोस, हमाये भाग हते फूटे।
सावन भादों सूके कड़ गये, मन धीरज छूटे।

घरै छूट गये ददुदा बाई,अबना दैबै कोउ खबाई
रीत मिट गई साल सवाई कछू मदद, सरकारी आई।

कछू लगे तहसील गये में, कछु हाकिम लूटे।
सावन भादों सूके कड़ गये, मन धीरज छूटे।

औरन ने खपरा चटकाये, घेंटी-बाल बींन कें ल्याये।
कैसऊँ अपने चाल चलाये, सौ दो सौ सरकारी पाये।

बच्चा भये बीमार तपन में अस्पताल झूंटे।
सावन भादों सूके कड़ गये, मन धीरज छूटे।

दिल्ली फिर पंजाबै धाये, काम मजरी कठिन कहाये।
बिके दिहाड़ी रकत सुखाये, मन-तन बेंचे, पेट चलाये

कछू दाम बूढ़न खां भेजे, तन निरसे सूखे।
सावन भदों सूके कड़ गये, मन धीरज छूटे।।

ई सूखा ने कुआ सुखाये, पर गये खेत ढरन नईं पाये।
काल परो परदेश सिधाय, दीन-बन्ध ने दुःख दिखाये।।

रिन कौ सोच काल की चिन्ता नें तन मन फूँके।
कैऊ बरस, काल के मारे, मन धीरज छूटे।।

– 20 मैथिलीशरण गुप्त मार्ग,
महोबा (उ.प्र.) 卐

कवि भावना

– लक्ष्मी प्रसाद गुप्त 'किंकर'

दूद दई मठा नैनूँ खोवा घी खवाउतीं हैं,
खुशी राँय गैया औ भैंसियाँ ई देश कीं।
खुशी राय ज्वान औ किसान औ किसानी राय,
मिटैं न जे गऊचरैं कौनउँ प्रदेश कीं।।
ढीट दानौ दायजे कौ ईको खोज मिट जाय,
खुशी राँय बउयैं औ बिटियाँ ई देश कीं।
जीन मोरे देश खौं न देख कैं सिरात होय,
दोइ आँखें फूट जाँय माता ऊ बिदेस कीं।।

- ईशानगर, छतरपुर (म.प्र.) 卐

कवि बलभद्र मिश्र की अज्ञात रचना : उपवन विनोद

— उदय शंकर दुबे

खोज में कभी-कभी बड़े महत्वपूर्ण ग्रंथ रत्न मिल जाया करते हैं। बलभद्र मिश्र कृत उपवन विनोद की उपलब्धि की भी अपनी कहानी है। मैं अपने मित्र, साहित्यसेवी श्री हरिविष्णु जी के आमंत्रण पर एक कार्यक्रम में सम्मिलित होने हेतु टीकमगढ़ गया था सो उन्हीं के निवास स्थान पर रुका था। कार्यक्रम की परिसमाप्त के बाद श्री अवस्थी जी ने कहा कि जब आये हैं तो एक दिन और रुककर मेरे पूर्वजों द्वारा संग्रहीत हस्तलिखित ग्रंथों का भी अवलोकन कर लें। मैंने सहर्ष स्वीकार कर लिया। श्री अवस्थी जी ने सभी पाण्डुलिपियों को बड़ी सावधानी के साथ सुरक्षित रखा था। उनके संग्रह में अधिकतर संस्कृत और हिन्दी में लिखे आयुर्वेद के ग्रंथ थे, पूछने पर ज्ञात हुआ कि उनके पूर्वज राजवैद्य थे। उसी संग्रह में उपवन विनोद ग्रंथ की प्रति भी थी। अवस्थी जी को बताया कि यह बलभद्र मिश्र की रचना है जो अभी तक ज्ञात नहीं थी। उन्हीं के संग्रह में मुझे बुंदेली गद्य में लिखे गये कुछ निमंत्रण पत्र भी देखने को मिले। जिनमें से कुछ पत्रों की प्रतिच्छाया कराकर मैंने अपने पास रख लिया तथा श्री अवस्थी जी से 'उपवन विनोद' की मूल प्रति भी प्राप्त किया। उन्होंने सहर्ष दे दिया। मैं इसका अध्ययन करता रहा जिसका परिणाम है - यह आलेख।

प्रति का विवरण - यह प्रति हाथ के बने देशी कागज पर काली स्याही से सुन्दर अक्षरों में लिखी गई है। प्रति का आकार २३ गुना १६ से.मी. है। पत्र संख्या ५३, अक्षर प्रति पंक्ति २०, पंक्ति प्रति पृष्ठ १८ तथा अनुष्टुप छंद संख्या १६६३ है। ग्रंथ का रचनाकाल अज्ञात है। प्रति का लिपिकाल संवत् १८६० वि. सन् १८१३ ई. है। यह प्रति टेहरी में लिखी गई है। लिपिकर्त्ता का नाम नहीं है। प्रतिलिपिकार ने ग्रंथ की पुष्पिका में ग्रंथ लेखक, पाठक, श्रोता एवं उस स्थान की धरती तथा वहां के राजा की मंगल कामना की है। ऐसी पुष्पिकाएँ बहुत कम मिलती है। प्रसंग अलगाव व विराम चिन्हों के लिए लाल स्याही का प्रयोग है।

बलभद्र मिश्र की रचनाएं - खोज विवरणिकाओं [१] तथा हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रंथों [२] में बलभद्र मिश्र की प्रमुख रूप से पाँच ग्रंथों का उल्लेख मिलता है। १. शिख नख (नखशिख), २. बलभद्री व्याकरण, ३. हनुमान नाटक की टीका, ४. गोवर्द्धन सतसई की टीका, ५. भागवत पुराण की टीका। उपवन विनोद के प्रारंभ में कवि ने अपने द्वारा रचित एक और ग्रंथ उद्धव गीता की टीका उल्लेख किया है। उद्धव गीता की टीका की प्रति अभी तक अनुपलब्ध है। इस प्रकार उपवन विनोद और उद्धव गीता की टीका को मिलाकर उनके सात ग्रंथ हो जाते हैं बलभद्र मिश्र की सबसे प्रसिद्ध रचना नखशिख है, इसकी बहुत सी टीकाएँ मिलती हैं। यहाँ तक कि गुजरात की ब्रजभाषा पाठशाला [३] में छात्रों को पढ़ाने के लिये मोहणोत चन्द्रसेन ने बलभद्र कृत शिख-नख ग्रंथ की टीका ब्रज भाषा में प्रस्तुत की थी। यह ग्रंथ [४] प्रकाशित हो चुका है। इस ग्रंथ के लेखक ने बलभद्र कृत रस विलास और दूषण विचार नामक ग्रंथों का भी उल्लेख किया है किन्तु ये दोनों ग्रंथ बलभद्र रचित नहीं हैं।

उपवन विनोद ग्रंथ का आदि-अंत प्रस्तुत है -

आदि - श्री गणेशाय नमः।। जु वृक्ष ब्रह्मांड मध्ये आछन्न ह्वे रहयौ हे यह वर्नियतु हे ।।अथ।। याकी मूलु क्रोड कहे श्री यज्ञवाराह की दंष्ट्रा है "कहा डाढ़ है, अरुशिव को सदनु कहा गृहु कैलास पर्वत है सोई जाका स्तंभ कहे पेडु हे।। आसा दशा तिनके स्तंवेरम हस्ती दिग्गज तेई शाख हे अरु विजु है आकाश ता विषै है गति जाकी।। तिनुको जु चक्रवालु।। मंडलु नक्षत्र समूह शुभ उत्तम दल पत्र समूह जा विषें।। अरु जाको पुहपु सीतल सु सुष दायकु चंद्र मंडल है। अरु जाके धर्म वृक्ष विषे श्री नरहरि की करुणा।। दया सोई उत्तम फल हे।। कलानि विषै धरिबे बढ़िवो के भेद ते पुष्य वाहु जानिबो।। जगति विषे एक वचन सु श्रीवंतु इंद्रजीत।। इंद्रिजित कौत कहे भूरुहा। इक्यासी प्रकार भक्ति भेदानुसार कलु बाहुल्य जानिबो।।

०० ०० ००

अंत-अर्थ - तहां पुन दक्षिणा देइ जथा सक्ति अरु जु जु अपने वेहि भानु होइ सु सु ब्राह्मनर्ल देइ सबही तै दूनौ आचार्यहि देइ।। तब प्रनपत्त करकै पहुचावै।। इहि विधि ब्रछन को उद्यापनु महोत्सव करें सु सकल कामनानि पावैं अरु अनंत पदु जु हे विष्णु पद ताहि पावै।।२१७।। इति उपवन विनोद समाप्तं।।१।। कार्तिक शुक्ल ।।११।। गुरुवाससरे।। श्री संवत् १८७७।। मूकांम टहरी। श्री रस्तु।। जा द्रशं पुस्तकं दष्टां ता द्रसं लिषतं मया।। यदि श्रुद्धं सुद्धं ता म दोशो न दीयते मंगलं लेखकानां ज पाठकानां ज मंगलं मंगलं सर्व श्रोतानां भूमि भूपति मंगलं।ॐ नमो भगवते वासुदेवाय नम।। श्री राम जू

विषय -बलभद्र मिश्र ने उपवन विनोद की रचना, ओरछा नरेश मधुकर शाह के पुत्र राजकुमार इंद्रजीत सिंह के अध्ययन के लिये की थी। यह संस्कृत में है साथ ही हिन्दी (बुन्देली-ब्रज) गद्य टीका भी है जिससे समझने में कठिनाई नहीं होती। बलभद्र मिश्र एक अच्छे टीकाकार थे। हिन्दी टीका से तत्कालीन गद्य लिखने का प्रमाण मिल जाता है। प्रारंभ में कवि ने अपने आश्रयदाता की प्रशंसा की है -

मधुकुरु साहि तनयः सनयो बुंदेलमंडलाधीराः।
श्री साराधन निरतः सततं समुखं चिरंजीत्यानु।।३।।

श्री राजा मधुकुर साहि तनयः प्रभु जु हे।। राजनीति मार्ग विषें प्रवीनु।। बुन्देल मण्डल को अधीस।। प्रभु श्री लक्ष्मी के ईस नाराइन के आराधन विषे जु अनुरक्त हैं।। सु इंद्रजीत सततं सर्वदा सुख संहित चिरंजीव होइ।।४।।

इसके बाद कवि ने एक श्लोक में अपना परिचय देते हुए लिखा है-

अथ कृता टीका को अपनी कुलोत्पति कहतु है -

श्री कृष्णदत्त नप्तमः काशिनाथ तनुद्भ।
रचते बलभद्राख्यः सनाढयः कुंभ संभवः।।५।।

अर्थ - श्रीकृष्ण दत्त मिश्र को नप्ता कहे नाती जु हे, काशीनाथ को तनुद्भ कहे पुत्र है, अरु जाकी जाति सनाढ्य है, सनोढिया हे, अरु जिनकी उत्पत्ति श्रीरामचन्द्र को दत्त कूम्हो ग्राम विषे हैं सु पंडित बलभद्र जाको नामु है सु यह ग्रंथ की रचना करी हैं।।६।।

उपर्युक्त वर्णन से ज्ञात होता है कि बलभद्र मिश्र के पूर्वजों का आदि स्थान कूम्हो नाम गांव था। कवि ने अपने ग्रंथ की प्रामाणिकता के लिये स्कंद पुराण, ब्रह्म पुराण, नंदी पुराण, देवी पुराण, महाभारत, दाम प्रमोद आदि प्राचीन ग्रंथों को आधार बनाया है। कवि ने सर्व प्रथम बाग लगाने की विधि का वर्णन किया है। उसका कथन है कि देवी पुराण में जो कहा गया है मैं उसका विस्तारपूर्वक वर्णन कर रहा हूँ -

१. कूप, वापी, बिहरि (बावली), आराम (बाग) ताल आदि का निर्माण कराकर, भूमि का शोधन करके वृक्ष लगाना चाहिए, बीज चयन, दिशाक्रम से वृक्षारोपण, तरु महिमा, तरु शुभाशुभ लक्षण क्रम संख्या २-६ तक।
२. वृक्षारोपण विधि, भूमि निरूपण पत्र ६-१४
३. पादप वृक्ष के बीज की उत्पत्ति - पत्र १४-१६
४. पुनः वृक्षरोपण विधि - १६-२०
५. अथ निषेध विधि २०-२१
६. वृक्ष रक्षा २१-२२
७. उपवन प्रक्रिया २२-२३
८. कूप निर्माण हेतु भूमि परीक्षा २३-३१
६. पोषण विधि, रोग निवारण ३१-३६
१०. कुणप जल की क्रिया ३६-३६
११. विद्युत से मारे गये वृक्ष का इलाज - (तरु चिकित्सा) सभी रोगों का इलाज ३६-४१
१२. विचित्रीकरण कौतुक - पत्र ४१-४६
१३. बाग की उत्सर्ग विधि - ४६-५३ तक

इस प्रकार बलभद्र मिश्र ने उपवन विनोद ग्रंथ में वृक्षारोपण की सर्वांग विधि का वर्णन किया है। वृक्षों की महत्ता का प्रतिपादन करते हुये उन्होंने देवी भागवत के श्लोकों को स्थान दिया है जिसमें एक श्लोक का अर्थ है ''धर्मार्थ से रहित बहुत से पुत्र होने से क्या लाभ, उससे अच्छा मार्ग में एक वृक्ष का रोपण करें जहां पथिकजन विश्राम करें। उपवन विनोद के अंत में वृक्षों के आपस में विवाह (उत्सर्ग विधि) का वर्णन बड़ा रुचिकर है। मदालसा चम्पू काव्य ग्रंथ के प्रथम उल्लास में आम-वृक्ष का वासन्तिका (लता) के साथ विवाह की तैयारी में ऋषि-कन्याएं हर्षोन्मद है। ऐसा वर्णन है।[५] इससे ज्ञात होता है कि वृक्षों के विवाह की परंपरा प्राचीन है।

बलभद्र मिश्र की भांति ही कामेश्वर सिंह दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय, दरभंगा के पुस्तकालय में संस्कृत भाषा में लिखित उपवन विनोद ग्रंथ की प्रतियां सुरक्षित हैं। इनमें रचयिता का नाम नहीं है। इसका संपादन और हिन्दी भाषा में टीका विद्यावारिधि श्री कृष्णानंद झा ने किया था। यह ग्रंथ सन् १६८४ ई. में उक्त विश्वविद्यालय से प्रकाशित भी हो चुका है। बुन्देलखण्ड में अब तक की गई खोज में केवल दो कवियों के उपवन विनोद नामक ग्रंथ उपलब्ध हो सके हैं। प्रथम है बलभद्र मिश्र, ओरछा निवासी कवि केशवदास के बड़े भाई तथा दूसरे हैं चरखारी के कवि भोजराज जिन्होंने संवत् १८८४ (सन् १८२६ ई.) में हिन्दी भाषा में उपवन विनोद[६] ग्रंथ की रचना की थी। भोज कवि के उपवन विनोद का आधार सारंगधर पद्धति और बृहत्संहिता है। जबकि बलभद्र मिश्र ने पुराणादि ग्रंथों को आधार बनाया है। अपने इसी ग्रंथ में बलभद्र मिश्र ने इंद्रजीत के विषय में लिखा है कि ''पंडितन सों टीका कर बावत हे।'' अर्थात् इन्द्रजीत ने संस्कृत के पंडितों से प्राचीन ग्रंथों की टीका (हिन्दी में) कराने का भी कार्य सम्पन्न कराया। इन्द्रजीत के आदेश से ही बलभद्र मिश्र ने हनुमान नाटक की टीका, गोवर्धन सतसई की टीका, भागवत पुराण की टीका, उद्धव गीता की टीका तथा अपने द्वारा लिखित उपवन विनोद की टीका प्रस्तुत की। बलभद्र मिश्र के इस कार्य की प्रशंसा, चरखारी के कवि गोपाल ने शिख-नख दर्पण नामक ग्रंथ में की है, शिख नख दर्पण ग्रंथ बलभद्र के नख-शिख पर गोपाल द्वारा लिखी गई टीका है। गोपाल कवि ने लिखा है -

जिहि बलभद्र कियो वियो बलभद्री व्याकर्न।
हनुमन्नाटक को कियो तिलक अर्थ आभने।।
गोवर्द्धन सतसई को टीको कीन्हों चारु।
इत्यादिक बहु ग्रंथ जिहि कीने अर्थ अपार।
तिहि कौ मति को कहि सकै किहिकी मति सु अमंद।
करी ढुठाई में सु यह अबुध अधिक मति मंद।।[६]

कवि गोपाल ने टीकाकार के रूप में, कई ग्रंथों के रचयिता होने के कारण कवि बलभद्र मिश्र की सराहना की है। वास्तव में बलभद्र मिश्र प्रशंसा के पात्र हैं भी - उनकी रचना उपवन विनोद और साथ में उसकी टीका (ब्रज भाषा गद्य) इसका प्रमाण है।

संदर्भ संकेत -

१. हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, प्रथम खण्ड, पृ. ६२८, ना.प्र.सभा काशी, संवत् २०२१
२. सरोज सर्वेक्षण - डॉ. किशोरीलाल गुप्त, पृ. ४६३, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद,सन् १६६७ ई.
३. कच्छ की ब्रजभाषा पाठशाला उससे सम्बद्ध कवियों का कृतित्व - डॉ. निर्मला आसनाणी, पृ. १५८-१५६, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग सन् १६६६ ई.
४. हिन्दी की नख-शिख परंपरा एवं बलभद्र कृत सिखनख - डॉ. सज्जन राय केगी, पृ. ६, हिन्दुस्तानी एकेडेमी इलाहाबाद, सन् १६८० ई.
५. त्रिविक्रम भट्ट विरचित मदालसा चम्पू - डॉ. निरंजन मिश्र, पृ. १३-१४, सत्यम् पब्लिशिंग हाउस-नई दिल्ली सन् २००५ ई.
६. खोज विवरणिका, सन् १६०६/१५ (बी), पृ. १३१-१३२ ना.प्र. सभा काशी, नवीन संस्करण, संवत् २०५५ वि.
७. वही, १६०६/४०, पृ. १५६-१६०

- ग्राम करेरुआ, पो. खमरिया,
मिर्जापुर, २२१३०६ 卐

लोक महानायक – ईसुरी

– डॉ. रामनारायण शर्मा

लोक कौ विस्तार जड़-चेतन सब में है। लोक महत्त सबई चराचर में व्याप्त हैं। ई के सुरभित गान प्रकृति की सुन्दरता में, नदी-नद सरोवरन, हार-पहार और कल-कल करतई झरनन के प्रवाह में दिखाई देत। लोक जीवन कौ सत् है। इसी के कार्य कलापन में सद्-चिद् और आनन्द के दर्शन होत। ऐसी लोक गांव-नगर, जन-गण के मन में विद्यमान अपने उस सर्व शक्तिमान कौ रूप है। ऐसे लोक के भाव-विभाव, हास-परिहास, जय-विजय और पराजय के रूप में निहित रत। लोक में धर्म-अर्थ, काम-मोक्ष जैसे मनुष्य में सरोकार संयुत हैं। इसी कों हम लोक-धर्म, लोकभाव, लोकानुराग एवं लोक-विमुक्ति कत। ऐसे लोकदर्शन कौ बखान हमाये पुरान-उपनिषद और राम-रसायन काव्य में करौ गयो। लोक जीवन के रास-रस रंग कौ प्रदाता है। ऐसे लोक की चर्चा अनेक कविजनों ने करी और लोक-निर्माण, लोक-कल्याण, लोक-रुचि के साहित्य की रचना कर लोक की दशा और दिशा दोनों दिखाई। जेई सब लोक के नायक बने और हमाये लोक-नायक।

लोकनायक – 'ईसुरी' सही अर्थ में लोकनायक हैं। उननें अपने काव्य में जन-मन को जागृत करबे की सीख दई फिर मनुष्य के मन के सच्चे भाव लिखे। उनके काव्य में अपने बालपन और जन्म-भूमि के भाव स्पष्ट दिखाई देत। इसमें कवि के निष्कपट मन की थाह देखवै मिलत। ईसुरी अपने बचपन कों स्मरन कर लिख रये -

सब से साजी तीं लरकैंया, खेलत घंट बटैयां।
हम चढ़ गये तुम्हारे ऊपर, तुम चढ़ गई हम पैंयां।
फिरत रात नंगे उगरारे, चमक काऊ की नइयां।
बिसर गई बे बातें बिन्नू, हल्के की तुम खैंया।
ईसुर अधिक बालकन ऊपर, करत विधाता छैयां।

अपनी सादी-सच्ची बातन में कवि उस समय के देश परिवार की आर्थिक दशा बता गये कै नंगे-उगरारे तन देश के बच्चे रतते। इसमें ईसुरी की बालसुलभ टीस उभर के सामें आ गई। जब देश के बालपन की ऐसी दशा ह्येय तो देश के भविष्य का आधार कैसो हुइये? यही संकेत कवि इतै देरयो।

'ईसुरी' ने अपने बालपन की सहज अनुभूति के संगे अपनी जन्म-भूमि को हमेशा याद करो। बचपन में छूटा गांव, वहां के ताल-तलैयां, आंगर-बागर, पहाड़ याद आये जब उनें प्रवास की पीड़ा झेलने परी। जननी-जन्मभूमि के प्रति उनके उद्‌गार देखबे योग्य है -

हंसा फिरें विपत के मारे, अपने देश बिना रे।
अब का बैठें ताल-तलैंया, छोड़ समुद्र किनारे।
चुन-चुन मोती उगले उननें, ककरा चुनत बिचारे।
ईसुर कात, कुटुम अपने सें, मिलबी कौन दिवा रे?

यहां कवि के भाव में कई रूप देखवे मिलत। एक तो सहज जन्मभूमि की टीस है। दूसरी और जीव-ब्रह्म के मिलन के भाव स्पष्ट हैं। तीसरा भाव कवि ने प्रच्छन्न रूप से देश वासियन को देश की पहचान अपने काव्य से बताई कै देश में रहते भारत में हम परदेसी हो गये और दासता की बेड़ियन में जकड़े अपने स्वतंत्र देश की सुनहरा सपना देख रये। ईसुरी बिना झिझक अपने मन की बात बता कें देश की दुर्दशा के दर्शन करा रये कै जनता के दुख दर्द को कोनउ इलाज की बन्दोबस्त नई। जनता दुःख के पारावार में जूझ रई। बस रामई की आसरी है जो सबकी रक्षा कर सकत -

जुर ने तन घायल कर डारे, तलफें जीव विचारे।
ठाँड़े से बैठो नहि जावे, रामई राम पुकारे।।

कवि ने तत्कालीन व्यवस्था पर गहरी चोट करी। यही बात ईसुरी कों लोक भावना के कवि पद पर बैठार देत। कहवे को ये शब्द उनके (कवि) अपनी शारीरिक पीड़ा के हैं। लेकिन कहने के अर्थ अचूक हैं। ईसुरी अपनी और अपने देश की दुर्दशा की ठीकरा दूसरों पै न फोड़ स्वयं जनता और देशवासियों के चिन्त-मन कों दोष देत। गरीबी, मुफलिसी की जिम्मेदारी जहां यह व्यवस्था व शासन पर डार रये, वहीं उनने देशवासियों में श्रम-परिश्रम से काम करवे से मन चुराबे की कारण बताओ-

जिनकों लगत अबे से जाड़े, बरसा के दिन आड़े।
जिनकी सदा असाढ़ चूक गयो, किननें भर लये भांड़े।
खेती में सब कोउ लगो है, राजा-जोगी पांड़े।
ईसुरी कात हमें का करनें, बैला ऐंन करे रओ ठांड़े।

ईसुरी ने एक लोकनायक की भांति किसानों को चेताया कि 'समय चूक पछतावे से कछू हाथ नई लगत। सो समय पर काम करो। ईसुरी ने कविता के माध्यम से गांव की कानात कै दई कै - असाढ़ को चूको किसान और डार को चूको बंदर-कभउ उबर नई पात। सो समय पर काम करो और अपनी दशा सुधारो। जन की समृद्धि ही देश की भलाई है।'

ईसुरी लोक-कल्याण की बात करते देश की गरीबी कौ दोष बढ़ती जनसंख्या कों आज से लगभग एक सदी पैलेई दे गये। ऐसे कवि को युग दृष्टा कहते हैं। कवि लोक भावना को उजागर कर कहते हैं -

पर गई लरकन की रगदाई, बहू बरसान कहाई।
धोबन जबाव देत धोबे खाँ, अब नई होत धुबाई।
सोरे धोउत बसोरन चिक गई, नाई करत है नाईं।
कैसो करे रंज के मारें, घर में आफत आई।
आँगन सौ घर हो गयी ईसुर, मांगन लगे खबाई।

भूख और गरीबी की आधार बढ़ती आबादी कवि ने सौ साल पैलें बता दयो तो। ईसुरी घर में लरका पैदा होवे की रेलमपेल से उपजी दुर्दशा की बखान कर कह रये कै थाली की

खाना जब भूखे के सामें से उठा के खा लेबे और मूंछें चाट के दिखावें तो मनुष्य की दशा कैसी हो जात। यहां कवि अपनी बात बड़ी चतुरता से घर को देश मानकर बिलैया रूपी अंग्रेज शासन की बात कै रये जो छल से हमाये देश में घुस आये और हमाये भोजन-साज-सामग्री सब चट कर जात और इंग्लैंड ले जाकें अपनो घर भर रये और मूंछन पै ताब दे रये। ईसे बड़ी विपत्ति देश पर आ पड़ी -

लुकी छुपी धुमियां के औसर, फिर बखरी में आ गई।
तनक झेल परसत भओ न, चतुराई बता गई।
मों पोंछत मगरे के ऊपर, ऐसी चोट लगा गई।
कात ईसुरी कांसे कइये, लुचई बिलैया खा गई।

कवि के इन शब्दों में व्यापार के उद्देश्य से आये अंग्रेज पैलें कलकत्ता बसे, फिर देश में अड्डा जमा के चतुराई सें देश हड़प गये। देश के संसाधन अपने अधीन कर मूंछें ऐंठ रौब झाड़ रये और जनता की बेवकूफ बना रये। लेकिन ईसुरी इसका दोष जनता की लापरवाही, आपसी लड़ाई-झगड़ा कों देत हैं। ईसुरी की ऐसी बेबाक बखानगी राष्ट्र-प्रेम और विदेशी दासता की तस्वीर प्रस्तुत कर साँचउ लोक नायक वैसो काम करो। कुछ विद्वान की कैबो गलत है क्कै ईसुरी ने अंग्रेजी शासन की विरोध नई करी। इसका एक पुष्ट प्रमाण ईसुरी ने अपनों रोष प्रकट कर झांसी-मानिकपुर रेल लाइन के निर्माण में जंगल की कटाई की खुलकर विरोध जब करो जब कोई मुँह तक न खोल सकत तो -

इन पै लगे कुलरियाँ घालन भैया मानस पालन।
इनें काटबों न चइयत ती, काट देत जो कालन।
ऐसे रूख भूख के लानें, लगवा दये नंदलालन।
जे कर देत नई सी ईसुर, मरी मराई खालन।

इसमें कवि ने दोनों बातें कह दी कि पेड़ हमाई भू-सम्पदा हैं और इनसें जर्जर होत जन के जीवन की भूख मिटत। दूसरी ओर एक जमींदार की चाकरी करते हुये ईसुरी ने अंग्रेजों के देश के प्रति किये कार्यों का खुलकें विरोध करो। ईसुरी ने अंग्रेजों के द्वारा स्त्री-अपहरण और बलात्कार, फसलों को नष्ट कर लोगों की बदहाली पैदा करबे पर चिन्ता प्रगट करीं। कवि स्पष्ट लिखता है कि गांव के संभ्रांत लोग और देवता एक नई बचा पा रये और इसी कारण अंग्रेज दुर्दान्त आये दिन सब पर सवार रहते हैं। इतनी दृढ़ता से अंग्रेजों का विरोध एक लोक-नायक ही कर सकत और ईसुरी ने निर्भय हो यह कार्य करौ।

ईसुरी की राष्ट्र-भक्ति प्रबल थी। उननें देश के जन-मानस कों देश के प्रति जागरूक रहने और उसकी रक्षा के लिए मर मिटबे की बात कई -

जो कोऊ समर भूम लड़ सोबै, तनं तरवारन खोबै।
देय न पीठ, लेय छाती में, घाव सामने होबै।
ऐई ज्वान खों करो चाइये, अदा नोन से होबै।
ऐसे नर के मरें ईसुरी, जस गंगा कौ होबै।

इससे बड़ौ राष्ट्र-भक्त कौन हो सकत। ईसुरी ने युवा-शक्ति को चेताओं के अंग्रेजों के विरुद्ध चल रये स्वतंत्रता युद्ध में कूदबे में जीवन की सार हैं, कवि आवाहन कर देशवासियों को सीधे संघर्ष में कूद पड़ने को कहता है और देश की रक्षा में यदि मृत्यु भी हो जाये तो श्रेष्ठ है। देश कौ रिन चुकाने से कीर्ति मिलै। देश पै मर-मिटवै से वही सद्‌गति की बात कवि करता है जो मृत्यु पर्यन्त गंगा स्नान से मिलत।

सामाजिक चेतना के चितेरे - ईसुरी ने अपने समय और परिस्थितियों को खुली आंखन देखो। जिस देश का बचपन बेहाल हो तो युवा-शक्ति की ह्रास अवस है। एई सबसें गृहस्थ जीवन में परेशानी आउती और बाद में बुढ़ापा सालने लगत। ईकी चिन्ता कर जीवन को शुरू से संवारने की बात कवि कहता है -

जब से छोड़ आये लरकइयाँ, जबई से अच्छे नइयाँ।
खेलत रये पुरा लरकन में, दे दे छूल-छुलइयाँ।
ज्वानी आई विधायो खटका, सोच भयो जी मइयाँ।
कातन विधगत बिरधापन की, ईसुर भरत तरइयाँ।

सामाजिक सुचिता के सोच में ईसुरी सबसे अलग एक समाज सुधारक के रूप में दिखाई देत। अपने मालिक के दूसरी स्त्री गमन से चिंतित ईसुरी निर्भीक हो सबक पढ़ाते हैं -

१. भौंरा जात पराये बागन, तो लाज न लागै।
२. यारी पर नारी से बरकौ। येई हुकुम है हरकौ।

यही नहीं जीवन में दया-धर्म की महत्व बता के एई रास्ता पर चलबे की सीख ईसुरी देत -

दीपक दया धरम कौ जारौ, सदा रात उजयारौ।
धरम करे बिन करम खुलै न, ज्यों कुन्जी बिन तारौ।
समझा चुके करै न रइयो, दिया तरैं अंदयारौ।
कात इसुरी सुनलो भइया, लगजे यार न वारो।

ईसुरी को मत है कै मित्रता सोच समझ के करवै। नहीं तो पछताने परत -

यारी बेवकूपन से करबो हो सुगर कौ मरवौ।
बिना ज्ञान मूरख ना जाने, बनवै और बिगरवौ।
जरिया जैसो जार ईसुरी, मुश्किल परे निनरबौ।

वहीं पर पुरानी प्रीति की दुहाई देते ईसुरी समझाउत -

मधुकर होत न प्रीति पुरानी, उत्तम मन की जानी।
पथरी आग तजत है नइयां, रहै जुगन भर पानी।।

धरम-धुरीन ईसुरी - ईसुरी धर्म-प्राण देश के जनमानस कों एक धर्माधिकारी की भांति धरम की धारणा कौ महत्व बताते कहते हैं-

रसना राम राम कह जारी, कोन जात है हारी।
जौ हरनाम सजीवन बूटी, खात बनै तो खारी।

आगे अपनी बात कहते हैं -

मैनें मन मुदरी में गाड़ी, रामनाम ना छाँड़ी।

ईसुरी तीन वेणियों के उलझाव से त्रिवेणी जी की शरण में जाबौ श्रेयस्कर मानत -

तीन धार तिरबेनी तामें, तन के पातक धोये।
ईसुर कात प्राग की परबी, मन लै चलबों तोये।

दार्शनिक ईसुरी – ईसुरी अपनी तई जीवन के दर्शन की सार सभी को समझाते हुए बताते हैं -

बखरी रैयत है भारे की, दई पिया प्यारे की।
कच्ची भींत उठी माटी की, छाई फूस चारे की।
बेबंदेज बड़ी बेवाड़ा, जीमें दस द्वारे की।
किबार किवरियाँ एकउ नइयाँ, बिना कुची तारे की।
ईसुर चाय निकारौ जिदना, हमें कौन उबारे की।

इसमें भौतिक शरीर रूपी बखरी की बात कैकें ईसुरी ने देह की नश्वरता और दस इंद्रियों के खुले व्यापार का दर्शन बताया। इंद्रियों पर नियंत्रण ही जीवन की सार बतायो। आगे ईसुर इस देह कीं ओस की बूँदा मानकें कह रये कै जौ तन एक दिन जरा से झंझा में मिट जावै -

तन कौ कौन भरोसों करने, आखिर इक दिन मरनें।
जौ संसार ओस को बूँदा, पवन लगै से ढुरनें।
नैयां ठीक जिन्दगानी की, बनो पिण्ड पानी कौ।
चोला और दूसरौ नैयां, मानुष की सानी कौ।
जागी-जती-तपी सन्यासी, का राजा-रानी कौ।
जब चाहें ले-लेय ईसुरी, का बस है प्रानी कौ।

ऐसे संसार की असारता के भाव ईसुरी के काव्य में झरत रये -

हंसा उड़ चल देश बिराने, सरबर जायें सुखाने।
यहां रहे की कौन भलाई, जहां बकन के थाने।
उत चल समुद्र अगम्भ भरे हैं, सुख पावै मन भावे।
बचत बने तौ बचौ ईसुरी, तानें काल कमानें।

ईसुर एक दार्शनिक की ताईं जीव की दशा की बखान कर जीव-ब्रह्म के मिलन की बात समझा गये किन्तु अन्त तक वह लोक-वाणी को सुर देत रये।

प्रगतिशील कवि दर्शन – ईसुर की वसीयत सच्चे श्रम की महत्ता और यथार्थ एवं प्रगतिवादी दर्शन हमें सिखा गये।

यारो इतनों जस कर लीजौ, चिता अंत ना दीजौ।
चलतन सिर की गिरै पसीना, भसम कौ अंतस भीजौ।
निगतन खुदै चेटका लातन, उन लातन मन दीजौ।

अर्थात् - ईसुरी कहते हैं के उनकी चिता ऐसी जगह बनाई व जलाई जाये जीपै वहाँ से निकलने वारे मेहनतकश लोगों के सिर से बहती पसीने की बूँदें गिरने से भस्म की अंतस भीग जाये।

इतनोई नई ईसुरी की अंतिम इच्छा रई कै उनकी चेटका उन श्रमिकों के पैरों से खुद जाये और उनके पैरों के स्पर्श से उन्हें मुक्ति मिले। इस प्रकार ईसुरी वास्तव में सच्चे लोकनायक, युग-दृष्टा, युग-प्रवर्तक, ज्ञान-धर्म, न्याय-संस्कृति के रखवारे एवं समाज के पथ प्रदर्शक हैं। ईसुरी आज करोड़ों जन-मन में एक महाकवि, महानायक व लोकनायक हैं।

- रामायण-६९५/३, रानी लक्ष्मीबाई पार्क के सामने,
सिविल लाइन्स, झांसी (उ.प्र.) 卐

बुन्देलखण्ड की गाथा

– वैद्य हरिदास सक्सेना

हमखाँ बुन्देली छवि चाने।
बुन्देली हरवासी को है वीर वस्त्र पहिराने।
कि भाई रे! वीर भूमि में कहल मची कोउ हवा करैया नहियां।
कि भाई रे! अनाचार की धूम मची कोउ रोक करैया नहियां।
कि भाई रे! दलगत नीति रीति स्वारथ की कोउ कहैया नहियां।
कि भाई रे! चहुँ दिशि परघर फूट फैलरही कोउ रुकैया नहियां।
कि भाई रे! नेता राजनीति माहिर गये कोउ दवैया नहियां।
कि भाई रे! नौकरशाही धर्म बिगर गयो कोउ सुधरैया नहियां।
कि भाई रे! संविधान नित संशोधित हो कौउ रोक करैया नहियां।
कि भाई रे! आंतकी वन साँड़ दलाकें कोउ नथैया नहियां।
कि भाई रे! व्यवसायी दो नम्बरी हो गये कोउ दिखैया नइयां।
कि भाई रे! जित देखो तित मचो है भररो कोउ मिटैया नहियां।
कि भाई रे! शिक्षा भी परदेशी है कोउ सही पढ़ैया नहियां।
कि भाई रे! दीन हीन दिन रात पिस रहे कोउ पुछैया नहियां।
कि भाई रे! पाप ताप अभिशाप मिले पर कोउ थमैया नहियां।
कि भाई रे! जो सत कहे करै सोइ दुश्मन कोउ निरनैया नहियां।

- चरखारी, महोबा (उ.प्र.) 卐

बुन्देली लघुकथा -

बहानौ

– अजीत श्रीवास्तव, एडवोकेट

एक किसान हती, वौ अपने पुरा के लोगन सें भौतई हैरान रत तो, काये सैं कि पुरा-परौसी ऊके घर की जोन चीज-बसत मंगा के लै जात ते, फिर लौटाबे कौ नाम नईं लेत ते, मांगे पे मेंट जावें, खोबे को बहानौ बना दें। अब ऊनें सोई हीला-हवाला बना टारबे की सोच लई।

एक दिना गांव के साव आये, उर पुताई खों नसैनी मांगन लगे, किसान ने कई - "साव जू जौन नसैनी हती सो वा सनदुकिया में धर दई ती औ सनदुकिया में तारौ लगा दओ तो, अब ऊ तारे की कुची नईं मिल रई, जानें कितै धर दई।"

सॉव समझ गये बोले - "काय हो, तुम कम सैं कम बहाने तौ ढंग से बनाबौ सीख लेते, कऊँ नसैनी सनदुकिया में धरी जात।"

किसान ने हाँथ जोड़ कै कई "साव जू सूदी नई नाइं करी जात, मैंने तो अपुन की मान-मिरयादा आ राखी।"

सॉव जू मिरमिरात अपने घर लौट गए।

- राजीव सदन, नायक मोहल्ला,
टीकमगढ़ म.प्र. 卐

वराह अवतार पूजा और बुन्देलखण्ड

– डॉ. कैलाश बिहारी द्विवेदी

ततः समक्षिप्य धरां स्वदंष्ट्रया महावराहः स्फुट पद्मलोचनः।
रसातलादुत्पल पत्र सन्निभः समस्थितो नील इवाचलो महान्।।
जलौधमग्ना सचराचरा धरा विषाण कोट्याऽखिल विश्व मूर्तिना।
समुद्धृतायेन बराहरूपिणा समे स्वयंभूर्भवान् प्रसीदतु।।

वेदकालीन समाज में प्रमुख देवता थे - मित्र, वरुण, इन्द्र, रुद्र, मरुत आदि अर्थात् वे प्राकृतिक शक्तियाँ जिनका सामाजिक जीवन में प्रत्यक्ष अनुभव होता था। उन्हीं की पूजा उपासना की जाती थी।

धीरे-धीरे बहुदेववाद का विकास हुआ। उसमें प्रमुख पंच देवों विष्णु, शिव, शक्ति, गणेश तथा सूर्य की उद्भावना हुई। हिन्दू अर्थात् सनातन धर्मी पूजा सभी की करते हैं, परन्तु जिसे किसी देवता की एकान्तिक साधना करनी होती थी, वह इनमें से एक देवता को इष्ट मानकर उपासना करता है, मानता सभी को है।

इस साधना अथवा उपासना पद्धति के अनुसार निर्मित मंदिरों को पंचायतन मंदिर ' कहा जाता है। इस प्रकार के मंदिरों के बीच में एक बड़ा मंदिर तथा दिशाओं के चारों कोणों पर चार छोटे मंदिर बनाये जाते थे, यह गणेश विमर्शनी तंत्र, रामार्चन चंद्रिका तथा गौतमियाँ तंत्र के अनुसार निर्धारित हैं। निर्धारित क्रम में व्यतिक्रम अनिष्टकारी माना जाता है।

पंचायतन मंदिर का सम्भवतः सबसे प्राचीन नमूना देवगढ़ (जिला ललितपुर उ.प्र.) का गुप्तकालीन विष्णु मंदिर है। इसके अन्य देवताओं के छोटे मंदिर नष्ट हो गये हैं। यदि मंदिर के लिए स्थान छोटा होता है तो गर्भगृह के कोण में प्रमुख अर्थात् इष्ट देवता के अतिरिक्त अन्य चार देवों की दिशा कोणों में छोटी मूर्तियां यथाक्रम स्थापित की जाती है।

ऐसा प्रतीत होता है कि सनातन धर्म के वैष्णव, शैव, शाक्त, गाणपत्य तथा सौर्य सम्प्रदायों में जब दूरियाँ बढ़ने लगी होंगी तो दूरदर्शी संतों ने सनातन धर्म के समन्वयकारी स्वरूप की रक्षा करने के लिए पंचदेव पूजा और तदर्थ पंचायतन मंदिरों के निर्माण का विधान किया होगा।

आदि शंकराचार्य (आठवीं शताब्दी) ने पंचदेवों के साथ कुमार कार्तिकेय को और शामिल कर दिया।.इसका कारण यह हो सकता है कि दक्षिण भारत में कार्तिकेय पूजा का बहुत प्रचलन है। दक्षिण में कार्तिकेय के अनेक प्रसिद्ध मंदिर हैं।

इन पंचदेवों में संसार की उत्पत्ति और पालन-पोषण का उत्तरदायित्व भगवान विष्णु का हैं उन्होंने अपनी योगशक्ति से ब्रह्मा जी को अपनी नाभि से उत्पन्न कर सन्तति-विस्तार का कार्य उन्हें सौंप दिया। शेष कार्य पालन-पोषण तथा संवरण का उत्तरदायित्व स्वयं लिये रहें।

अपने उत्तरदायित्व का निर्वहन करने के लिए उन्हें दस अवतार लेने पड़े। दस अवतारों की कथा तो पुराण सम्मत है। इसके बाद कपिल, ऋषभ आदि को विष्णु का अंशावतार मानते हुये चौबीस अवतार माने जाने लगे। इनमें बुद्ध को भी शामिल कर लिया और चौबीस में कलकी अवतार की कल्पना कर ली गई।

आज कलयुग जब अपने चरम यौवन पर है तो अनेक लोग अपने आप को अवतार घोषित कर चुके हैं एक सज्जन ने तो यहां तक कह दिया था कि "आई एम नॉट द इनकारनेशन ऑफ द गॉड, आई माईसैल्फ इज द गॉड" यद्यपि वे एक बड़े योगी थे।

सभी दस अवतार प्रयोजन मूलक हैं। अपना प्रयोजन सिद्ध कर वे अन्तर्ध्यान हो जाते हैं किन्तु नौवें और दसवें अवतार क्रमशः राम और कृष्ण के प्रयोजनों की सिद्धि दीर्घकालिक थी। अतः उन्हें इस कारण दीर्घकाल तक अपना लोक छोड़कर मर्त्यलोक में मानव शरीर धारण कर रहना पड़ा।

भगवान विष्णु को इस अवतार लीला में तीसरा अवतार बराह का लेना पड़ा। एक मत के अनुसार दैत्य हिरणकश्यपु का भाई हिरण्याक्ष पृथ्वी का हरण कर उसे पाताल लोक में ले गया और तरह-तरह के अत्याचार करने लगा, जिससे त्राहि-त्राहि मच गई तथा सृष्टि की सारी व्यवस्था बिगड़ गई। तो भगवान विष्णु ने विशालकाय बराह का रूप धारण किया और अपने कराल दंष्ट्रा से हिरण्याक्ष का संहार कर पृथ्वी को अपने दंष्ट्रा पर टांगकर ले आये और उसे यथास्थान स्थापित किया।

वराह का वर्णन अनेक पुराणों में है, परन्तु दस साढ़े दस हजार श्लोकों के ग्रंथ में मात्र दो अध्याय ही ऐसे हैं जिनमें वराह अवतार की चर्चा है। इसमें वराह द्वादशी (माघशुक्ल द्वादशी) के महात्म का निरूपित किया गया है। अध्याय ११४ में उनके स्वरूप और उद्धारित पृथ्वी द्वारा उनकी स्तुति है। इसी अध्याय में कुछ दार्शनिक प्रश्नों का समाधान भी उनके द्वारा किया गया है।

भागवत महापुराण में दशावतारों की कथा में वराह अवतार की कथा अधिक विशद रूप में कही गई हैं उसके अनुसार प्रलय काल में पृथ्वी जब जलमग्न हो गयी थी तब भगवान विष्णु ब्रह्मा जी की नाक से एक अत्यन्त लघुकाय वराह का रूप धारण कर निकले और तुरंत ही नील पर्वत के समान विशालकाय रूप धारण कर अपनी दंष्ट्रा (खीस) से पृथ्वी को जल से बाहर निकाला। पद्मपुराण के अनुसार मत्स्य का रूप धारण कर पृथ्वी को जल से बाहर निकाला था।

'पुराणों की मतभिन्नता का कारण यह प्रतीत होता है कि उनका मुख्य उद्देश्य आदि दैविक तथा आदि भौतिक सिद्धान्तों को सामान्य जन के लिए बोधगम्य बनाने के लिए उनका कथात्मक रूपान्तरण और समाजोपयोगी अन्य विविध विषयों को भी बोध गम्य करने के उद्देश्य से उनमें सम्मिलित किया गया है।

यहाँ हमारा उद्देश्य पुराणों की भिन्नता का वर्णन तथा उनकी विवेचना करना नहीं है हमारा उद्देश्य तो वराह अवतार

के प्रति बुन्देलखण्ड में पूजा भाव पर विचार करना है। बुन्देलखण्ड में विष्णु के अतिरिक्त उनके वराह अवतार के प्रति भी श्रद्धा भक्ति में कोई कमी नहीं थी। इसका प्रमाण इस क्षेत्र में प्रभूत संख्या में वराह अवतार की मूर्तियां उपलब्ध होना है।

वराह अवतार की मूर्तियाँ दो रूपों में पायी जाती है। एक नृवराह जिनमें सम्पूर्ण देह यष्टि पुरुषाकृति एवं भगवान विष्णु के लक्षण प्रतीकों शंख, चक्र, गदा, पद्म से अलंकृत होती है, तथा शिरोभाग वराह का होता हैं दूसरे पशुवराह मूर्तियां हैं।

कहीं इनके स्वतंत्र मंदिर हैं, कहीं मन्दिरों के गोपुरों (शिखरों) पर या पार्श्व भित्तियों पर अन्य अवतारों अथवा अन्य देवताओं के साथ उनकी मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। मन्दिर शिखरों या पार्श्व भित्तियों पर उत्कीर्णित लग्भग सभी मूर्तियाँ नृवराह की पायी जाती है। मन्दिरों में स्थापित नृवराह मूर्तियों में दंष्ट्रा पर नारी रूप में पृथ्वी लटकी है तथा पदतल में बहुफणधारी नाग (शायद शेषनाग) दबा हुआ है। उसके फणों के बीच मुकुटधारी नरमूर्ति उभरी हुई है।

विविध ज्ञात संदर्भों के अनुसार कुछ वराह मूर्तियों का संक्षिप्त विवरण निम्नानुसार है -

ललितपुर उ.प्र. जिले के कस्बा बानपुर में मध्यकालीन शेषशायी भगवान विष्णु की एक आदमकद मूर्ति थी। उसके साथ ही बराह मूर्ति उत्कीर्णिति है। यह मूर्ति झांसी के राजकीय संग्रहालय में रखी है (मूर्ति संख्या ८३)

चांदपुर (जिला-ललितपुर) में पशुवराह की मूर्ति है।

देवगढ़ (जिला ललितपुर) में पहाड़ी पर स्थित नृवराह का गुप्तकालीन मंदिर है जिसका केवल अधिष्ठान शेष है किन्तु मूर्ति यथास्थान स्थित है।

सीरोंन खुर्द (जिला ललितपुर) -में अन्य मूर्तियों के साथ वराह मूर्ति संग्रहित है।

दूधई (जिला ललितपुर) - चन्देलकाल में चन्देल राज्य की प्रादेशिक राजधानी रही है और एक चन्देलं राजकुमार वहां का क्षत्रप रहा है। यह पुरातत्व की दृष्टि से एक समृद्ध स्थान है। यहाँ वराह मन्दिर है। यहाँ से प्राप्त पशुवराह की एक मूर्ति राजकीय पुरातत्व संग्रहालय लखनऊ में रखी है।

मदनपुर (जिला ललितपुर) में विशालमूर्ति है और उसी के पास एक अन्य आदमकद मूर्ति पड़ी हुई है।

झांसी से प्राप्त एक वराहमूर्ति राजकीय पुरातत्व संग्रहालय लखनऊ में है।

कालिंजर (जिला वांदा) के किले के प्रांगण में १० फीट लम्बी नृवराह मूर्ति पड़ी हुई है।

मध्यप्रदेश के सागर जिले के एरन (एरिकिन) नामक (समुद्रगुप्त के समय के प्रसिद्ध नगर एरिकिन) स्थान पर विशाल पशुवराह की मूर्ति है जिसकी मुख से लेकर पूँछ तक की लम्बाई ६ मीटर ३० से.मी. तथा ऊँचाई ३ मीटर ७५ से.मी. हैं यह मूर्ति प्रारंभिक गुप्त काल की है। हूड़ शासक तोरमाण के राज्यकाल के प्रथमवर्ष के सम्बनध में उसके ऊपर एक लेख उत्कीर्ण है। पीठ पर ऋषियों, विद्याधरों, राशियों, देवी देवताओं और ब्रह्माजी की मूर्तियां उत्कीर्ण हैं

एरन गांव के समीप ही बीना नदी के तट पर नृवराह की एक मूर्ति थी। अब यह मूर्ति सागर विश्वविद्यालय के संग्रहालय में सुरक्षित है।

ईश्वरपुरा (जिला-सागर) बामोंरा मंडी में वराह प्रतिमाएं उपलब्ध हैं। देवरी में भी शिलाखण्ड पर उत्कीर्ण वराहमूर्ति है।

मदनपुर से प्राप्त विशालकाय वराह प्रतिमा गौर पुरातत्व सागर संग्रहालय में सुरक्षित है।

जबलपुर जिले के करनपुर में विशालकाय वराह मूर्ति कारी तलाई में विष्णु मंदिर के भग्नावशेषों में अन्य प्रतिमाओं के साथ वराह प्रतिमा है। पनागर में वराह की विशाल प्रतिमा है। विलहरी में विष्णु-वराह मन्दिर में वराह की उत्कृष्ट प्रतिमा है। मझौली और रीठी में भी वराह प्रतिमायें हैं।

विदिशा जिले में उदयगिरि की गुफा क्र. ५ में वराह की प्रतिमा है। रायकृष्ण दास ने लिखा है कि उदयगिरि में चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के बनवाये हुए मन्दिरों के बाहर पृथ्वी का उद्धार करते हुए वपुष्मान वराह अंकित है। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने अपनी भौजाई ध्रुवस्वामिनी का शकों से उद्धार किया था। इस मूर्ति में उस उद्धारक के तेज और वीर्य की स्पष्ट झलक दिखाई देती है। पठारी गाँव के पूर्व में वराह की अपूर्ण विशाल प्रतिमा है। जिला पुरातत्व संग्रहालय विदिशा में भी वराह मूर्ति है।

छतरपुर जिले के विश्व प्रसिद्ध पर्यटन केन्द्र खजुराहो में विशालकाय पशुवराह का मन्दिर है। इसके ऊपर अनेक देवी देवताओं की मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। खजुराहो और धुबेला के संग्रहालयों में भी वराह मूर्तियाँ हैं। ये सब मूर्तियाँ चन्देलकालीन हैं।

पन्ना जिले के खोह ग्राम में दुर्लभ वराह प्रतिमा है।

सतना जिले के राम वन संग्रहालय में भरहुत से प्राप्त वराह की मूर्ति उपलब्ध है। दमोह जिले में नोहटा से प्राप्त वराहमूर्ति फुटेरा तालाब दमोह पर स्थित है।

ग्वालियर संग्रहालय में बड़ोह और सुहानियाँ से प्राप्त वराह और वाराही की कुछ मूर्तियाँ हैं।

रायसेन के आशापुरी संग्रहालय में वराहमूर्ति है।

भोपाल के बिड़ला मंदिर संग्रहालय में नृवराह की १०वीं सदी की नृवराह की मूर्ति थानेगांव जिला रायसेन से प्राप्त, यज्ञ वराह की समसगढ़ जिला सीहोर से प्राप्त, वाराही आशापुरी संग्रहालय रायसेन से प्राप्त मूर्तियाँ सुरक्षित हैं।

दतिया मध्यप्रदेश जिले में सेंवढ़ा रोड पर केवलारी ग्राम में वराहमूर्ति है तथा सनवई ग्राम में वराह की उत्कीर्णित मूर्ति विद्यमान है।

यह बुन्देलखण्ड की ज्ञात वराह मूर्तियों का संक्षिप्त विवरण है। इसके अतिरिक्त भी अनेक मूर्तियों के गाँवों में यत्र-तत्र बिखरे होने की संभावना है। अभी एक डेढ़ वर्ष पूर्व श्री बाबूलाल द्विवेदी (छिल्ला) ने बानपुर जिला ललितपुर उ.प्र. के श्री कैलाश नारायण पटवारी के खेत के एक मन्दिर के भग्नावशेष के पास मिट्टी में

दबी पशु वराह मूर्ति का पता लगाया था जो ४ फीट लम्बी तथा लगभग इतनी ही ऊँची है। ८-९ महीने पहले जब मैं उस मूर्ति को देखने गया तो लौटते समय बारी (बागढ़) के छेंके के पास बारी में और कुछ हिस्सा मिट्टी में गड़ा हुआ किसी कलात्मक पत्थर का दिखा तो मैंने कूड़ा-करकट हटा कर देखा तो वह भी पशुवराह की एक मूर्ति है जो पहली मूर्ति से छोटी है।

इसी प्रकार की एक काफी बड़ी पशुवराह की मूर्ति घरनुमा मंदिर में ग्राम भेलसी जिला-टीकमगढ़ म.प्र. में स्थित है।

अभी हाल ही में दैनिक नवभारत ग्वालियर दिनांक १३ जुलाई २००७ के समाचार से ज्ञात हुआ है कि दतिया जिले में ग्राम हथलव और ग्राम पलोथर थाना जिगना में लगभग ०५ फुट ऊंची नृवराह की मूर्ति मिट्टी में दबी मिली है। वास्तव में ग्राम हथलव के प्राचीन मन्दिर से तीन वर्ष पहले यह मूर्ति चुरा ली गयी थी। इसके भारी वजन के कारण मूर्ति चोर उसे ले नहीं जा सके तो जंगल में गाड़ गये। ग्रामीणों के आन्दोलन और पुलिस की सक्रियता से चोर उसे ले नहीं जा सके। मुखबिर की सूचना पर पुलिस ने उस सुन्दर और ऐतिहासिक मूर्ति को बरामद कर लिया।

और न जाने कितनी मूर्तियां ग्रामों में उपलब्ध कितनी खण्डित मूर्तियाँ मकानों की नीवों में दब गई होंगी, कितनी चोरों के द्वारा विदेश चली गयी होगी? बुन्देलखण्ड के बाहर भी गुजरात में वराह मन्दिर स्थित हैं।

एक पुरातत्व विद्वान का यह मत है कि ऐसा प्रतीत होता है कि बुन्देलखण्ड में वैष्णवधर्म को वराह अवतार एक विशेष देन है। यह बात सही है क्योंकि बुन्देलखण्ड में जितने वराह मन्दिरों और मूर्तियों का पता चला है, उतना संभवतः देश में और कहीं पाया जाना विदित नहीं है, परन्तु इसके जिस कारण का अनुमान उन्होंने लगाया है, वह मानने योग्य नहीं है। उनका कथन है कि From early times the cult of the boar found the deep devotion in the local tribes. Its totemistic parts can be made out from the cave art in which it has earliest manifestation. अर्थात् उनका मानना यह कि प्राचीन काल से आदिमजातियों में अपने जातीय उद्भव सम्बन्धी प्रतीकवाद (टोटमवाद) के आधार पर गुफा चित्रों में जो व्यक्त हुआ है उसी के अनुसार वराह सम्बन्धी विचार के प्रति उनका गहन भक्ति भाव रहा है।

टोटम के सिद्धान्त के अनुसार जिस पशु को टोटम मान लिया जाता है उसे न केवल पूज्य माना जाता है बल्कि उसको मारना और उसका मांस खाना भी निषिद्ध माना जाता है। बुन्देलखण्ड में न केवल आदिवासियों में बल्कि अन्य मांसभोजी हिन्दू जातियों में सुअर का मारना और उसका मांस खाना निषिद्ध नहीं है।

यह मत सर्वथा कल्पना की एक हास्यास्पद उड़ान है जो सनातन हिन्दू तथा आर्य मान्यताओं को खण्डित करने का प्रयास है।

यह क्यों नहीं माना जा सकता है कि बुन्देलखण्ड प्रस्तर बहुल क्षेत्र है तो यहाँ प्रस्तरखण्डों में जीवन प्रतिभाषित कर देने वाले कलाकारों का बाहुल्य भी रहा होगा। जिन कलाकारों ने जगत प्रसिद्ध खजुराहो, भरहुत, देवगढ़, सांची, उदयगिरि आदि प्रस्तर कला संकुलों को गढ़ा, उन्हीं ने पौराणिक मान्यताओं को आकार दिया है। वराह को टोटम मान भी लिया जाए तो विष्णु तथा हरगौरी किसी टोटम के आधार पर गढ़े गये?

वस्तुतः सनातन धर्म में जनजीवन के बल-पौरुष और उत्साह को चेतन्य रखने के उपाय समयानुसार होते रहे हैं। मनोवैज्ञानिक आधार पर गुप्त कला की वराह मूर्तियों में संकट का दृढ़ता से लोहा लेने का संकल्प और प्रेरणा प्रदर्शित की गई है।

वराह प्रतिमा के प्रतीक विधान की पृष्ठभूमि में समसामयिक धार्मिक और राजनैतिक परिस्थितियां ही प्रमुख हैं। अतः जनमानस को समर-सूर और धीर-बीर बनाने का संदेश देने के लिए यही उत्कृष्ट प्रतीक मिलता है।

स्मरणीय है कि मध्य एशिया से हूँण, पल्लव, पारद, शक, यूची, कुषाण आदि जातियों के भारत पर बार-बार आक्रमण हो रहे थे। उदयगिरि की वराह मूर्ति के वर्णन में यही संकेत रायकृष्ण दास जी ने दिया है। इसके बाद लोकोत्तर दृढ़ संकल्प और पौरुष को सूचित करने वाली हनुमान की मूर्ति कही जा सकती है। (डॉ. प्रभाकर पाण्डेय - हनुमत विग्रह - एक मांगलिक प्रतीक - 'पुरातन', Vol-I, १९८४, आर्कियोलॉजी विभाग म.प्र. पृ. ८२)

जैसा पूर्व में कहा जा चुका है भगवान विष्णु के सभी अवतार प्रयोजन मूलक हैं। पृथ्वी का प्रलय-जल या पाताल लोक से उद्धार करने के लिए भगवान विष्णु ने महावराह का अवतार लिया था तथा प्रयोजन सिद्धि के पश्चात् कोकामुख शूकर क्षेत्र में ऋषियों का समाधान कर वह पशुदेह त्याग कर अपने धाम को चले गये थे।

इस पवित्र घटना की स्मृति में ही वराह कल्प (ब्रह्माजी का एक दिन जो वर्तमान में चल रहा है) कृष्ण यजुर्वेद की एक शाखा, भगवान शंकर के पुत्र कार्तिकेय की पालनकर्त्री पोषण मात्रिकाओं में से एक का वराही नाम, वराह शिला-हिमालय पर एक शिला का नाम, प्राचीन काल से प्रसिद्ध ज्योतिष ग्रंथ वराह संहिता और उसके रचयिता वराह मिहिर का नाम, गोस्वामी तुलसीदास जी के गुरु के स्थान का वराह क्षेत्र या शूकर क्षेत्र नाम (मैं पुनि निज गुरु सन सुनी, कथा सो सूकर खेत रा.च.मा. १/३० क) आदि काल से मध्यकाल में होते हुए वर्तमान काल तक में अनेक पुरुष मानों में वराह, शब्द प्रयुक्त हुआ है। वर्तमान काल में हमारे देश के आठवें राष्ट्रपति श्री वी.वी.गिरि का पूरा नाम भी व्यंकट वराह गिरि था।

यदि भगवान विष्णु ने वराह का अवतार न लिया होता तो क्या कोई इन पवित्र संदर्भो में शूकर (वराह) के नाम का उपयोग करता? क्या ऋषि वराह मिहिर के पिता अपने पुत्र का यह नाम पसन्द करते?

विष्णु भगवान के वराह अवतार की पूजा और उसकी मूर्तियों और मन्दिरों के निर्माण के ऐतिहासिक साक्ष्य गुप्तकाल से सम्राट हर्षवर्द्धन से गुर्जर प्रतिहार और चंदेलों के काल तक मिलते हैं। इसके बाद का ऐतिहासिक परिवेश अस्थिरता और राजनैतिक उथल-पुथल भरा रहा। ऐसी स्थिति में धर्म में ठहराव और कला तथा संस्कृति का ह्रासोन्मुख हो जाना स्वाभाविक है। संभवतः इसी

स्थिति में विष्णु भगवान तो जगत-नियन्ता के रूप में स्मरण रहे परन्तु उनके अवतारों के प्रति पूजा भाव क्षीण होता गया। इसी बीच बर्बर आक्रमणकारियों ने ढूंढ़-ढूंढ़ कर मूर्तियों और मन्दिरों का खण्डन कर दिया, खण्डित मूर्तियों की पूजा नहीं की जाती है। इस कारण विष्णु, सूर्य, शिव, गणेश आदि आदि देवताओं की भग्न ऐतिहासिक मूर्तियाँ भी अपूज्य हो गयीं। इतिहास के जिस दौर में हिन्दुओं को अपने अस्तित्व की रक्षा करना भी दुष्कर हो रहा था उसमें नवीन मूर्तियों और मन्दिरों की स्थापना की कल्पना ही नहीं की जा सकती है।

यह भी संभव है कि इसी समय हिन्दू समाज के कुण्ठित और सांस्कृतिक ह्रासोन्मुखी हो जाने के कारण बराह अवतार के वीरत्व संचारी रूप के प्रति हिन्दुओं का मनोभाव क्षीण होता गया हो। सोलहवी शताब्दी ई. में तुलसीदास जी ने रामचरित मानस में वीरत्व संचारी रूप में श्री राम और संकटमोचन तथा दनुजवन कृशानु रूप में हनुमान जी के चरित्र को इस रूप में उभारा कि ये हिन्दू समाज में नव चेतना भरने को सशक्त संबल बन गये।

भक्ति युग के प्रारंभ होने से ही पुनः नवीन मन्दिरों की स्थापना प्रारंभ हुईं उनमें शिव, शक्ति, गणेश, हनुमान मन्दिरों के अतिरिक्त राम और कृष्ण अवतारों की स्थापना प्रमुख हो गयी।

बुन्देलखण्ड में वराह अवतार की पूजा के जहाँ इतने अधिक ऐतिहासिक साक्ष्य हैं वहाँ उसके लोप हो जाने के और भी कुछ कारण हो सकते हैं? विद्वानों के समक्ष आज भी यह चुनौती भरा प्रश्न उपस्थित है। दूसरा प्रश्न यह है क्या वराहपूजा के लोप से हिन्दू समाज का जो मनोवैज्ञानिक धरातल रिक्त हुआ था, उसकी भरपाई श्री राम और हनुमान जी के चरित्रों से की गयी?

संदर्भ -

१. पंचायतन मंदिर टीकमगढ़ में सिद्ध बाबा के मंदिर में आज भी विद्यमान है। इस विशाल शिव मंदिर के साथ छोटे-तीन मंदिर भी जो चार अन्य देवताओं के थे, सुरक्षित हैं, एक नष्ट हो गया है। उसके स्थान पर एक छोटी मड़िया बना दी गई है। ग्राम टीला (टीकमगढ़) में भी एक चंदेलकालीन पंचायतन मंदिर विद्यमान है।

-पुरानी नजाई, टीकमगढ़ म.प्र. ४७२००१
फोन ०७६८३-२४०७५० ✽

लोकगीत

— वनमाला चौहान

रखिवे बुन्देली भू मान, करिकै अपनी सब कुर्बान।
तनिबे संस्कृति केरिवान, धरिकै हिरदय मां ईमान।
बुन्देली संस्कृतियां गांवन खेतन मैरन घूमै।
भोली भाली, सीधी-साधी, माटी मुखड़ा चूमै।।
यही उठइवे दुलरइवे, हम भजिबे सकल जहान।
रखिवे बुन्देली भू मान, करिकै अपनी सब कुर्बान।।
मरै न दइबे कबहू जोश हम, साहस कबहुं न ख्वइवे।
स्वाभिमान की पलिबे सब दिन, नर्बश कबहुं न होइबे।।
लरिबे अंधियारे ते हरदम करि सूरज को ध्यान।
रखिवे बुन्देली भू मान, करिये अपनी सब कुर्बान।।
वाल्मीकी ऋषि, व्यास महाकवि तुलसी सुजस सुनइबे।
राम रहीम रमइबे जमकै, जगनिक ज्योति जगइबे।
फाग ईसुरी गइबे, भरिबै कंकालन मां प्रान।
रखिवे बुन्देली भू मान, करिकै अपनी सब कुर्बान।।
नाम गुलाम गौस की यारो, अब हम रोशन करिबे।
सुवा राबिया प्रिय नवाब, बांदा का करतब कहिबे।।
भूलब ना कबहू हम लक्ष्मीबाई का बलिदान।
रखिवे बुन्देली भू मान, करिकै अपनी सब कुर्बान।।
हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, इसाई बनवे हम सब भाई-भाई।
आपस मा मिलि जुलि कै रहिबे, बैर न रखिबे राई।।
प्रेम पुष्प की माला रचिबे, बनिबे बस इंसान।
रखिवे बुन्देली भू मान, करिकै अपनी सब कुर्बान।।

- प्राचार्या, आदर्श शिक्षा निकेतन इंटर कालेज,
पुलिस लाइन तिराहा, बाँदा ✽

किहानी बुन्देलखण्ड की

— वीरेन्द्र सिंह परमार 'वीर'

सूखा की साल, भईं पाँच साल हाल, चाल पूँछो न दैव डण्ड की।
किहानी बुन्देलखण्ड की।।
पाँच-साल पैलउँ कछु पानी कम बरसो।
कइयक घर छोड़ भगे, जियरा जौ तरसो।।
जैसउँ-कैसउँ उनसें पार-परो भइया!
फिर आई जा बेला चण्ड की...।।
साल तीसरी में सब फसलें मुरझाईं
ओरे परे-सूखे, परै अन्न न दिखाई।
काट-काट नरई औ सूखी गाह-गाह!
भई कैसी किसानी छन्द की...।।
घर नइयाँ रासन, न पानी न खर्चा
पिट रये ढिंढोरे है मिलबे की चर्चा
दो-दो रुपइयन की 'चेकें' हमें दै-दै कैं झारी हैं झाड़ू-झण्ड की।
भुसा नइँ पसुअन खाँ, सबने बे छाँड़े
खेत चरत बेई, हम देखत हैं ठाँड़ें
हमने भगाये, फिरहूँ तुमने भगाये यई पक रई रसोई हण्ड की।।
कैसें अब ब्याव होंय, खँदबै न कोई।
मोड़ीं-मोड़न कीं, सब किसमत हैं सोईं।।
लै-लै उधार, काँ लौं खइये करतार!
मोरे लपसी जा सकरकन्द की।।
जानबूझ बोओ, बड़ी मुसकल सें जामों
खाँयें जात रुझवा, औ सुखवाबै घामों
अब तौ बात बढ़ी जात, 'वीरेन्द्र परमार' कात!
रचना जा सूखा-फण्ड की।।

- उटियाँ (कबरई) महोबा (उ.प्र.) ✽

परमार अंचल का भावनगर

- डॉ. रामस्वरूप ढेंगुला

आंचलिक इतिहास की अज्ञात कड़ियों को जोड़ने और जानने की इच्छा लिये मैं लगभग तीस वर्ष से आसपास के गांवों में व सुदूर स्थानों की यात्रा करने की आदत पाले हुये हूँ। प्रायः इतिहास की संगोष्ठियों में भाग लेने के क्रम में मुझे देश-प्रदेश के विभिन्न स्थानों की यात्रा करने का सुयोग प्राप्त हुआ है। ऐसे प्राप्त अवसरों के मौकों पर मैंने हमेशा एक-दो दिन का अवकाश निकाल आसपास के ऐतिहासिक स्थानों की यात्रा जरूर की, यात्रा में लोगों से मिला, कुछ सुना, कुछ नोट किया और पैदल चलने से कभी परहेज नहीं किया। कभी इस बात की अपेक्षा नहीं की कि अब तो गाड़ी-वाहन-सवारी आदि नहीं है, दो-चार-पांच दस मील पैदल चलकर इतिहास-लोकसंस्कृति को परखना, समझना, जानना मेरे लिये आनन्द का विषय रहा। बुन्देलखण्ड के इतिहास के विभिन्न पक्षों के अध्ययन एवं शोध कार्य के दौरान यह बात सामने आई कि बुन्देलखण्ड के मध्यकालीन इतिहास में बुन्देलाओं के साथ परमार ठाकुरों की बराबर की सहभागिता है, किंचित बुन्देलाओं से अधिक क्योंकि बुन्देलाओं के प्रारंभिक राज्य ओरछा सोलहवीं सदी के पूर्व से पवाया, करहरा, बेरछा आदि के परमार राज्य अपने पूरे सौष्ठव पर थे। परन्तु इस काल के परमारों के कागज-पत्र नहीं मिलते। अतः वे आम इतिहास के जिज्ञासुओं से दूर ही रहे। निवेदक ने तमाम तथ्यों और परिस्थितिजन्य साक्ष्यों व उस समय के दुर्गों, महलों-भवनों आदि को देख-परखकर बुन्देलखण्ड के परमारों का इतिहास लिखने का उपक्रम किया है, जो लगभग पूर्ण है।

परमार अंचल का मुख्य भाग शिवपुरी जिले की करैरा तहसील के चारों ओर फैला था। अब यह अंचल मध्यप्रदेश के दतिया, शिवपुरी, ग्वालियर जिले एवं उत्तर प्रदेश के झांसी जिलों के बीच बँट गया है। आगे बढ़ने के पहले एक बात पर विचार करना अतिआवश्यक है, कि तत्समय में वर्तमान करैरा का नाम 'करहरा' या करेहरा था। समर्थ विद्वान और करैरा-दिनारा के जागीरदार रहे सम्मानीय श्री हरिहर निवास द्विवेदी ने अपने शोध-ग्रन्थ 'मध्यभारत का इतिहास' में लिखा है कि कर्णदेव परमार के नाम पर करैरा नाम पड़ा था। इस विषय में निवेदक ने काफी अध्ययन और शोध किया और पाया कि इस परमार प्रभावित स्थान का नाम हमेशा 'करहरा' ही रहा और समकालीन ग्रन्थों तथा कागज-पत्रों में १६४८ तक 'करहरा' ही लिखा गया। पहले तो यह कि परमारों की उपलब्ध वंशावली में सभी पारंपरिक शासकों के नाम के आगे 'साय' या 'शाह' लिखा मिलता है, इस प्रकार माननीय विद्वान द्वारा बताये कर्णदेव का नाम करनसाह परमार हुआ और यही वंशावलियों में लिखा मिलता है। करनसाय से आधुनिक खड़ी बोली का नाम 'करैरा' बनना किसी भी प्रकार संभव नहीं है। दूसरे करनसाय या माननीय के कर्णदेव परमारों में करहरा के पहले शासक न होकर दूसरे शासक थे। अतः माननीय के कर्णदेव से करैरा नाम की अवधारणा सही नहीं बैठती। अब 'करहरा' नाम के विषय में तथ्य इस प्रकार हैं -

सोलहवीं सदी के लेखक अब्दुल्ला मुहम्मद बिन उमर ने अपने ग्रंथ 'जफरुल वालेह बे मुजफ्फर व आलेह'' में मालवा के सुल्तान महमूद खिलजी के १४६६ ई. में करहरा पर आक्रमण का उल्लेख किया है। इस ग्रन्थ में वह 'करेहरा' शब्द का उल्लेख इस परमार नगर के लिये करता है। आईने-अकबरी का लेखक अबुलफजल जिसकी मृत्यु १६०२ ई. में हुई थी, इस परमार नगर का नाम 'करहरा' लिखता है। इसी समय में कवि 'केशव' ने अपने ग्रन्थ बीररचित् में 'करहरा' नाम का उल्लेख इस नगर के लिया किया है। ये तीनों लेखक मध्यकाल के विश्वसनीय इतिहास लेखक हैं, जो समकालीन होने के कारण असंदिग्ध हैं। अतः इस आधार पर यह सुनिश्चित है कि मध्यकाल और पूर्ववर्ती मध्यकाल व इसके पहले से जब करहरा नगर बसा था और उसे परमार राजधानी होने का गौरव प्राप्त हुआ था, उस समय इस नगर का नाम 'करहरा' ही प्रचलित था, न कि माननीय का 'करैरा'। इस परमार नगर का नाम करहरा क्यों पड़ा, यह प्रश्न अवश्य विचारणीय है। करहरा, इस क्षेत्र में कारी-हरी पहाड़ियों, चट्टानों, पत्थरों के शिलाखण्डों की भरमार है और इस अंचल के अनेक गांव भी संभवतया इसी कारण काली-पहाड़ी, कारा-हार, करई, करईया, केरुआ, डांग-करहरा, आदि नामों से जाने पहचाने गये तथा करहरा स्थान नाम भी कारी-हरी (बुन्देलखण्ड में प्रचलित शब्दावली) पहाड़ियों के कारण पड़ा। उल्लेखनीय है कि करहरा का दुर्ग जिस विशाल पर्वत श्रृंखला पर बना है उस पर अनेक शिलाखण्ड इसी कारे-हरे रंग के हैं। स्थानों के नाम प्रायः प्राकृतिक कारणों से ही प्रचलित होते थे। दूसरा एक कारण और इस में करहरा नाम के प्रचलन के संदर्भ में बताया जाता है। वह है, नदी के किनारे को बुन्देलखण्ड में 'करार' कहा जाता है, इससे भी इस नगर का नाम करहरा पड़ा हो। यह भी बताया जाता है कि करहरा दुर्ग के निर्माण के पूर्व इस गांव का नाम 'छपरापुरा' था। लेखक के रूप में, मैं इस निष्कर्ष को अधिक मान्यता प्रदान करता हूँ कि इस स्थान का नाम इस क्षेत्र की कारी-हरी पहाड़ियों के कारण ही 'करहरा' पड़ा।

करहरा के नाम का चलन मध्यप्रदेश के निर्माण के पूर्व तक बना रहा। करहरा क्षेत्र के अनेक गांवों में आज भी पुरानी जमीन सम्बन्धी भूराजस्व प्रवृष्टियाँ देखने को मिल जाती हैं, जिनमें लिखा मिलता है, परगना 'करहरा' जिला नरवर और आगे लिखा होता है, मौजा अर्थात् गांव फला-फला। इस तरह के सैकड़ों पत्र बिल्हारी के परमारों के यहां मौजूद हैं और भावनगर गांव के मिश्रा परिवार के यहां भी इस तरह की भूमि प्रवृष्टि का कागज देखने को मिला था। बगैर पवाया और करहरा के परिचय

के भावनगर का वर्णन अनबूझ पहेली की तरह होता। अतः अब करहरा के बाद पवाया की संक्षिप्त जानकारी जरूरी है। पवाया पार्वती और सिंध नदी के संगम पर स्थित पर स्थित प्राचीन महानगर था, ये नाम शासकों के लिये जाना जाता है, ये नाग शासक प्रथम शताब्दी से इस स्थान पर काबिज रहे। तेरहवीं सदी के मध्य में पुन्यपाल परमार ने पवाया में परमार राज्य की नींव रखी। पुन्यपाल परमार के पूर्वज मालवा (धार राजधानी) के सुप्रसिद्ध राजा भोज के वंशज थे। राजा पुन्यपाल परमार के ही पुत्रगणों ने करहरा, बेरछा-रतनगढ़ आदि परमार राज्यों की नींव रखी। करहरा महुअर नदी के किनारे पवाया से ७५ कि.मी. के लगभग है, यह महुअर नदी भी पवाया के आगे जाकर पार्वती-सिंध नदी की धारा में मिल जाती है। उल्लेखनीय है कि इसी सिंध नदी के किनारे परमारों के बेरछा-रतनगढ़ आदि ठिकानों का जन्म हुआ।

प्राचीनकाल का भावनगर, मध्यकाल का भागीर और वर्तमान का नाम भी भागीर गांव कभी मठ, मंदिरों और साधक-साधुओं का स्थान था। यह वर्तमान में दतिया जिले में, जिले से आठ किलोमीटर दूर दिनारा की ओर जाने वाले मार्ग से थोड़ा बाई ओर अगोरा-दुर्गापुर के बाद पड़ता है। अभी कुछ समय पूर्व तक यह शिवपुरी जिले की करैरा तहसील का गांव था। भागीर के करीब के गांव दुर्गापुर-अगोरा, डांग, करैरा, पलोथर, उदगुआं आदि सभी परमार अंचल के गांव थे। मध्यकाल में करहरा के परमार राज्य के ये सभी गांव, बाद में बुन्देलों के प्रभाव के विस्तार के बाद परमारों की जागीर के स्थान हो गये। परमार प्रभावित यह अंचल अठारहवीं सदी में झांसी से मराठा राज्य के प्रभाव क्षेत्र में शामिल हो गया। इन क्षेत्रों के परमार लड़ाकों ने १८५७-५८ के स्वतंत्रता समर में झांसी की रानी का सहयोग कर बलिदान की नई गाथा लिखी। यह भागौर गांव अगोरा के परमार ठाकुरों के क्षेत्रांतर्गत था, जो बाद में अगोरा के ही परमारों की एक शाखा की जागीर हो गया था। यहां उन्नीसवीं सदी की एक गढ़ी, टूटी-फूटी अवस्था में मौजूद है। इस गढ़ी के प्रकोष्ठ की ईंटें निकालकर उनकी नाप की गई, तो वे १४ इंच लंबी, ६ इंच चौड़ी और लगभग ढाई इंच मोटी पाई गयी। गांव के एक-दो मील के एरिया में इस नाप की ईंटें आसानी से मिल जाती हैं। ये ईंटे नाप और बनावट के हिसाब से चौथी शताब्दी के गुप्तकाल की ठहरती हैं। उल्लेखनीय है कि जबलपुर के प्राचीन भारतीय इतिहास के ज्ञाता-अध्येता डॉ. राजकुमार शर्मा ने अपने भाषण के दौरान बताया था कि चिरुला होकर गुजर्रा के लिये मार्ग निकला था, यह मार्ग ईसवी पूर्व तीसरी सदी में प्रचलन में था। भागौर के पूर्व की ओर पांच किलोमीटर दूर चिंरुला गांव वर्तमान में स्थित है, चिरुला से निकली अनगीरी नदी इस भगीर से तीन किलोमीटर ही पड़ती है। तत्समय में इस नदी का भराव और फैलाव भागीर या भावनगर के समीप तक था। संस्कृतियों और ऐतिहासिक नगरों के जन्म की कहानी नदियों और प्राकृतिक जल-स्त्रोतों के किनारे ही उत्पन्न हुई। इन तथ्यों के आलोक में यह मानने में कोई कठिनाई नहीं कि मौर्ययुग में ईसा की तीसरी सदी पूर्व भावनगर नाम का प्रसिद्ध स्थान मौजूद था।

इस प्रकार भागीर के दुर्ग में जिन ईंटों का उपयोग किया गया वे उस गांव के टूटे-फूटे, भवनों, मंदिरों, मठों आदि से एकत्रित की गई थीं। भागौर में मिश्रा, भार्गव ब्राह्मणों का परिवार पवाया से यहां आया था और तिवारी भार्गव ब्राह्मणों का परिवार बेरछा से यहां आया था। ये भार्गव ब्राह्मण ही परमारों के प्रोहित हुआ करते थे। इनको परमार शासकों ने जागीरें भी दी थीं, मिश्रा ब्राह्मण पवाया के परमारों के प्रोहित थे और तिवारी ब्राह्मण बेरछा के परमार ठाकुरों के प्रोहित थे। पवाया और बेरछा के परमारों के अवसान काल में ये भार्गव ब्राह्मण परिवार इधर-उधर के क्षेत्रों में बिखर गये थे।

भागीर गांव में दो काले-नीले, चिकतेदार पत्थर की बीस-बीस फुट ऊँची लाटें गढ़ी हैं, इन लाटों के बीच में ७५ फुट के करीब फासला है। जहां ये लाटें गढ़ी हैं, वहां मठों के अवशेष भी बिखरे पड़े हैं, गांव के लोगों का यह कहना है कि हम बुजुर्गो से सुनते आये हैं कि यहां कभी साधु रहते थे। इन मठों के स्थान के चारों ओर गोलाई में लम्बा सा घेरा बनाये हुये पत्थर बिखरे पड़े हैं। ऐसा समझ पड़ता है कि इस साधुओं के स्थान के चारों ओर विशाल घेरा बना हुआ था। इन मठ स्थानों के आसपास फैले खेतों में प्रायः खोदने पर चौकोर से चौपड़े निकल आते हैं, जो ईटों-चूने आदि से नहीं बंधे हैं, इन चौपरों की कंकड़ मिली भुरभुरे रंग की मिट्टी स्वतः ही दीवाल के रूप में स्थिर रह जाती है। ये इस क्षेत्र की मिट्टी की विशेषता रही है। इन चौपड़ों की गहराई अधिक नहीं है, कोई सात-आठ फुट के करीब रही होगी, इससे यह अनुमान होता है कि अनगौरी नदी के कारण यहां का जमीनी जल स्तर काफी ऊँचा था। यहां के पुराने बंधे हुये कुओं में एक दूसरे में कटाव से फंसी ईंटें देखी जा सकती हैं। ये सारी ईंटें गुप्तकाल के समय की ही हैं, पर लोगों ने इनका उपयोग दुबारा से कर लिया है, क्योंकि ये यहां आसानी से मिल जाती थीं। यहां प्राचीन काल की विष्णु-भगवान की मूर्ति, भगवान बुद्ध की मूर्ति और सभी प्रकार के देवी देवताओं की सैकड़ों मूर्तियां सन् १९६० तक बहुतायत से खेतों, टीलों पर बिखरी पड़ी थी। इनमें से कुछ मूर्तियां दतिया, ग्वालियर के संग्रहालयों में भी पहुंची, पर क्षेत्रवासियों का कहना है कि सेना के जवानों ने अपने नियमित अभ्यासों के दौरान इन मूर्तियों को काफी क्षति पहुंचाई, वे इनको यहां से उठा ले गये। इस तरह की शिकायतें दतिया जिले के भांडेर मार्ग पर स्थित बुहारा गांव के लोगों ने भी की थी। जो भी सत्य हो, पर यह जरूर सत्य है कि हम अपनी संस्कृति की रक्षा नहीं करते हैं, कहीं लालच और कहीं ताकत हमेशा संस्कृति रक्षा में आड़े आ जाती है। यह भावनगर या भागौर गांव प्रथम शताब्दी के पहले से काफी सुसंस्कृत धार्मिक स्थान था। यहां सभी धर्मों में भ्रातृ-भाव था और यह स्थान तेरहवीं सदी तक सुसंस्कृत बना रहा, यहां सभी धर्मों के साधु बेरोकटोक अपनी गतिविधियां चलाते रहे।

मूर्तियां जिन पत्थर की चौकियों में स्थापित कर प्रतिष्ठित

की जाती थी, वैसी चौकियां यहां खेतों में सैकड़ों की संख्या में लोगों को मिली। यहां के लोगों-गांव वालों ने इस प्रकार की पुरातत्व महत्व की सांस्कृतिक वस्तुओं का अपने मकानों, खेतों आदि में दुरुपयोग किया। भागीर में करहरा क्षेत्र की विशेष पहचान बने काले-नीले, चित्तदार-बुदकिंया वाले पत्थरों की पानी की बहुत सी होदियां देखने को मिलती हैं। ये होदियां प्रायः दो से ढाई फुट तक ऊँची हैं, इनकी लम्बाई दस फुट से लेकर दो फुट तक है। गांव वाले इन्हें 'चिरऊ' कहकर पुकारते हैं। यह चिरऊ शब्द बुन्देली का मध्यकाल-उत्तर मध्यकाल का प्रचलित शब्द है, जो वर्तमान में जानवरों को (चरने वाले) होदी में पानी पिलाये जाने के संदर्भ में प्रयोग किया जाता है। भागीर के रहवासियों का यह भी कहना है कि पत्थर को चीरकर होदियां बनाये जाने के कारण इन्हें चिरऊ कहा जाता है। इसी काले पत्थर की अनेकों हनुमानजी की मूर्तियां भागीर में मिलती हैं। उल्लेखनीय है कि करहरा क्षेत्र के लगभग सभी गांवों में इस काले-नीले पत्थर का मूर्तियां बनाने में व्यापक उपयोग किया गया है। करहरा से लगे बड़ोनी एवं समीप के पवाया अंचल में और दिनारा के समीप के अम्बारी नामक स्थान में सैकड़ों की संख्या में मूर्तियां आज के कुछ वर्षों पूर्व तक देखी जाती रहीं, आज भी इन स्थानों में ये उदाहरण के रूप में देखी जा सकती हैं। सन् १९६४ ई. में शिवपुरी के पुलिस अधीक्षक रहे एक सज्जन ने स्वयं एक बार बताया था कि जब वे जंगल के रास्ते से गुजर रहे थे, उस समय उन्होंने एक हनुमानजी की पुरानी मूर्ति असुरक्षित हालत में पड़ी देखी। वे उस मूर्ति को उठा लाये, आज वह मूर्ति उनके निजी महल की शोभा बनी हुई है। कहने का तात्पर्य यह है कि करहरा अंचल में कहीं कोई मूर्तिकला का बड़ा स्कूल या निर्माणगृह अवश्य था। जहां कुशल कारीगर लगातार मूर्तिकला के शिल्प में लगे रहते थे। मूर्तिकला, मानवीय संवेदनाओं के विभिन्न पक्षों की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। इससे यह भी ज्ञात होता है कि बुन्देलखण्ड में प्राचीन काल से लेकर उन्नीसवीं सदी तक मूर्तिकला जीवंत बनी रही। निश्चित ही बुन्देलखण्ड के करहरा अंचल के परमार ठाकुर मूर्तिशिल्प में रुचि लेते थे और भागीर या भावनगर तो मूर्तिशिल्प कला का केन्द्र था।

भागीर में मठों की मौजूदगी इस बात का सबूत है कि यहां साधुओं द्वारा नवीन दीक्षित-नवसाधुओं को धार्मिक शिक्षा दी जाती थी। भागोर का सम्पर्क बौद्धकालीन-मौर्य-कालीन बड़ोनी (छोटी-बड़ोनी) और गुजर्रा से जरूर था। ये दोनों ही स्थान भागीर के समीपवर्ती थे और आपस में तत्समय के राजमार्ग से जुड़े थे। अब बड़ा प्रश्न यह है कि भागोर या सांस्कृतिक भावनगर कैसे नष्ट हो गया था किसने इसे क्षति पहुँचाई। ऐसी कोई जनश्रुति-कथा या समकालीन उल्लेख सामने नहीं आता कि यह पुष्ट रूप में कहा जा सके कि भावनगर के विनष्ट होने के ये कारण थे।

भागीर के उजड़ जाने के या साधुओं के यहां से पलायन करने का एक बड़ा कारण भिन्न-भिन्न संप्रदायों के साधुओं के आपस में झगड़ जाना भी हो सकता है अथवा कोई प्राकृतिक कारण, अनगौरी नदी की बाढ़ या कोई बड़ी बीमारी-महामारी का अचानक टूट पड़ना या किसी बड़े अकाल का पड़ जाना भी कारण हो सकता है। परमारों की एक शाखा ''जौहरिया'' परमार कहलाती है। परमार वंशावली में उल्लेख मिलता है कि मुस्लिमों से लड़ाई में सभी परमार वीरों के वीरगति को प्राप्त हो जाने के बाद, सभी परमार वीरानियों ने जौहर कर लिया था, उस समय मात्र एक गर्भवती परमार क्षत्राणी किसी तरह अपने जीवन की रक्षा कर सकी थी। इस परमार क्षत्राणी के गर्भ से जो संतान हुई वह और उसके वंशधर आगे चलकर 'जौहरिया' परमार नाम से विख्यात हुये। शोध कार्य से इस विषय में यह निष्कर्ष निकला है कि परमारों और मुगल सेनाओं की भीषण भिड़न्त बाबर की सेनाओं के करहरा अंचल से सन् १५२८ ई. जनवरी, में चंदेरी की ओर प्रयाण करते समय हुई थी। इस भिड़न्त में परमार वीर वीरगति को प्राप्त हुये थे, हो सकता है इस समय किसी मुगल सेनापति ने भागीर को उजाड़ दिया हो। पर इस विषय में कोई सुनिश्चित प्रमाण न होने के कारण भावनगर के पराभव का कारण प्राकृतिक आपदा मानना ही अधिक ठीक होगा।

उद्भव और विकास, उत्थान-पतन, प्रकृति का शाश्वत विधान है। भावनगर जैसी अनेक संस्कृतियां अभी प्रकृति के गर्भ में दबी पड़ी हैं। जिज्ञासुओं को उन्हें प्रकाश में लाकर आज की युवा पीढ़ी को ज्ञान एवं सबक देने का कार्य करना चाहिये। उच्च शिक्षा-संस्थानों और विश्व विद्यालय अनुदान आयोग सहित, आई. सी.एच.आर. जैसी अनुदान दे सकने वाली संस्थाओं को शोध कार्य के लिए महाविद्यालयों के प्राध्यापकों के मिथकों से बाहर झांककर सुपात्रों की तलाश करने की आवश्यकता है। प्राध्यापिकीय मानसिकता की लीक पीटते रहने से लगातार रिपीटेशन की बीमारियां पैदा हो रही हैं, उनसे बचने की ईमानदर आवश्यकता की जरूरत भारतीय परिवेश को है। तभी इतिहास का भला हो सकता है।

– कुंजनपुरा, दतिया, म.प्र. ४७५६६१ ✠

कऔ तौ का जमानो है

– राघवेन्द्र उदैनियाँ 'सनेही'

घरईके, बैरियई सांसे, कऔ तौ का जमानी है
इनें हम रात दिन आंसे कऔ तो का जमानी है।
बड़ी चतुराई सें फैलाई चौंसर जिन्दगानी की
तऊ उल्टे परे पांसे कऔ तो का जमानी है।
कबऊं सूदें न हेरे जो उनइने गरज पै हमसें
घने रिस्ते जबर गांसे कऔ तो का जमानी है।
चिरौरीं काल जो अपनी करत रए आज तौ देखो
हमें बे देखकें खाँसे कऔ तो का जमानी है।
जिनें जी जांन सें चाहो 'सनेही' जानकें अपनों
उनइनें दये हमें झांसे कऔ तो का जमानी है।

– शारदा विद्या मंदिर, छतरपुर (म.प्र.) ✠

स्व. पं. श्री घनश्याम पाण्डेय 'साहित्य भूषण' द्वारा रचित प्रबंध काव्य 'भीम पुराण' के खण्ड प्रथम अध्याय तृतीय का अंश–

छत्रसाल चरित

– प्रस्तुति : मनमोहन पाण्डेय

दोहा – कहों तृतिय अध्याय में, परना कौ इतिहास।
छत्रसाल के हाल सब, लिखहों सहित हुलास।।

चौपाई– आँगें चले बहुर धनुधारी – आकर परना पुरी निहारी।
हीरा खान जान सब कोई – पदमावती पुरी यह सोई।
जन्मी पद्मावती यहाँ ही – भीम सिंह नरपति को व्याही।
भूप अमान सिंह के शाके – गावत नट–मागध कवि जाके।
चित्रकोट गिरि की परकरमा – बनवाई नृप लख निज धरमा
हिन्दूपत की कौन बड़ाई – यमन शाह सें लड़ी लड़ाई
चंपतरा बाँधी मरजादा – जिनकौ बल विक्रम नहि सादा
यमन कटक जब करी चढ़ाई – वीर वीरता प्रगट दिखाई
गर्भवती जिनकी प्रिय रानी – स्वान भूप संग रहो निसानी
चढ़े टौरिया[१] शिखर अकेले–उभय जीव कंधा धर झेले
छेंकी फौज पहरिया जबहीं – लाँघ दूसरी पर गये तबहीं
भूप–रूप तब अपन दुरावा – पीछे फिरे यमन के धावा

दोहा – कछरा,[२]–बाँकी [३] के निकट–विकट डंगाई देख
'ऊमर गोंदी' झील की झिरिया बनी विशेख

सोरठा –कछु दिन कियो निवास, निर्भै देखी खोहिया
'चंपत राई' तास, परो नाम शुभ भूम कौ।

दोहा – ऐरौरा,[४] रतुआ निकट, भरका विकट अनेक।
चंपतरा [५] पहुँचे तहाँ, मिले विप्रवर एक।

चौपाई –भूपत हाल सुनाये अपने – दुजवर देख रहे ज्यों सपने।
तुरत झोपड़ा खाली कीन्हों – डेरा तहाँ भूप कौ दीन्हों
स्वान करै रानी रखवारी – भूप किसान लगावहिं बारी
रहे कुँवर भ्राता अलबेले – तिनमें व्याहे एक अकेले
बसहिं एक गृह में सुखपाई – खेती तिनकें रही कमाई
पंचम भ्रात भये नृप हेती – काटहिं पाँचउ भैया खेती।
तुरत सवार यमन के आये – भूप रूप लख हिय धुक आये।
सैनिक सैन दई हँस बोले – चंपतरा सुयना भये डीले
यह को तुम संग काटन हारे – इनके भेद बता देव सारे
हैं हम पाँच सहोदर भाई – फकत एक की भई सगाई
और न हमरें जोरू जाँतौ – मानत येक खुदा सें नातौ
तब सैनिक बोले मुस्काई – करिये भोजन एक संग भाई
साँची बात तुम्हारी मानें – पकर न लेंय बिना पहचाने

दोहा – हँसिया डारो खेत में, कर रतुआ असनान
सैनिक संग भोजन करन, पाँचउ चले किसान

चौपाई –भावी परसी थार रसोई – बरनन करहुँ सुनहु सब कोई
दरभजिया सकसा की भाजी – नोंन मिरच कछयाऊ साजी
कुटकी अरु कोदन की रोटी – हँथपउ बड़ी न पतरी मोंटी
कुदई दार की कर कालोनी – कैंथा की चटनी अति नोंनी
चारक बूँद घीउ के डारे – चुरुअक दूद कुदई संग न्यारे
डेढ़ सेर के ढेर लगाये – कुदई मठा सन गंज भराये
चार–चार रोंटी फटकारीं – सेंमन की परसी तरकारी
कढ़ी–कढ़ी लख लार चुचावै – ऐसौ लगै उठा सब खावै
तिथि तेवहारन जबा पिसी की – रोटी मिलहै भाग किसी की
ठाठी परस धरीं भौजाई – घूँघट कर बोली मुस्क्याई
जे पाँचयँ को तुम सँग लाला – इनके कहिये पूरन हाला
बोल उठे नृप चतुर सुजाना – अब लग भाभी रही अजाना
हँसी न कर यै सी भौजाई – जा में प्राण जाँय बरयाई
भोजन एक संग पुन कीने – पर गये सैनिक वदन मलीने

दोहा – चतुर चार चर वर गये, अपने–अपने देस।
सहरानी परना गये, धीर वीर हृदयेश।।

चौपाई– रजधानी भूपत जब आये – यै रौरा के विप्र बुलाये
एरौरा की सनद लिखाई – इस्ट मुरारी दयो लगाई
सत्रा सौ की साल नबासी – मुरलीधर ऐरौरा बासी
ताम्रपत्र पर सनद खुदाई – गौ सूकर की आन लिखाई
बर्तमान सो अब लग भाई – दुबे वंस की बनी सवाई
गर्भवती रानी के बालक – प्रगटे छत्रसाल कुल–पालक
होनहार बालक के लक्षण – जन्म कुंडली बनी विलक्षण
छत्रसाल जब भये नरेशा – फिरी दुहाई चारऊँ देसा
वीर धीर रणधीर सुजाना – समर कमर कस कीन्हें नाना
इक दिन मृगया हेतु भुलाने – कुड़ियन ऊपर संत दिखाने
संत हाँत कोदन की रोटी – चक्राकार न मोटी छोटी
दैन लगे भूपत कों सादर – लई न बैठ गये कर आदर
प्राणनाथ आधी कर दीन्ही – ग्लान मान भूपत नहिं लीनी
आधी की आधी चौथाई – लई भूप सो सीस चढ़ाई
प्राणनाथ हँस बोले बानी, महिमा लखी न थोरी जानी
संपूरन रोटी लै लेते – धरनीधर धरनी सब देते
आधी लई न आधी पाई – अब तुम नृपत लई चौथाई
चौथाई महिं भई तुमारी – पुन असीस अब लेहु हमारी

दोहा – छत्ता तोरे राज में धक–धक करती होय
जितजित घोड़ा मुख करै, तित तित फत्ते होय।

चौपाई– नृप अब तुम दौड़ाऔ घोरौ – देखौ बहुर न कम्मर छोरौ
जहँ जहँ अश्व फिरहिं रणधीरा–तहँ तहँ महि महँ प्रगटहिं हीरा
समर भूमि यमनेश्वर जीतौ – जैसे खून ख्वार वन चीतौ
आशीर्वाद सुनौ नृप जबहीं – दौड़ायो घोड़ा को तबहीं
अवनि खोद हीरा ढुँड़वाये – मोल अमोलन के बहु पाये
प्राणनाथ जी के शुभ मंदिर – बनवा दये भूप अति सुन्दर
धवलधाम सुंदर सतखंडा – कंचन कलश फहर रहे झंडा
भई बुन्देलखण्ड रजधानी – वीर बुन्देला बनी निशानी
कलकत्ता पत्ता समडोलै – दिल्ली खीलन बिल्ली खोलै
आलमगीर खबर सुनपाई – तब परना कर करी चढ़ाई
छल बल कर जे तकें डंगाई – अनी जुरै कहुँ परै लराई

औरंगा नौरंगा कीन्हे – अपने राज शत्रु सन छीने
छत्रसाल छत्ता छितछाये – केतु समान हेतु फहराये
कँधा दये शिविका भूषण के – सुयश कहें कवि नरभूषण के
प्राणनाथ गुरु सेवा पाये – छत्रसाल सिर छत्र धराये
चौथे भाग भूमि नृप भोगी – युद्ध क्रुद्ध से भये वियोगी
अबै मुकरबा बने निशानी – नगर महेवा की रजधानी
प्राणनाथ शुभ ग्रंथ बनायो, ताको 'कुलजम' नाम धरायो
कुलजम ग्रंथ कियो निर्माणा – लिखे रहस्य अनेक विधाना
धामी एक समाज बनाई – संत पंथ की प्रथा चलाई

दोहा – खान पान सब एक हैं, दान मान सब एक
धर्म कर्म सब एक हैं, देखे मते अनेक।

चौपाई–अब सोई विद्यमान हैं मंदर – पुस्तक की पूजा अति सुन्दर
रत्नपुरी से धामी आवें – नित नये उत्सव तहाँ करावें
मंदर बनो देखवे जोगू – देखत खुसी होय सब लोगू
छत्रसाल के वंसज राजा – भये अनेक करे शुभकाजा
बलदाऊ कौ मंदर देखो – अपर न देखहुँ करहु न लेखो
जुगल किसोर झरोखन झांकी – स्वामी जू की सूरत बाँकी
रथयात्रा भूपत करवावें – आप हाथ रथजोत चलावें
स्वच्छ सरोवर इन्द्र चमन से – कंज विकास प्रकास समन से
जनकपुरी जब जाय सवारी – लक्ष्मीपुर की शोभा भारी

कुण्डलिया –

भारत के जो राष्ट्रपति, श्री राजेन्द्र प्रसाद
छत्रसाल की मूर्ति की करी स्थापना आद
करी स्थापना आद स्वयं महराज बुलाये
यादवेन्द्र के काज बुन्देलन अति मन भाये
वरने दुज घनश्याम पिता दुखिया आरत के
धन्यधन्य परसाद राष्ट्रपति तुम भारत के।

इति श्री भीमपुराणे श्रीमदाभारतान्तर्गत कथा वन पर्वणे छत्रसाल चरित इतिहास कथनोनाम: तृतीयोध्याय:

संदर्भ –

१. जतारा के निकट गाँव है।
२, ३. बिजावर के पास के गाँव।
४. बिजावर के पास के गांव
५. नाले का भाग

– मनमोहन पाण्डेय, मऊ चुंगी नाका,
टीकमगढ़ म.प्र. 卐

दो लोकगीत

– कमल सिंह सोलंकी 'कमल'

रिश्वत को हो गओ चलन रसिया

रिश्वत को हो गओ चलन रसिया।
कभी लालच न करियो मनवसिया।
तुम तो हो बाबू बड़े दफ्तर के
विश्वासी हो तुम बड़े अफसर के
रिश्वत के पक्को पतन रसिया।
कभी...।।

घोटाला, रिश्वत, कमीशनखोरी
सुन्नेटी जेवर से भर ली तिजोरी
जेल जाने के जतन रसिया।
कभी...।।

रिश्वत दलाली है पाप कमाई
बदनामी संग होवे जग में हँसाई
गाँठ में बाँधो वचन रसिया।
कभी...।।

ईमानदारी की सूखी भली है
बेईमानी जादे दिना न चली है
सयानों को ऐसो कथन रसिया।
कभी लालच न करियो मनवसिया।।
कभी....।।

सूखा

सूखो अषाड़ निकर गओ है,
बैरी हो गये बदरा।
सूखी रोहोनी मिरगा गओ सूखो
पानी गिरो नई तो मरनो है भूखों
आद्रा से तला नहीं भर रओ है। बैरी...

बरसो अषाड़, न सावन बरसो
भादों विकल मन पानी को तरसो
अश्विन भी खूब तरसा गओ हो। बैरी....
नदी ताल में पानी को टोटा
नाले में मिले नहीं एक लोटा
पानी काहे न बरस रओ है। बैरी...

बैसाख जैसी छिटके जुन्हैया,
कारे बादर दिखे कहुँ नईयाँ
जो मानसून काहे विफर रओ है। बैरी....
ऊगत से सूरज अगन बरसावे
गर्मी पसीना न मन को भावे
मौसम ऐसो काये कर रओ है। बैरी....।

– ४७, जासलपुर,
होशंगाबाद ४६१००१ (म.प्र.) 卐

बुंदेलखण्ड का वह गौरवशाली पेंजना

— पं. गुणसागर 'सत्यार्थी'

बात उन दिनों की है जब महात्मा गांधी ने भारत की आजादी के लिए सूत कातने वाले चरखे को स्वतंत्र-युद्ध में अस्त्र की तरह स्वीकार किया था। सन् १९२९ में बापू चरखा-खादी के प्रचार और सत्याग्रह की आंधी लेकर उत्तरप्रदेश में घूमते हुए सितम्बर माह में आगरा आकर टिके थे। उनकी उस यात्रा में ओरछा राज्य के 'राजकवि' स्व. प्रेमबिहारी जी जो हिन्दी जगत में मुंशी अजमेरी नाम से विख्यात हैं बापू के साथ थे। बापू बुन्देलखण्ड के इतने निकट पहुँचकर बुन्देलखण्ड की धरती पर न आएँ, यह बात कविवर सियारामशरण गुप्त को कचोट रही थी। स्व. सियाराम शरण गुप्त के ही शब्दों में घटना इस प्रकार है-

"........आगरे पहुँचकर किसी कारण से बापू लगभग एक सप्ताह का विश्राम ले रहे थे। सौभाग्य से आगरे की उस समय बापू के साथ स्वर्गीय 'अजमेरी' जी भी थे, जिन्हें हम सब परिवारिक आदर और श्रद्धा से मुंशी जी कहते हैं। तब अचानक मेरे मन में आया क्यों न उन्हीं के द्वारा बापू को चिरगांव आने के लिए आमन्त्रित किया जाए। विचार मन में उठा और तदनुसार पत्र भी लिख दिया। अपने अग्रज दद्दा (राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त) से पूछे बिना ही यह काम कर दिया था, जैसा कि मैं प्रायः नहीं करता।.......... आगरे में मुंशी जी के निवेदन करने पर बापू ने कहा था मैं तो चिरगाँव पहुँचना ही चाहता हूँ, पर मेरे 'जेलर' कृपलानी से बात कर लो।...." (स्व. सियाराम शरण गुप्त का निबन्ध "आगमन गांधी जी का साहित्य तीर्थ चिरगांव में) इस प्रकार 'अजमेरी' जी बापू को लेकर चिरगाँव पहुँचे थे। चम्बल नदी को पार कर बुन्देलखण्ड की पश्चिमी सीमा से महात्मा गाँधी ने पहले पहल बुन्देलखण्ड की पावन धरती पर अपने कदम बढ़ाये और झांसी होते हुए चिरगाँव पहुंचे थे।

बापू का प्रभावशाली उद्‌बोधन सुनकर बुन्देलखण्ड के नर-नारी अभिभूत हुए थे। उद्‌बोधन पश्चात् बापू ने चरखा-खादी के प्रचार-प्रसार और भारत की आजादी हेतु चलाए जा रहे 'सत्याग्रह' अभियान हेतु धन माँगा। दो व्यक्तियों ने बड़ा सा चादर फैलाकर उस सभा में उपस्थित जन समुदाय से मुक्त हस्त दान देने की अपील की। वहां बुन्देलखण्ड के पुरुष ही नहीं नारियां भी बापू के दर्शन करने उमड़ पड़ी थी। जब वह चादर लिए लोग नारियों के बीच पहुंचे तो नारियों ने उत्साहपूर्वक अपने आभूषण उतार-उतारकर उस चादर में डाले। बुन्देलखण्ड के विशिष्ट आभूषण देखते ही बनते थे, लच्छा, झांझें, छागलें, चूरा, पटेला, खंगीरिया, पखुरिया, ककना, गजरा..... वगैरह तरह-तरह के आभूषण उस चादर में बरस रहे थे। एक बहुत बूढ़ी महिला भी अपना सिर हिलाती हुई आगे आई वह शुद्ध चांदी के भारी बजनदार पेंजना पहिने हुए थी। उसने एक पैर का पेंजना उतारा जो लगभग ढाई सेर बजन का था और शेष सभी आभूषणों की तुलना में बहुत भारी था। वह एक पेंजना मानो वहां बुन्देलखण्ड के आभूषणों का प्रतिनिधित्व कर रहा था, चादर में जब कूदा तो शेष आभूषण उछल पड़े थे।

जब वह चादर की झोली बापू के सम्मुख पहुँची तो बापू ने आश्चर्य चकित होकर वही पेंजना सबसे पहले उठाया और जिज्ञासु दृष्टि से उसे हाथ में लेकर देखने लगे। 'अजमेरी' जी से बोले - इतना बजनदार गहना बुन्देलखण्ड की स्त्रियां पहनती हैं? 'अजमेरी' जी ने कहा - यह तो कुछ भी नहीं है, गूजरी तो इससे भी भारी होती है। बापू चादर में उसके जोड़ का दूसरा पेंजना खोजने लगे। लेकिन बुढ़िया ने तो मात्र एक ही पेंजना दिया था, दूसरा उन्हें कहां से मिलता? बापू ने जोर से कहा "किसी कंजूस बहिन ने अपना एक ही जेवर दिया है उससे दूसरा नहीं दिया गया।" बापू के शब्दों में हास-परिहास मात्र था, अतः सभी उपस्थित लोग हास-परिहास समझकर हंस पड़े। लेकिन बुढ़िया का मुंह उतर गया उसने बापू के शब्दों में अपना उपहास माना। बस फिर क्या था, आनन-फानन बुढ़िया ने दूसरे पैर का पेंजना उतारा और बापू को ले जाकर दे दिया। बापू दोनों पेंजना हाथ में लिये बहुत देर तक देखते रहे। शायद वह सोच रहे थे कि इतने बजनदार गहने पहिनने वाली बुन्देलखण्ड की नारियाँ कितनी बहादुर और उदार होती हैं। आज हम बुन्देलखण्डवासी गर्व से कह सकते हैं कि भारत की आजादी की लड़ाई में बुन्देलखण्ड के आभूषणों की भी भूमिका रही। धन्य है बुन्देलखण्ड का वह पेंजना जिसे राष्ट्र की सेवा का यह गौरव मिला।

- कुण्डेश्वर, जिला टीकमगढ़ (म.प्र.)卐

चौकड़ियाँ

— लोकेन्द्र सिंह नागर

रसना राम रसन रस रीझी, फिरती भींजी-भींजी।
बिना राम रस जस ना आवै, बिगरे स्वादन खीजीं।
राम-राम रट राम-राम की, बइके नाव मरीजी।
नागर और नाव नईं लेवैं, रामइ नाव पसीजीं।।१।।

रखइया हे राम तुम जग के, बँदे बाद सरग के।
राजा-रंक के तुम रखवारे, गनका, पापी ठग के।
चिन्टी, हाती, शेर, बुकरिया, कीट-पतंगा-खग के।
पंछी और सबइ जड़-चेतन, तनक तुमाई तग के।
किरपा कोर करौ नागर पै, सार-सटै जा मग के।

- भाण्डेर मार्ग, दतिया (म.प्र.) 卐

भानेंजन कौ भात

– रतिभानु तिवारी 'कंज'

बेटी कौ कारज अब नीरी, आगव भइया मोरे।
भानेजन की भात माँगवे, आइ चेटका तोरे।

दाऊ जू ने अपने मन में नीकी नईं विचारी।
अपने हातन अपने घर खों, आग लगा कें बारी।
सती नार खों दोष लगा कें, अपनों जनम बिगारी।
हाय विधाता तैनें उनकी, मति में पथरा पारी।
अपनी भुजा काट के कब अब, कीके करें निहोरे।
भानेजन की भात माँगवे, आइ चेटका तोरे।।१।।

मन अब धीर धरै न नेकउ, जरै ज्यौं अंगारी।
हिय में हूँक उठै का करबें, होगव बन्टा ढारी।।
बब्वा जू की माथी झुकगव, आन कका जू की गई।
वीरसिंह के वीर वंश में, ऐसी अनहोनी भई।।
चिरई चैनुआं सुआ, परेवा, रोरय हाती घोरे।
भानेजन की भात माँगवे, आइ चेटका टोरे।।२।।

बिन भइया के बैंन न नोंनी, लगै कऊं जगती पै।
कैसें तुमें विसारें बीरन, राखी पै अकती पै।।
आन राम राजा की तोखों, वेत्रवती साखी है।
मोरी टेक राखियो जैसी, भौजी की राखी है।।
दैरइ चांउर नेवतें अइयौ, प्यारे भइया मोरे।
भानेजन को भात माँगवे आइ चेटका तोरे।।३।।

राख चेटका की कुंजा ने, जब चूनर में बाँधी।
खलबल सी मच गइ धरती पै, चली भयानक आंधी।।
चमकी लाल बिजुरिया नभ में, उठे मेघ कजरारे।
अंदयारी हो गव धरती पै, टूटन लगे सितारे।।
धूरा उड़न लगी अबढारी, कुंजा ने कर जोरे।
भानेजन की भात माँगवे, आई चेटका तोरे।।४।।

ऐरी भऔ चेटका ऐंगर, कुंजा मन हुलसानी।
सुना परी कानन में आकें, बुंदेला की बानी।।
है सौगन्ध हमें माटी की, औसर आन समारें।
मड़वातर हो भानेजन के, आकें पाँव पखारें।।
देखौ काज घरै तुम जाऔ, दिना रए अब थोरे।
भानेजन की भात मांगवे, आइ चेटका तोरे।।५।।

कुल देवी खों सुमरैं कुंजा, अनहोंनी न हौवे।
दस भइयन की बैन अभागिन, हिलकी भरभर रोवै।
मूरत सी ठांड़ी मंडवा नों, दुःख की उठें हिलोरें।
चीटक लैकें प्यारे भइया, आय न अबलों दोरें।।
असुवन सें भींजी साड़ी के, ऊनें छोर निचोरे।
भानेजन की भात मांगवे, आइ चेटका तोरे।।६।।

कलस धरैं ठांड़ी सब तिरियां, मोंसें कड़ै न वानी।
मड़वा तरें अचानक ऐंनइ आंधी सी सन्नानी।।
छाया सी देखी कुंजा नें, लगी भेंटवे खम्भा।
बोल परी भानेजन ओरी, आगय अपने मम्मा।
चीकट धरी थार में अपरस, बंद भए सब दोरे।
भानेजन की भात मांगवे आइ, चेटका तौरे।।७।।

उजरन लगी दियासी छिन में, सुबरन की जोती सें।
चमकन लगी थार चांदी की, हीरन सें मोती सें।।
कुंजा की आँखन सें असुवा, ढड़क परे अबढारे।
नर काया में दर्शन देओ, भइया प्रान प्यारे।।
सोनों चांदी हमें न चाँनें, चाँने दरसन कोरे।
भानेजन को भात माँगवे, आइ चेटका तोरे।।८।।

बुन्देला की नर काया नें, आगे हांत बढ़ाऔ।
भानेजन के चरन पखारे कुंजै कंठ लगाऔ।
कुंजा लिपट गई छाया सों, नर छाया अलवेला।
मरें भात दव भानेजन की, हो गव अगर बुंदेला।
राखें लाज काज में सबकी, लाला भए अहोरे।
भानेजन की भात मांगवे, आइ चेटका तोरे।।९।।

-बुन्देली धाम, नैगुवाँ (टीकमगढ़) म.प्र.

बुन्देली गजल –

सूका काल

– गोविन्द यदुवंशी

अब तो बरस जाओं रे बदरा,
अब तो तरस खाओ रे बदरा।

पथ हेरत पथराई अखियाँ, खेत हो रये जैसे पथरा।
बरखा के सब नखत बदर गये, हाथी गओ उड़ाउत ककरा।

ऊसर जैसे गाँव लगत है, सूने डरे बमीरी बंगरा
गौ मातायें भूखी फिरती, सूखे हरियाली के कछरा।

सस्ते गेहूँ की कीमत पर, खा रये लोग विदेशी कचरा।
दई के मारें कां छिप जावें, ऐसो कउं बनो न छपरा।

चिड़ियों जैसे फुरफुर उड़ते, अब तो ठहर जाओ रे बदरा।
बेजुवान पशुओं के खातिर, अब तो बरस जाओ बदरा।

- यदुवंशी निवास,
पन्ना (म.प्र.)

बावनीकार कविराज बिहारी लाल (बिजावर)

— कपिल देव तैलंग

कविराज बिहारी लाल (बिजावर) एक रससिद्ध, काव्यकुशल, सहृदय सन्त, विरक्त साधु होने के साथ ही मस्तमौला और विनोद-प्रिय व्यक्तित्व के धनी रहे हैं। शारीरिक रचना आकर्षक, गौरवर्ण, मोहक, काव्य रचना मानो वे काव्य सौन्दर्य और काय सौन्दर्य के अनूठे उदाहरण थे। विलक्षण-प्रतिभा के लक्षण ग्रन्थकार। रस, छन्द, अलंकार प्रस्तार एवं बंधों से परिपूर्ण उनका लक्षण "ग्रन्थ साहित्य सागर" मानो वास्तव में साहित्य सागर था।

मेरी समझ में पं. जगन्नाथ दास रत्नाकर के पश्चात् ब्रज रस रचना के सिद्ध कवि कविवर बिहारी लाल जी ही सर्वमान्य होंगे। वे आशुकवि एवं सक्षम समस्यपूर्तिकार रहे।

"मृतक भ्रमर अरविन्द पर नाद नृत्य दोऊ करत" की अद्‌भुत समस्यापूर्ति कर उन्होंने अपनी आशुकवित्त्व एवं त्वरित रचना पटीयसी प्रतिमा को सार्थक सिद्ध किया था।

तत्कालीन साहित्य की कवि विधा में सप्तक, अष्टक, पच्चीसा, पचासा, बाबनी, शतक एवं सतसई का प्रचलन अधिक था। इसी आधार पर कविवर बिहारी लाल जी ने तीन बावनियाँ लिखकर परम्परा आधार पर रचना कर डाली। ये बावनियां दोहा छन्द में न होकर 'कवित्त' छन्द में रचित हुई है। जो निम्न लिखे अनुसार हैं -

१. वैराग्य बावनी, २. वीर बावनी, ३. व्यंग्य बावनी

वैराग्य बावनी (बावनियों में प्रथम) तो मेरे पूज्य पिताजी स्व. बालकृष्ण देव तैलंग के सम्पादकत्व में प्रकाशित हुई थी। वीर बावनी अप्रकाशित है। जो मेरे पिताजी द्वारा संग्रहीत विविध साहित्य-रचनाओं के संग्रह में टंकित रूप से सुरक्षित है। व्यंग्य बावनी के सम्बन्ध में कवि राज ने चर्चा अवश्य की थी किन्तु देखने में नहीं मिली। अपने पुत्र के बिछोह ने बिहारी जी को श्रृंगारी कवि से सन्त कवि बना दिया था, विरक्तता की परिणति वैराग्य बावनी में हुई।

देह की नश्वरता से संबंधित उसकी यह रचना दृष्टव्य है-

टोरत न आशा, द्रव्य जोरत करोरन की,
संग ना चलेगो दह, गेह चाँदी सोना है।
मानत नहीं है महा-मूढ़ मतवारो मन,
जानत नहीं है खाली खाल कौ खिलौना है।
कहत बिहारी अरे भज भुवनेश्वर कौ
रहना सचेत घड़ी चार का मिलौना है।
धर्म बीज बीना व्यर्थ औसर न खोना
देख मानस को छोना जाने होना के न होना है।

(वैराग्य वावनी)

इस प्रकार बावन कवित्तों में संरचित सह रचना-सरस बन पड़ी है। ऐसा ही नहीं कि कविवर बैरागी ही बन गए हों, युवा तरुणाई को वीरता का पाठ पढ़ाने में भी उन्होंने अपनी लेखनी चलाई है। जो वीर बावनी के रूप में हमारे सम्मुख आई हैं देश का युवा वीर बने, धीर बने, पौरुष जागृत हो। यही बात वीर बावनी, के उद्देश्य कथन में प्रकट हुई है।

श्री गणपति शारद सुमिरि, बरनौं वीर चरित्र।
जिहि पढ़ि सन पौरुष बढ़े अन्तर होय पवित्र।

वीर बावनी में पौराणिक चरित्रों से सम्बन्धित छन्द है, वहाँ शिवाजी, राणा प्रलाप, ओरछा के राजा रुद्रप्रताप, भारतीचंद, मधुकर शाह, वीरसिंह देव प्रथम और बलिदानी 'हरदौल' के साहस शौर्य का बखान है।

कवि ने रचना के आरंभ में माँ दुर्गा के विविध रूपों में पराक्रम का वर्णन इस प्रकार किया है -

धूम्रास वध पर निम्न लिखित पंक्तियाँ दृष्टव्य है :

"एक ही हुंकार पै पुकार ही न पायो कर
दृष्ट धूम्र अक्ष की धरा पै धूल उड़गी।

चण्डमुण्डवध की शौर्यपूर्ण पंक्तियाँ यों निःसृत हो पड़ी :

पाई सुधि शुंभ ने पठाये खल खंभखेत
आन जुरै जंग जो कराल कसै काला में।
कहत 'विहारी' शक्ति काल रूप काली बन
सँगर मचायी महाँ युद्ध विकराला में।
झट्ट झट्ट खग्गदे प्रकट्ट कट्ट कट्ट दैत्य
गट्ट गट्ट पिये रक्त नृत्य किये हाला में
नागचर्म ओढ़ लिये बाहुन बगोड़ लिए
जोड़ लिए चंड-मुंड मुंड-मुंड माला में।

इस प्रकार पांच कवित्त तो माँ दुर्गा के शौर्य को समर्पित हुए हैं।

मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम का लोकरक्षण पराक्रम का प्रदर्शन कवि निम्नलिखित पंक्तियों में कर रहा है

चौदह सहस दैत्य कुल के कलश तीन
कौसला के छोना ने विछोना कर दीने हैं।। तथैव
कानन लौं तान तिमि तमक तीर राघव ने,
बानन दसानन के आनन उड़ा दये।।

लीला पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण लोकरंजक ही नहीं लोकरक्षक के रूप में भी ज्ञेय-ध्येय हैं, वे प्रतिज्ञा करते हैं -

"मोर मोर भुजंन, मरोर टोर टोर दुष्ट
काल क्रूर कंस कौ विध्वंस कर डारूँगो। एवं
दोसिन के, द्रोहिन के, दुष्टन के दैत्यन के
माचे मार दीन्हे तमाचे मार मार कैं।

वीर वर भीष्म अपनी भीषण प्रतिज्ञा के लिए सदैव स्मरणीय रहेंगे, आज भीष्म का कोप अपने आराध्य पर ही प्रकट हुआ है-

"ज्ञान को अखण्ड नीति धर्म को प्रचण्ड वीर
षंड पक्ष खंडन उदंड बल रोप्यो है।
भुवन भ्रमाय द्वन्द्व दुवन मचावन कौं,

शांतनु सुवन गंभीर गुण गोप्यो है।
कहत 'बिहारी' कवि, कृष्ण को हिए में धारि,
कृष्ण ही पै तीर छोड़ कृष्ण ही पै छोप्यो है।
कृष्ण ही की बात मान, कृष्ण ही के मारवे को
कृष्ण ही को भक्त आज कृष्ण ही पै कोप्यो है।

भारत की तरुणाई को जहाँ दुष्यन्त-शकुन्तला के वीर सपूत से निर्भयता और सत्यमेव-मृगेन्द्रता का पाठ सीखने योग्य है वहीं पुत्र अभिमन्यु का बलिदान भी चिरस्मरणीय रहेगा। कविराज के शब्दों में -

"काहे को दिखावत हो दर्व दुर्योधन को,
कीन्ही है कमाल कहाँ करन के काम ने।
द्रोण, कृप, शल्य अल्ल बल्ल वह बहके सवे
थाम सके व्यूह ना गये ते मिल थामने।
कहत 'बिहारी' भट भीष्म से भ्रमित भये,
विक्रम विकासो वर बाँके, बल-धाम में।
भये अस्त-व्यस्त से समस्त सूर भारत के,
पारथ के बालक बहादुर के सामने।।

सभी रचनाओं में शब्द संयोजना, ओजस्विता 'प्रसाद गुण' प्रभावोत्पादकता एवं अलंकारों का सलोनापन दर्शनीय बन पड़ा है। वीर बावनी में भारतीय परम्परा के प्रायः वे सभी वीर सपूत वर्णित हैं जो तरुणाई के मार्गदर्शक बन सकते हैं। इस दृष्टि से विषय की समीचीनता एवं प्रासंगिकता भी विद्यमान है। भीम आदि पौराणिक वीरों के साथ ही ऐतिहासिक परम्परा के वीरों का समुचित समावेश किया गया है। धर्म संस्थापक गुरु नानक एवं गुरु गोविन्द सिंह सदृश वीराग्रणी वर्णित है। वहां राष्ट्रवीर राणा प्रताप और धनपति शिवाजी के पराक्रम की गाथा गाई गई हैं।

महाराणा प्रताप के आतंक से भारत सम्राट अकबर भी इतना भयभीत रहता था कि रात की नींद भी हराम हो जाया करती थी। जैसा कि किसी राजस्थानी कवि ने वर्णित किया है कि-

"माई ऐसा पूत जा, जैसो राण प्रताप
अकबल सूतों उझके जाण सिरावै सांप।।

इसी बात को व्यक्त करते हुए कविवर बिहारी ने भी लिख दिया कि -

"मिंचन न पाई आँख जौं लौं उदै नन्दन की,
लगन न पाई आंख तौ लौं अकबर की।।

छत्रपति शिवाजी के पराक्रम झांकी इस प्रकार आंकी गई है -

"गज है न भोला है, न दारू है न दौलत है
शिव है, शिवा है, शिवाजी है कि बाजी है।

अन्य वीर नरेशों में महाराजा रुद्रप्रताप, मधुकर शाह, रामशाह, वीरसिंह (प्रथम) और बलिदानी वीर हरदौल की शौर्य गाथा लिखने में भी कवि ने कमाल दिखलाया है।

लाला हरदौल का विषपान बुन्देली कविजनों का वर्ण्य विषय रहा है उनके बलिदान की कहानी जन-जन से जुड़ी हुई है।

कविवर बिहारी भी कैसे मौन रहते -

"राजा की रजाय पाय राण पानी की आज
पतिव्रत पालवै को पूरे प्रण परिगी,
कहत बिहारी हरदौल हेर मानो हर्ष
ईसुर के ध्यान में अपूर्व भाव भरिगी।
जहर को प्याला लेय लाला कँह दीनो मात,
लीनो वीर हाथ धर्म धीरता में ढरिगी।
कुँअर किशोरा छैल छोरा वीर सिंह जू को
जोरावर बाँकुरी कटोरा पान करिगी।

कवि ने बावनी समापन के पूर्व अपने आश्रयदाता बिजावर नरेश महाराज सामन्त सिंह के शौर्य एवं साहस से भरे शेर और वाराह के शिकार-साहसिकता का अनूठा वर्णन किया है।

अन्त में तरुणाई को जगाकर अपनी, आन, बान, शान बनाए रखकर राष्ट्र के प्रति समर्पण की भावना जगाई है-

"वीर बने निज देश हित, वीर बॉवनी बाँच।"

- तैलंग भवन (राजमहल के पास)
टीकमगढ़ म.प्र. 卐

बसारी कौ गड़गोरा

— रामस्वरूप पटेल 'प्रधान'

धम धम कूटो प्यांर, जीमें कड़ो हलका सुनार।
हलका सुनार ने बनाई सेली, जींसे कड़ो हज्जू तेली।
हज्जू तेली ने डारी लाट, ऊमें कड़े देवीदीन भाट।
देवीदीन भाट ने करी भटवारी, जीमें कड़े रामसेवक पटवारी।
रामसेवक पटवारी ने लिखी लिखन, जीमें कड़े सरू छिपन।
सरू छिपन ने छेदी सुजी, जीमें कड़ी अहीर की दुजी।
अहीर की दुजी ने पाले छउवा, जीमें कड़ो छुरिया नउवा।
छुरिया नउवा ने मूड़े मूड़, जीमें कड़े खैर के डूड़।
खैर के डूड़ में घाली कुलारी, जीमें कड़े बल्दू पुजारी।
बल्दू पुजारी ने करी पूजा, जीमें कड़ो चत्तू भरभूंजा।
चत्तू भरभूंजा ने घाले गोला, जीमें कड़ो काछी भगोला।
काछी भगोला ने बैई क्यारी, जीमें कड़े नन्ने बब्बा तिवारी।
नन्ने बब्बा तिवारी ने पैरीं पनैयां, जीमें कड़ो तेली नंनइयां
तेली ननइयां ने चलाओ कुलुवा, जीमें कड़ो ढीमर कौ मुलुआ।
ढीमर के मुलुआ ने पकरे मुंडा, जीमें कड़ो अहीर कौ गुंडा।
अहीर के गुंडा ने खाये पान, जीमें कड़े मटौंदा बारे मान।
मटौंदा बारे मान ने गाओ सैरी, जीमें कड़ो ढीमर कौ भैरीं।
ढीमर के भैरीं ने डारो जरवा, जीमें कड़ो अहीर कौ बरवा।
अहीर के बरवा ने चराई गैयां, जीमें कड़ो पठान पिरखैयां।
पठान पिरखैयां ने काटे कुरवा, जीमें कड़ो रावतन कौ पुरवा।
रावतन के पुरवा में बीने मउवा, जीमें कड़ो सरियां दउआ।
सरिया दउआ ने पालीं कुतियाँ, जीमें कड़ो कुमार की पुतियां।
कुमार के पुतियां ने पारे खपरा, जीमें कड़ो कुरमी कौ जबरा।
कुरमी के जबरा ने करी हबलदारी, जीसें बनी जागीर बसारी।

- पर्यटक ग्राम बसारी 卐

सद्य अतीत की, एक आँचलिक बुँदेली सत्यकथा -

शक्ति की शख्शियत : कन्हई-कक्का

— भानुप्रताप शुक्ला 'भानु'

महोबा के 'आल्हा-ऊदल' की नांव अपने 'बुन्देलखण्ड' के गाँव-गाँव में, बारे सें लै कें बूढ़े लौ, सबई की जुबान पै जानें अनजानें निकरतई रात, हालाँकै बे! कभऊँ के राम खाँ प्यारे हो गये, पै जा! बुँदेलन की धरती ऊ बलवीरता सें कभऊँ बिहूनी नईं भई।

जिला छतरपुर की हरपालपुर-टेशन सें कोसक दूर लगो भओ एक गाँव हैं - 'तिवारनन की तेईया' इ तै 'कन्हाई कक्का' नाँव के एक जनें आल्हा-ऊदल के मोंसरे-भईया हो गये, बुँदेली में एक कानोंत है कि "जो करै आहार, सो ढ़केलै पहार" उनपै जौ आनों पूरो पूरी उमानें कौ बैठत तो।

एक बेर पूरी चँदिया में, ढ़ोरन हाँ खुरा रोग निकरौ 'कन्हई कक्का' की एक बदिया (बैल) सोऊ ई रोग की चपेट में आ गई और तीन पाँव की हो गई, रीती निगबौ मुसकिल हो गओ। राम! अब गाड़े में कैसे काम देत? घर में मोंड़ी कौ व्याव हतो, फिरी के दिन नीरे आ गये ते, रोजई गड़वाई लगीरात ती, कभऊँ नकरिया फाटा हाँ जाने, तौ कभऊँ न्योंतारनन के लुआवे पठावे हाँ, पईस-टका की जुगाड़ बिठावे, नाज कनूका वेंचन जानें ओई में जा! ढोरन कें खुरारोग की भावई आन परी।

कन्हीई कक्का ने फनाफटकार, खुटीं खोंस के, गाड़ी ढंड़का के द्वारे में धरो, और पन्द्राक मन जुनई पाखरी में भरदई, पईयन की हिल्लन और नन्दन पै पानी डारी। चकन में ओंगन लगाओ, और जैसई बदियाँ बगर से छोर कें गाड़े में नई तैसई बो तीन टाँग की बीमार बैला बैठ गओ। अब कन्हई कक्का बड़े हैरान, ऐन मोंका पै भारे के लाने कीसें रखत माँगें? को दई देन चलो? कक्का झूका बिसूरी में पर गये। घरकिन ने कई कक्का! गाड़ो अदे दो, काल परों काऊ की बैला माँग कें बेंच आईयी।

जो सुन कें पनवेसरे ऊ! कन्हई कक्का हाँ न जानें का औरी, उन्ने बौ रुगैलया बैला तो ऐंगर खेलत लिड़ेर (बाल-बच्चों) के हाँथन बगर हाँ हँकवा दओ और ज्वाँरी की डेरी पार दोऊ हाँतन पै धर कै, दायनी बदिया के संगै निब गये, और हरपालपुर गल्लामण्डी में बारा बजें दिन कें गाडो कड़ोर के आन ठाड़े भये। जो देख मण्डी के अढ़ैतिया और बया दाँतन में उँगरियाँ दाब कें रै गये, असपेर के कछू किसान जुन नाज बेंचन आये ते वे आपस में खुसखुसान लगे कै "जौ पनवेसरो आदमी आय कै जिन्द" 'ऐसे हते अपने कन्हई कक्का'।

जा तौ आय उनकी ढ़रती ज्वानी की बात, अब हम तुमें उनकी एक बारे की कथा सुना रये, जियै सुन कें तुम! हँसन के मारें लोट-पोट हो जैव, ऊ जमाने में मोंड़ा-मोड़िन के ब्याव बारे में हो जात ते, सोई कन्हई कक्का कौ ब्याव भओ और दूला के कलेवा कौ बुलउआ डेरा में आओ, सो अपने जीजा, फूफा, सखा सबई लिवाकें कन्हई कक्का-पालकी में मलकत, मोंरे मटकाउत, मड़वा में कुँवर कलेऊ करवे हाँ आये। ऊ जमाने में पचमेर मिठाई की चलन हतो दूला हाँ सब सें बड़े पीतर के कुपरा में कलेवा परसो जात तो बड़ो कुपरा घर में न होत तो, तौ पुरा परोस सें मंगवा लओ जात तो, जीमें आठ, दस दोंनईंयाँ मिठाई कीं, चार, छः तिरकारी की, दो,चार शक्कर, नमकीन, अचार की और दो-तीन सेर कीं लुचईं आसानी सें बन जाँय। ऐसी बासन ढूँढ़ कें दूलै धरो जात तो, मड़वा तरें पलका बिछे। दूला राजा, पलका पै जा बिरजे, अगल बगल के पलकन पै उनकी समाज बैठ गई। चार, पाँच कुपरन में सबई पलकन पै थार परस दये। दूला तनक नेंग खाँ हिनको-ठिनको, जोई नेंग मिलो, सोई कलेवा शुरू हो गओ। तनकई देर में 'कन्हई कक्का' ने मयगठुवा के सबरो खरयान उठा लओ। थार में, दो-तीन करीं-लुचईं, आमन के अथाने कीं, अदचचोरी छोई छोड़ कें और कछू न बचो। जौ देख कें, पुरा की लुगाई और न्योंतारनें, गाबो छोड़ कें आँचर के छोर मों में दाब दाब आपुस में खुशखुशान लगी, एक ने धुतिया की छोर मों में दाब कें, बगल में बैठी दूसरी बईयर सें कओ - "जिजी जौ पेट आय, कै भरभूँजा कौ भार" ऊके बतकाब की झनक दूला के कानन में परी अई हती, जौ लौ तीसरी बोली कै - "खावे भरे को खोंड़ा है कै कछू मुंन्सई दिखाउत"? इतनें में सारी-सरजें बोली - "जीजाजू चलो बाती मिला दो?" और बे! जीजाजू हाँ सामें एक सकरे दोरे की अटरियां में लिवा गईं जी की फर्श कछू गैरी हतो ऊ में किवार-चौखट कछू न हते। दिरोंदा इत्तो नेंचो हतो के दूला को मूँड़ फूटत फूटत बचो। उतै और तमाम लुगान की जमरखा हँसी-मसखरी करवे और दूलै तिनगावे हाँ जुर आओ।

'कन्हई कक्का' ने बाती मिलाई, नेंग लै के खलेती में सरकाओ और पूरी अटरिया भरमें - चारऊ कोंने, अपनीं नजरें दौराई एक कोंने में दस, बारा पैलीं की चनन सें भरी एक कुठिया धरी दिखानी, उयै झपट कें दोऊ हाँतन सें कौरयाओ और पिछलत पिछलत ल्याकें अटरिया के दोरे में अड़ाकें धर दओ और अपनी कलेवा की जमात लैकें डेरा में चले आये और चकैत से बोले - "कलेवा में हमारो पेट नईं भरो, कछू सतुवा-खुर्मी हमें खावे हाँ देव" चकैत नें एक बोंगना में सेर सवाक सतुवा और असेरा तीन पउवा गुर की ढ़ीड़ा दओ, ऊ खाँ सरपोटकें कन्हई कक्का की जठराग्नि कछू शान्त परी।

उतै मैर की अटरिया में फँसीं लुगाई कोंनऊ निस्तार हाँ तरसें, तौ कोंनऊ के मोड़ी-मोड़ा रो रये। कौनऊँ पसीना में लथपथ प्यासी-भूखीं, चिल्ला रईं, अटरिया सें कैसें बाहर निकरें कुठिया दोरे में अड़ी, कऊँ हो चिरईया निकरबे हाँ साँस नईंयाँ। जी जी ने दूलाराजा की जा कर तूत सुनी, बे सबई सन्नाटे में रै गये हराँ-हराँ जा खबर, बिटिया वाले के घर सें, दूला के बाप के कानन में परी, तब बाप ने दूलाहाँ ऐंगर बुला के ऐन ढ़िड़याओ और मारें हाँ दौरे। तब कऊँ बिटिया वाले के घरै जा कें दूला नें बा चनन की कुठिया, अटरिया के दोरे में सें उठा कें जाँ की ताँ ओई कोंने में कौरया कें फिर धर दई। ऐसे हते अपनें 'कन्हई कक्का'।

- संदीप सदन, कंचनपुरा, निवाड़ी (टीकमगढ़) म.प्र. ॐ

चंदेलों की जल संरक्षण नीति का साक्षी : बल्देवगढ़ का ग्वाल सागर

— हरिविष्णु अवस्थी

उल्लास की ऊँचाई को दर्शन की गहराई से जोड़ने वाले लोग पूरे जीवन को बस पानी का एक बुदबुदा मानते रहे हैं और इस संसार को एक विशाल सागर। इसमें पीढ़ियां आती हैं पीढ़ियां जाती हैं, युग आते हैं, युग जाते हैं, ठीक लहरों की तरह। जीवन और मृत्यु की लहरों से लहराते इस भवसागर से पार उतरने का लक्ष्य रखने वाले समाज ने तरह-तरह के तालाब बनाए हैं और बहुत रुचि के साथ उनका नामकरण किया है।[1]

देश के मध्य स्थित बुन्देलखण्ड नाम से अभिहित भू-भाग "विन्ध्य श्रृंखला का सर्वाधिक राकड़, पथरीला एवं ऊबड़-खाबड़ क्षेत्र है। मौसम विशेषज्ञों ने इसे अनिश्चित वर्षा वाला क्षेत्र माना है। पूर्व इतिहास प्रकट करता है कि हर पांचवे साल अनावृष्टि इस क्षेत्र की विशेषता है।[2] बुन्देलखण्ड के इस भू-भाग को सिंचाई के लिए बादलों पर ही निर्भर रहना पड़ता था। मेघजल का संचय करके वर्ष भर काम लेना यही एक माध्यम है। नहर अथवा कूप ऐसी भूमि के लिए असंभव साधन थे।[3]

चंदेल शासकों ने पहले-पहल इस महत्वशाली रहस्य को समझा। अतः चंदेल शासकों ने साम्राज्य भर में छोटे-बड़े जलाशय खुदवाने के लिए प्रभूत धन व्यय किया। जिस कार्य में चंदेलों ने अपनी अतुल राशि लगाई वह था जलाशयों और सरोवरों का निर्माण ऐसे विभिन्न क्षेत्रफलों के सरोवर सारे बुन्देलखण्ड में विद्यमान हैं।[4] चन्देल शासकों में सर्वप्रथम राहिल (६००-१५ ई.) ने महोबा से दो मील दक्षिण की ओर एक जलाशय बनवाया जो राहिल सागर के नाम से विख्यात है।[5] चंदेल शासक धंग (६४०-६६६ ई.) द्वारा जलाशय निर्माण की जानकारी खजुराहो के जैन मन्दिर में विद्यमान सन् ६५५ ई. के इस शिलालेख से प्राप्त होती है।[6] चन्देल नरेश मदन वर्मा (११२६-११६५ ई.) ने जलाशयों की रचना के कारण जिस लोकप्रियता का संग्रह किया था वह अन्यों को दुर्लभ रहा।[7] सिंधु सरिस विशाल सरोवरों का निर्माण कराकर उन्होंने इस भू-भाग के विकास के मार्ग को प्रशस्त किया।

चंदेलों के राज्य की सुदृढ़ अर्थ व्यवस्था उनकी समृद्धि का मुख्य कारण थी। जिसके जीते जागते नमूने प्रदेश के गांव-गांव में बनवाये चंदेली तालाब हैं जिनसे बुन्देलखण्ड की ऊबड़-खाबड़ धरती शताब्दियों से शस्य-श्यामला है और जिनसे आज भी हजारों एकड़ भूमि की सिंचाई होती है। इनमें संग्रहीत जल भूमिगत जल के स्तर को ऊँचा रखकर कुओं में भी जल की उपलब्धता बढ़ाकर कृषि में परोक्ष सहयोग करता है। यथा -

These lakes and tanks have proved to be of great value particularly during season of low rainfall. Apart from checking soil erosion, they raise the water lable in their neighbourhood."[8]

टीकमगढ़ सरोवरों, तालाबों एवं कुओं का जिला है। इसके ८६६ आबाद ग्रामों ५०४ हजार हेक्टर भौगोलिक क्षेत्रफल में ६६२ पुराने चंदेल कालीन तालाब हैं इतने कम क्षेत्र में तालाबों की यह अधिकता देश में अन्यत्र नहीं हैं। आज उनके बांधों मात्र का मूल्यांकन कई अरब रुपया होगा।[9]

डॉ. काशीप्रसाद त्रिपाठी के अनुसार मदन वर्मा ने टीकमगढ़ जिले में स्थित जतारा तहसील मुख्यालय तथा आहार (लड़वारी) में मदन सागर नामक तालावों का निर्माण कराया था।[10] ऐसी लोक मान्यता है कि अहार के निकट स्थित तहसील मुख्यालय बल्देवगढ़ के ग्वाल-सागर का निर्माण भी मदन वर्मा चंदेल ने ही कराया था। बल्देवगढ़ के प्राचीन नाम 'बाँध' नामक स्थान में ग्वाला जाति के लोग पशु-पालन से अपनी जीविका अर्जित करते थे। उन्होंने सदैव जल की उपलब्धता को ध्यान में रखते हुए एक छोटा सा मिट्टी का बाँध बना रखा था। इसी कारण यह स्थान बाँध नाम से अभिहित हुआ। मदनवर्मा ने इसी स्थान पर एक विशाल सरोवर बनवाकर उसे यहां के निवासियों के नाम पर ग्वाल-सागर नाम दिया।

'गुरिया' और 'गौर' नामक दो छोटी नदियों के प्रवाह को रोककर ग्वाल-सागर का निर्माण हुआ था। इस तालाब का जल ग्रहण क्षेत्र (Catchment Area) २८.८८ वर्ग किलोमीटर है। जल आगम २२५.६ मिलियन घन फुट (औसत वर्षा की स्थिति में) है, जबकि तालाब की कुल क्षमता ४८८ मिलियन घनफुट है। इसमें उपयोगी जल क्षमता ३६२ मिलियन घन फुट तथा अनुपयोगी जल की क्षमता १६२ मिलियन घनफुट है। बांध के क्षयवार की लम्बाई १२१ फुट बाँध की ऊँचाई २०.७२ मीटर जल द्वारों (सलूसों) की संख्या २ बांयी नट की नहर की लम्बाई ३.२० किलोमीटर तथा दायें तट की नहर की लम्बाई ५.११ किलोमीटर है, जिससे १४३७ हैक्टर भूमि में रवी तथा ३२४ हैक्टर में खरीफ की फसलों की सिंचाई होती है। इससे निकटवर्तीय १२ ग्रामों के कृषक लाभांवित होते हैं।

बुन्देलखण्ड में दो प्रकार के तालाबों के निर्माण की परम्परा रही है। एक स्वतंत्र अस्तित्व वाले तथा दूसरे प्रकार के वे तालाब जो एक दूसरे से सम्बद्ध रहते हैं। दूसरे प्रकार के तालाबों को 'साँकल' तालाब कहा जाता है। बल्देवगढ़ के ग्वाल सागर से सम्बद्ध जुगल सागर और जुगल सागर से सम्बद्ध धर्म सागर तालाब एक दूसरे से सम्बद्ध होने के कारण 'साँकल' तालाब की श्रेणी में आते हैं।

गुरिया और गौर नदियों के प्रवाह को रो कर बनाया गया ग्वाल सागर का अतिरिक्त जल प्रवाहित होकर जुगल सागर में जाता है। जुगल सागर के भर जाने पर उसका अतिरिक्त जल ध र्म सागर में संग्रहीत होता था। धर्म सागर का बांध तो अब टूटा पड़ा है। फलस्वरूप वर्षाकाल में ही इसमें थोड़ा बहुत जल संग्रहीत हो पाता है जो शरद काल में खाली हो जाता है।

जुगल सागर की जल ग्रहण क्षमता ११.२८ वर्ग किलोमीटर है। इसके बाँध की लम्बाई २१६.४५ मीटर है जो पूरा पक्का बना हुआ है। बांध के क्षयवार की लम्बाई ३६.६० मीटर तथा बाँध की ऊँचाई १२.५० मीटर है। इससे सिंचित होने वाली भूमि का क्षेत्रफल तथा अन्य सभी सांख्यिकी ग्वाल सागर में शामिल है। धर्मसागर का उपयोग तो अब कृषि कार्य में किया जा रहा हैं। इसी प्रकार सौतेला, सौतेली एवं गगनताल के नाम से जाने जाने वाले तालाबों के बांधों को तोड़कर उनमें खेती की जाने लगी है।

बल्देवगढ़ नगर से दस, पन्द्रह किलोमीटर की परिधि में मदन सागर (अहार लड़वारी) झिनगुंवा, लखेरा, हनुमंतपुरा खेरा, बलवंतपुरा, भितरवार एवं सरकनपुर आदि अनेक छोटे-बड़े तालाब हैं। इनसे २१ ग्रामों की दो हजार हेक्टर से अधिक भूमि की सिंचाई होती है। यह तालाब हमारे विकास हमारी प्रगति की रीढ़ है।

चंदेला शासक मदन वर्मा द्वारा निर्मित ग्वाल सागर के बाँध पर बुन्देला शासक विक्रमाजीत सिंह ओरछेश (१७७६-१८१७ ई.) द्वारा लगभग साढ़े छह सौ बरस बाद एक सुदृढ़ एवं भव्य दुर्ग का निर्माण कराया गया। दुर्ग के अन्दर कृष्ण के ज्येष्ठ भ्राता बलदाऊ जी के मंदिर का निर्माण कराकर दुर्ग को बल्देवगढ़ नाम दिया गया। कुछ समय बाद बल्देवगढ़ दुर्ग के नाम से ही नगर का नाम बाँध के स्थान पर बल्देवगढ़ हो गया। इसका बहुत सुन्दर वर्णन गजेटियर में किया गया है। यथा -

Baldeogarh - Headquarters of the tahsil of the same name situated in 24°46' N and 79°7' E. The village was formerly called Bandh, but after fort was constructed by Maharaja Vikramajit it was called by its present name of Baldeogarh. This fort is a very fine specimen of its class and one of the most picturesque in Bundelkhand. A large tank called Gwalsagar stand by the village.[12]

ग्वाल सागर के मध्य में संवत् १६९२ वि. (१६३५ ई.) मे निर्मित एक शिवालय स्थित था।[13] जो चार पांच वर्ष पूर्व ध्वस्त हो गया था। उसी स्थान पर नगर पंचायत बल्देवगढ़ के अध्यक्ष डॉ. द्वारिका प्रसाद मिश्रा द्वारा एक विशाल एवं भव्य शिवालय का निर्माण करा दिया गया है। ग्वाल सागर के मध्य निर्मित इस भव्य शिवालय की शोभा देखते ही बनती है।

तत्कालीन ओरछेश वीर सिंह जू देव द्वितीय (१६३०-४८ ई.) द्वारा बल्देवगढ़ के ग्वाल सागर की शोभा का वर्णन करते हुए दादा बनारसी दास जी चतुर्वेदी को दिनांक २९-१२-३३ को जो पत्र बल्देवगढ़ से लिखा गया था उसके कुछ अंश दृष्टव्य हैं। यथा - बल्देवगढ़ - २९-१२-३३

मैं आजकल यहाँ पर अपनी Annual X'mas shoot के लिये पड़ा हुआ हूँ। यह स्थान हमारी पांच तहसीलों में से एक है। बहुत सुन्दर स्थान है, दर्शनीय है। ग्वालसागर नाम का प्रशस्त और सुन्दर तालाव है। इसी के बन्द पर हमारे डेरे लगे हुए हैं। तालाब के दो ओर सघन वन हैं और तट पर दो तीन छोटे-छोटे गांव बसे हैं और तीसरी ओर बिल्कुल पानी से लगी हुई पर्वत श्रेणी हैं। बन्द के छोर से दो सौ गज की लम्बाई तक इस पर्वत की ठांटी पोठ ही चली गई है। इसी पोंठ के सहारे मेरा डेरा लगा हुआ है।

अरुणोदय की गुलाबी कोमल किरणें जल तरंगों से अठखेलियां करती हुई क्या कहूँ, कितनी भली मालूम होती हैं - 'गिरा अनयन नयन बिनु वानी।' किन्तु कुछ देर बाद प्रभाकर अपनी प्रचण्ड प्रतिभा से प्रशस्त पृथ्वी को प्रकाशित करते हुए प्रकट होते हैं। उनकी जाज्वलमान किरणें भी तरंगों से अठखेलियां करती हुई सुन्दर मालूम होती हैं पर प्रतिभा पूर्ण सौन्दर्य से। उनमें वह कोमल सौन्दर्य कहाँ? इधर आपको पत्र लिख रहा हूँ और उधर इसी बात को लेकर हृदय में अनेक प्रकार के भाव उठ रहे हैं। कह नहीं सकता कि मेरे इस वर्णन को पढ़कर आपके हृदय में भी कोई भाव उठेंगे या नहीं। सम्भव है ट्रिनीडाडी मित्र का किसी रूप में स्मरण हो आवे।'[14] .....

तालाब हमारी जीवन रेखा है यह हमारे विकास हमारी प्रगति की रीढ़ है किन्तु इनके रख-रखाव की ओर न तो इनके उपयोगकर्ताओं की रुचि है और न ही शासन-प्रणाली की। इसका परिणाम यह हो रहा है कि तालाबों में सिल्ट बढ़ती जा रही है। जिससे उनकी गहराई, जलग्रहण क्षमता एवं उपयोग, उपभोग की क्षमता निरंतर घटती जा रही है। यह शुभ लक्षण नहीं है। उत्तरोत्तर घटती जल की अनुपलब्धता अभी से दिखाई पड़ने लगी है। अस्तु यदि हमें अपनी जीवन की रक्षा करनी है तो इन जल स्रोतों की रक्षा का दायित्व भी संभालना होगा। जल संरक्षण के प्रति जागरूकता जन-जन में उत्पन्न करने की महती आवश्यकता है।

संदर्भ ग्रंथ -

१. आज भी कितने खरे हैं तालाब, ले. अनुपम मिश्र, प्रका. गांधी शांति प्रतिष्ठान नई दिल्ली पृ. ४६
२. मंगल प्रभात टीकमगढ़ दर्शन परिशिष्टांक सम्पादक शांति चन्द्र प्रका. ग्राम-भारतीय ग्वालियर, पृ. ८५
३. चंदेल और उनका राजत्व काल ले. केशवचन्द्र मिश्र प्रका. नागरी प्रचारिणी सभा काशी पृ. १७०
४. चंदेल और उनका राजत्व काल ले. कशेवचन्द्र मिश्र, प्रका. नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, पृ. १३
५. चंदेल कालीन बुन्देलखण्ड ले. डॉ. अयोध्या प्रसाद पाण्डेय प्रका. हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग पृ. १२-१३
६. The Early Rulers of Khajuraho by S.K. Mitra Pub. K.L. Mukhopadhyay Culcutta Page 180
७. चंदेल और उनका राजत्व काल पृ. २३०
८. Jhansi Gazetteer Page 7
९. टीकमगढ़ दर्शन, परिशिष्टांक पृ. ८५
१०. बुन्देलखण्ड का वृहद इतिहास लेखक डॉ. काशीप्रसाद त्रिपाठी प्रका. भारत भवन टीकमगढ़ पृ. १८
११. Eastern States (Bundelkhand) Gazetteer Page 72-73
१२. Orchha State Gazetteer P. 72-73
१३. ओरछा टाइम्स, टीकमगढ़ दिनांक २-९-७६
१४. ओरछेश स्मृति ग्रंथ सम्पादक एवं प्रका. पं. बनारसी दास चतुर्वेदी मुह. चौबान फीरोजाबाद पृ. २५-२६

- अवस्थी चौक, किले का मैदान, टीकमगढ़ (म.प्र.)

चैनुवां

– डॉ. एल.आर. सोनी 'सीकर'

मुलिया का ज़ानत ती कि वाके बारे-बारे से लरका 'रमुवाँ' और 'चैनुवां' को विलखतो छोड़ कें जा दुनियाँ सें जाने परि है। बड़ो रमुआँ तीनक बरस को हतो और छोटो चैनुआं बारा महीना को बस।

ऊ समय भारत पै अंग्ररेजन को राज हतो और गुलामी हावी हती। भौत दुष्ट हते अंग्रेज लोग और कोड़न सें, लातन सें, जूतन की ठोड़न सें, बड़ी बुरी तरह से मारत-पीटत ते।

हिन्दुअन खाँ कबहुँ-कबहुँ गोली सें भी उड़ाय देत ते। भौत बुरो शासन करत ते। भून देत ते। हिन्दुअन कों कोंनऊँ तरहा की मोहलत न मिलत ती। कबहुँ-कबहुँ तो मंदिर में पूजा करत बखत अंग्रेजन की मार खानी पड़ जात। एक बार तो ऐसो भयो कि गुपला दोऊ मोड़न को बाप उन्हें लैकें डॉक्टर खाँ दिखावे अस्पताल जा रयो हतो - रस्ते में अंग्रेजन के डर सें भगदड़ मच गई और तीनऊँ वा भीड़ में कुचर गये, वा तो इत्ती अच्छी रयो कि दुर्गा माई की किरपा सें, तनक-मनक हाँतन-पाँवन में छिल गयो। नेंक-नेंक खून आ गयो हतो। जासें-थोरे दिनन में घाव सूख गये, ठीक हुइ गये।

का करे, विचारो गुपला! बच्चन खाँ अकेलो की-कें भरोसे काँ, छोड़ दे। हाँ, इत्तो भगवान नें अच्छो करौ कि ऊके सबसें बड़ी लरका हरि को व्याव हुय गयो हतो और मुलिया मरते बखत बहू 'शांति' को इन बच्चन कों सौंप गई हती।

घर में सबरे पाँच जनें हते। बहूँ की उमर भी लरकोनी हती। नौ साल में ब्याव कर दयो तो। पैलां ऐसोई होत तो, हरी भी तेरा-चौदा सालक को रयो हतो। जो बाप के संगे चौथी पास करकें और पढ़ाई छोड़कें दुकान पै काम में हात-बँटाउत तो।

भौंतई गरीबी हती ऊ दिनन। रोजई पइसा की कड़की-सताउत ती। कबहुँ-कबहुं तौ एक बखत-सूखी रोटी बेझर की। (गोहूँ की नहीं जुड़पाती ती) चटनीं से या थोरी-पतरी दार सें या निबुआ के अचार सें घर में खावें को मिल पाती ती। आलू या तुरइया, कद्दू, लौकी की सब्जी तो हफ्ता में शायद दो बार बड़ी मुश्किल से बन पाती ती।

ढाई बरस तक घर में खेलत रये। तब मुहल्ला, परोस में सबके कहें सुनें से, दोऊ लरका, रमुंआ और चैनुवां खाँ नजदीकई बनो, पुरानो सरकारी, प्राईमरी स्कूल में संगे-संगे पढ़वे कों बिठा दओ हतो।

ऊ दिनन, समय में, अलिफ बे की तालीम चलत ती। छः महीना में 'अलिफ' पास करकें, 'बे' की कक्षा में आ पाउत ते। फिर 'बे' से पहली-दूसरी कक्षा के लानें आगे-आगे बढ़त जात ते।

हाँ! रमुँवा बड़ो हतो-सो ऊ 'अलिफ' में पास हुए गयो तो। जब कें 'चेनुआँ' मस्ती करत रयो खेल करत रयो, ऊधम करत रयो। साढ़े तीन साल की उमर में कछु जानऊँ नईं हतो, कि पढ़ाई लिखाई का होत है। सो फैल हुय गयो और घर आकें भौजी के पास खूब फूट-फूट कें रोओ और कहन लगो कि 'भइया पास हुय गये' हम फैल हुय गये, भइया को संग छूट गयो।''

ऊ आँगन में बैठो-बैठो रोय रहो तौ, तभई 'बापू' गुपला रोटी खाबे कों आय गयो और वाय-रोऊत देखकें पूँछन लगो कि काय-रोय रयो है। का हुय गयो, का कोउ नें मारो है, मोय साफ-साफ बताव।

तभई 'चैनुवां' तनक कम कछु औसुवा डार कें और हुसकी भर कें जा कहन लगो। 'मोय काऊ ने न मारो है, न पीटो है, मैं पढ़ाई में फैल हुय गओ और भइया हमसें आगे हुय गओ, हम पिछ्ल गये और फिर पढ़ने परिहै, तासें हम रोय रये हैं। अब तुम मारियो न और कहकें जोर-जोर से रोउन लगो।'' ऊ जमाने में 'बापू' ही सब अपने बाप सें कहत ते।

सो गुपला बापू पसीज गयो और छोटे मोड़ा - 'चैनुवां' को चुपाओ, पुचकारो और ऊ सें कही कि अब तुम खूब मेहनत सें पढ़ो खेलवो, कूदवो, मस्ती करवो तबई बंद कर के जा दो महीना की छुट्टीयन में हमाये पास सुबह-शाम काँच को छुट्टा, पट्टी, बोरका, सिलेट, वर्ती, किताब, कापी, बरस या सरकंडे की कलम, लेकें आ जायवे करी।

हम तुम्हें पढ़ा देव कर और तुम मन लगाकें याद करौ तो जरूरई-जल्दी अगली दर्जा में पहुँच जई हौ। और अच्छे नम्बरन सें पास हुइ जैहो।

भैया सरसुती ने बाय ज्ञान दे दयो और ऐसी पढ़ाई में लगन लगी कि बानें आठ रोज में ही 'अ' अनार से क्ष-त्र-ज्ञ तक ओलम पूरी सीख लई, बारह-खड़ी (क-का-कि-की-कु-कू-के-कै-को-कौ-कं-कः) खाँ को भी सीख लई, थोरी-थोरी किताब बाँचन लगो, अक्षर-मिला-मिला कें बोलन, लिखन लगो। कहे कौन? कि ऊने १०० तक गिनती और २५ तक पहाड़े भी रट लये।

बारे चैनुवाँ। स्कूल खुलतही पहुँच गयो और गुरुअन की किरपा हुय गई। दर्जा में सबसें अव्वल चलन लगो। मॉनीटर बन गओ। कां लों कयें - कि हर पर्चा में टॉप मारन लगो और ऊ को जू नतीजा भओ कि ऊ ने अपयें बड़े भइया 'रमुवां' को संग लै लऔ। एक दर्जा पीछें हतो, सो हरें-हरें इण्टर में संगे अय गयो। बड़ो भइया फैल हुय गओ।

'रमुवां' के फैल हुय जाने पर बापू गुपला नें ऊकी पढ़ाई बंद करा दई और कौनऊ छोटी-मोटी नौकरी के लानें 'इण्टरविऊ' दिवाउन लगो। हाल-जू भओ कि पशु अस्पताल की कम्पाण्डरी की ट्रेनिंग के लानें ऊको चुनाव हुइ गओ और ऊ ट्रेनिंग करकें 'बेटेरीनरी कम्पाउंडरी' की नौकरी पै पहुँच गओ।

पढ़ने में होशियार 'चेनुवां' को आगे की पढ़ाई के लाने कय दई। 'चैनुवां' ने इण्टर की परीक्षा फर्स्ट डिवीजन में पास करकें गांव को, बाप को, खुद को ऊँचो नाव कर दओ।

बी.एससी. (बायोलॉजी) में ऊने दाखिला भी ले लयो। फाइनल परीक्षा अच्छे नम्बरों में पास करके ऊ की डाक्टरी की (एम.बी.बी.एस.) पी.एम.टी. परीक्षा में भी बैठ गओ और मोहल्ला, गांव वालों, बापू की दुआयें, माँ सरसुती की किरपा सें, डॉक्टरी में पढ़वे खां पहुँच गयो।

साँचऊँ लरका होय तौ 'चैनुवाँ' जैसो होय। अति गरीबी में पलो, पढ़ो और जा पढ़ाई को ऊँचो खरचा कहाँ से आय। विचारो गुपला मोड़न के लानें गांव के जमींदारन नों जाऊत तो। कोउ पाँच सौ, कोऊ हजार, कोऊ थोड़े बहुत, कोऊ कपड़न के लाने कछु पइसा कोउ, खावें-पीवें को बिलावद घरू जरूरतों के लानें, गेहूं, दाल, चावल, घी, तेल (खेत पै पैदा भई, सरसोंरुसेंहुवां को पिराकें, निकलवा कें घरे ले आउत ते) कर देऊतते।

यानि काँ लों कयें कि ईश्वर नें गुपला के मोड़ा 'चैनुवां' के भागचेता दये और ऊ ५ साल की पढ़ाई करकें १ साल की डाक्टरी इंटर्नशिप करकें पूरी डॉक्टर चैनुवां की जगह (जू घर को पुकारी नाम हतो) पर 'डॉ. चैनपाल सिंह' (डॉ. सी.पी. सिंह) बी. एससी., एम.बी.बी.एस. बन गयो हतो। सब ऊ की जै-जैकार कर रये ते। चौतरफा नाम हुय गओ तो।

काऊ विद्वान ने जा बात सही कई है कि "जहाँ चाह है वहाँ राह है।"

- सीकर भवन, न्यू दतिया पब्लिक स्कूल,
ठंडी सड़क, दतिया (म.प्र.)

बुन्देली शब्द संपदा

— किशोरी लाल गुप्त

बुन्देली शब्द सरल, सहज और सुलभ होते हुए भी सशक्त और सुरम्य हैं। भाषायी रम्यता, मधुरता व मिठास के लिए तथा जीवन की चहक और मन की महक पाने के लिए बुन्देली शब्द एक सशक्त माध्यम होते हैं। यद्यपि ये शब्द विपुल मात्रा में थे और हैं पर आज व्यस्तता की अंध दौड़ व आधुनिकता (मार्डनशिप) की चपेट में ये मनभावन बुन्देली शब्द लुप्त होने की कगार पर हैं।

ऐसी स्थिति में उन्हें सहेजना, संरक्षण करना और यादों के झरोखे में रखना अनिवार्य हो गया है। ऐसे ही कुछ खड़ी बोली के शब्दों के बुन्देली पर्यायवाची शब्द हमने संकलित किये हैं। यथा-

दौड़ - गदबद, कुर्रू, पड़गर, भगले
टोकनी - टुकनियाँ, टिपरिया, छिटिया, छबुलिया, गुबरिया
टोकना - छबला, टिपरा, गुबरा
पत्थर - पथरा, लोड़, लुड़िया, बट्टा, बरेंड़ा, दत, लुड्ढा
देर - झेल, झेका, अबेर
जल्दी - उलायती, झट्ट, सपाटे, तुर्त
अधिक - जाँदा, बिलात, मुतके, बेजा, मुलक्को, एकाऊँ, इतोलेक, मनयायो
तकिया - मुड़ीसा, गेडुवा
जेब - खीसा, खलीता
थैला - खलता, झोला, झोलना
पेड़ - रूख, झाड़, बिरछा
थाली - टाठी, टठिया, थरा, थरिया
नारियल- गरी, खुरुरू, खोपरा
निकालना - झींकना, ऐंचना, तानना, खींचना, ओंजना
सबेरा - भुनसरा, भोर, अँधयाई
नाश्ता - कलेऊ, कलेवा
दर्पण - ऐना, शीशा, तकता
अनाज - अन्न, नाज, गल्लौ
सब्जी - साग-भाजी, तरकारी
गंजिया - गंजी, डेकची, तबेली, पतीली
कटोरी - कटुरिया, बिलिया, कचुल्ली
कटोरा - बेला, कचुल्ला
आटा - चून, कनक, पीसनो
लड़का - बेटा, टुरवा, मौड़ा, मुरा
लड़की - बिन्नू, बिन्ना, बेटी, मोड़ी, बिटिया,
शोरगुल - हल्ला, किलबिलाटो
कपड़ा - उन्ना, लत्ता, पटका
रजाई - खुआर, पल्ली
संध्या - शाम, लौलैया, अथौली, अथय, झुली परैं
हँसना - खिलखिलाना, ठिलठिलाना
क्रोध - गुस्सा, नाराज, खिसयाना, डाँटना
ऊधम - शैतानी, शरारती, चाल, हुड़दंग
लकड़ी - नकरिया, नक्कू
पक्षी - चरेरू, पखेरू
दीपक - दिया, समाई, डिब्बी
जूता - मुंडा, पनैयां
चर्म - खाल, चमड़ी
तौलिया - पिछौरिया, गमछा, स्वापी

बुन्देलखण्ड में जातियों की बसाहट पर प्रचलित बुन्देली शब्द -

लुधियात- लोधी समाज जहाँ ज्यादातर रहती है
बनियात - वणिक वर्ग जहां बसता है।
तमिरयाई - ताम्रकार जाति के लोग (परिवार) जहां रहते हैं।
पटैलयाई - पटेल परिवारों की बस्ती (मुहल्ला)
चमरौला-चमार जाति के लोग (परिवार) एक साथ जहां बसते हैं
कुमरौला-कुम्हार जाति के लोग (परिवार) एक साथ जहां बसते हैं
ढिमरौला -ढीमर जाति के लोग (परिवार) एक साथ जहां बसते हैं
सौंरयानों -सौंर (भील) जाति के लोग (परिवार) एक साथ जहां बसते हैं
बसुरयानो - बसोर जाति के लोग (परिवार) एक साथ जहां बसते हैं
ठकरासी- ठाकुर परिवारों की बसाहट
बमनोती - ब्राह्मण परिवारों की बसाहट

- पचोर वार्ड, शाहगढ़, जिला सागर (म.प्र.)

छतरपुर जिले के तालाब

— डॉ. के.पी. त्रिपाठी

छतरपुर जिला, पूर्वकालिक, रजवाड़ी रियासती क्षेत्र है। जिस की भौमिक संरचना बड़ी विचित्र रही है। दक्षिणी भूभाग पहाड़ी, पठारी, वनांचलीय क्षेत्र रहा है जिसमें बिजावर, किसनगढ़, बड़ामलहरा एवं बकस्वाहा परिक्षेत्र आता है। यह दक्षिणी क्षेत्र समुद्रतल से लगभग ६०० फुट ऊँचा है। मध्य का भूभाग भी कुछ ऊँचा है तो उत्तरी पश्चिमी एवं पूर्वी भाग ढालू है। दक्षिणी एवं मध्य का पूर्वी भाग पहाड़ी है, जो समुद्र तल से १२०० से १६०० फीट तक ऊँचे हैं। छतरपुर जिला की पश्चिमी सीमा पर काठन एवं धसान नदी प्रवाहित है तो पूर्वी सीमा पर केन नदी प्रवाहित है। केन नदी राजनगर के नारायणपुरा गांव के पास लगभग ७५ फीट ऊपर से गिरकर 'रनेह प्रपात' बनाये हुये है। सागर से महोबा तक छतरपुर जिले में से गुजरने वाली सड़क जिला के पानी को विभाजित करती है। वर्षाती धरातलीय जल सड़क के पश्चिमी भाग (वाम पर्श्व) का धरातलीय जल काठन एवं धसान में वह कर पहुँचता है, जबकि पूर्वी अंचल का (दाँयी ओर का) केन नदी में चला जाता है। सामान्यतः जिले का ढाल उत्तर पश्चिम की ओर होने से जिला का धरातलीय जल केन एवं धसान नदियों के द्वारा उत्तर दिशा को क्षेत्र के बाहर ही चला जाता है। जिला का पानी जिला से बाहर निकल जाने से जिला की भूमि प्यासी ही रही है। परिणामतः जिला की लगभग ४० प्रतिशत गरीब आबादी रोटी की तलाश में बुन्देलखण्ड क्षेत्र से बाहर भटकती फिरती रही है। छतरपुर जिले की बैंसकार एवं बरानों नदियों के अलावा अन्य सभी उरमल, भड़ार, कुटनी, सिंहारी, सैमरीं, बरैना, केल, वेसा, खोरार एवं कुटना जैसी छोटी नदियों का धरातलीय जल केन नदी में जा गिरता है।

पहाड़ों एवं टौरियों की पटारों में से वर्षाती धरातलीय जल के प्रवाह को रोकने के लिये तालाबों के निर्माण की योजना सर्वप्रथम चंदेल राजाओं ने तत्पश्चात बुन्देला, परमार एवं परिहार राजाओं एवं जागीरदारों ने बनाई थी। उनके पूर्व बुन्देलखण्ड का यह दक्षिणी भूभाग मात्र चरागाही वनाच्छादित अविकसित क्षेत्र था। जहाँ कहीं पानी ग्रीष्म ऋतु तक नदियों नालों में ठहरा रहा जाता था, वहाँ लोग अस्थाई तौर के बगर टपरे झोपड़ियाँ बना कर रहा करते थे। पशुपालन करते हुये खरीफ की वर्षा आधारित फसलें कोदों, धान, लठारा, समां, उर्द आदि पैदा कर अपना उदर पोषण कर लेते थे। महुआ, अचार, बेर; मकोरा, तैंदू आदि बनफल भी लोगों के जीवन के आधार थे। जहाँ का जल समाप्त हो जाता तो लोग अन्य जल स्रोत तलाश कर वहां बस जाते थे। तात्पर्य कि चंदेल युग के पूर्व दक्षिणी बुन्देलखण्ड के लोगों का जीवन घुमन्तू था। चंदेल राजाओं ने वर्षाती धरातलीय प्रवाहित होते जल को, पहाड़ियों, टौरियों की पठारों की नीची भूमि में पत्थर की बड़ी-बड़ी पैरीं सीढ़ी क्रम में आगे पीछे लगवा कर मध्य में मिट्टी भरवा कर सुदृढ़ चौड़े बांधों वाले तालाबों का निर्माण कराकर रोक दिया था। तालाबों में जल थमा तो क्षेत्र के लोगों का घुमन्तू जीवन थम गया। तालाबों के बांधों पर अथवा बाँधों के पूँछ पर पानी के आश्रय से बस्तियाँ बसीं। तालाबों के पीछे बहारूँ एवं टररेटे (खेती की भूमि) बने। क्षेत्र में तालाबों का जितना निर्माण होता गया, उतना अधिक विकास होता गया। विकास पानी पर निर्भर है, पानी है तो रोटी है। पानी रोटी है तो मानव का ठहराव है। मानव के ठहराव के लिये छतरपुर जिला में चंदेलों एवं बुन्देलों परमारों ने गाँव-गाँव में एक अथवा एक से अधिक एक दूसरे से जुड़े हुये तालाबों का निर्माण कराया था। जिनमें प्रमुख निम्न हैं -

छतरपुर नगर के तालाब - छतरपुर नगर की बस्ती सन् १७०७ ई. के बाद की यानी छत्रसाल बुन्देला के समय की ही है। नगर का विकास भी बुन्देल शासकों के समय से ही हुआ था। धसान नदी के पूर्व का डँगई भूभाग छत्रसाल बुन्देला ने अपने अधिकार में कर लिया था। उनकी राजधानी पन्ना थी। पन्ना नरेश हिन्दूपत (१७५८-७६ ई.) ने छतपुर में सुन्दर महल बनवाया था। कालान्तर में सरनेत सिंह राजनगर के निजी सचिव एवं प्रबंधक सोने जू पंवार ने सरनेत सिंह (पन्ना राजनगर) की मृत्योपरान्त केन-धसान के मध्य क्षेत्र पर अपना अधिकार कर छतरपुर को अपनी राजधानी बना लिया था। नगर विकास के साथ ही छतरपुर में जल सुविधा हेतु तालाबों का निर्माण हुआ था -

राव सागर तालाब - यह तालाब राव हिम्मत राय कायस्थ ने सन् १७३६ ई. में बनवाया था। तालाब पर संकट मोचन मंदिर भी राव साहब ने बनवाया था। इसी तालाब पर सन् १७६३ में महंत आधारदास ने धनुषधारी मंदिर बनवाया था।

प्रताप सागर तालाब - प्रताप सागर तालाब का निर्माण छतरपुर के राजा प्रताप सिंह ने सन् १८४६ ई. में करवाया था। तालाब के बांध पर प्रतापेश्वर मंदिर भी उन्हीं ने बनवाया था। महल के पास प्रताप सागर बांध एक मंदिर गौरीशंकर महादेव का है जो बूँदा हजूरन ने बनवाया था।

किशोर सागर तालाब - किशोर सागर तालाब भी राजा प्रताप सिंह ने बनवाया था। यह तालाब पन्ना के राजा किशोर सिंह के नाम से बनवाया गया था। राजा प्रताप सिंह (१८१६-५४), पन्ना राज्य के राजा किशोर सिंह के संरक्षक सन् १८३२ ई. में बनवाये गये थे।

ग्वाल मगरा तालाब - यह तालाब भी आधुनिक (परमार शासन कालीन) है, जो निस्तारी सुन्दर तालाब है। इन बड़े तालाबों के अलावा ५ रानी तलैया, रामबाग के पास एवं ६ साँतरी तलैया है।

खजुराहो के तालाब - खजुराहो (खजुरपुरी) चंदेल काल से भी पूर्व की बस्ती रही है। सन् ६४१ ई. में बौद्ध धर्म के मठों

विहारों के अवलोकनार्थ चीनी राजदूत ह्वेनच्याग यहां आया था। जिसने अपने भ्रमण विवरण में खजूरपुरी जुझौती (ची.ची.टू) ब्राह्मणों की राजधानी होने का उल्लेख किया है। वह लिखता है कि यहाँ ब्राह्मण धर्म के मंदिर अधिक हैं। खजुराहो में बौद्धमत एवं विहार हैं जो जतकारी क्षेत्र में हैं। ७वीं सदी में बस्ती कितनी कहाँ थी? इस पर इतिहास मौन है। यह निश्चित है कि जुझौती के पतन पश्चात् खजुराहो को चंदेल राजाओं ने अपनी धार्मिक सांस्कृतिक राजधानी बनाकर विश्व में अनूठे, अजीव, चमत्कारिक और कलात्मक मंदिर बनवाये थे, जो मानवीय भावनाओं और क्रियाओं की यथार्थता को दर्शाते हैं। यहाँ योग भक्ति एवं भोग के दर्शन एक साथ होते हैं। तीर्थ क्षेत्र होने से यहाँ निस्तारी जल प्रबंधन हेतु अनेक तालाबों का निर्माण चंदेल राजाओं ने कराया था।

निनौरा तालाब - खजुराहो के, तब के एक टोला बस्ती ननौरा में ननौरा तालाब बनवाया गया था, जो चंदेली है। ननौरा तालाब ३० हैक्टेयर भराव क्षेत्र का है। इसके पास ब्रह्मा मंदिर था। इसे खजुराहो तालाब भी कहते हैं वर्तमान में लोग ननौरा तालाब को पुरानी बस्ती का तालाब बतलाते हैं। कुछ लोग बतलाते हैं कि निनोरा तालाब के बांध पर ब्रह्मा मंदिर नहीं बल्कि शिव मंदिर था। सन् १३३५ ई. में निनौरा को इब्नबतूता यात्री ने देखा था, जो एक मील लम्बा था।

शिव सागर तालाब - इसे प्राचीन काल में बिलवा तड़ाग कहा जाता था, जिसे यशोवर्मन चंदेल राजा ने सन् १००२ ई. में बनवाया था। इसका वर्णन राजा धंग के दूसरे शिलालेख में है। यह मतंगेश्वर मंदिर के पास है जो १७ हैक्टेयर भराव क्षेत्र का था। वर्तमान में इसे शिवसागर कहते हैं।

खजुराहो परिक्षेत्र में एक छोटे प्रेम सागर के अतिरिक्त २०० बावड़ियाँ भी हैं।

ललगुवाँ सागर - यह चंदेली तालाब खजुराहो परिक्षेत्र के ललगुवाँ गांव में है। पास में शिवमंदिर है।

राजनगर के तालाब - राजनगर का पुराना नाम बमनी खेरा था। परन्तु कालान्तर में पन्ना राजघराने में राजगद्दी को लेकर विवाद हो गया था। राजा सरनेत सिंह जो क्रूर स्वभाव के थे जिस कारण उन्हें पन्ना के बजाय खजुराहो के पास बमनी खेरा में रखा गया था। उनकी सुरक्षा व्यवस्था एवं प्रबंधक के तौर पर सौनेजू पंवार की नियुक्ति की गई थी। राजा सरनेत सिंह के आने पर वमनीखेरा टौरिया पर किला बनवाया गया था। जिसका नाम राजनगर किला एवं बस्ती राजनगर नाम से प्रसिद्ध हो गई थी।

राजनगर बस्ती का क्रमिक विकास हुआ। सुन्दर बगीचे एवं भव्य मंदिर बनाए गए थे। उस समय राजनगर केन धसान के मध्य भूभाग का मुख्य प्रशासनिक स्थान था।

जलसैन सागर तालाब - किला के पूर्वी अंचल में चूना पत्थर के सुन्दर घाटों वाला, बस्ती से लगा मनोहर जलसैन सागर तलाब है। यह बड़ा तालाब है।

थनैरा तालाब - राजनगर में थनैरा दूसरा बड़ा तालाब है, जो खजुराहो महोबा मार्ग पर है। इनके अलावा ३ तालाब छोटे हैं।

ध्रुव सागर (धुवेला) मऊ महेवा - धुवेला तालाब का प्राचीन नाम ध्रुव सागर कहा जाता है। बुन्देलखण्ड गजैटियर के पृ. ५ (छत्तरपुर) पर उल्लिखित है कि मऊ सहानियां परिहार राज्य की राजधानी थी। जहां के राजा ध्रुव ने मऊ में अपने नाम पर ध्रुव सागर सरोवर का निर्माण कराया था। यह विशाल एवं मनोरम तालाब है। कालान्तर में मऊ को छत्रसल बुन्देला ने अपना ठिकाना बना लिया था। तालाब के बांध पर दार्शनयिक महल का निर्माण कराया था। वर्तमान में धुवेला बांध पर निर्मित धुबेला महल में छत्रसाल संग्रहालय स्थापित है।

जगत सागर सहानिया (मऊ) - नौगांव छतरपुर बस मार्ग पर दांयी ओर ग्राम मऊ बस्ती है तो सड़क के बांयी किनारे सहानियाँ ग्राम है। सहानियाँ में विशाल चंदेली तालाब है जिसके बांध पर शिवजी का चंदेली मठ है। छतरपुर के दीवान धनपत राय के प्रबंधक काल में सन् १८७८ ई. में इस तालाब से सिंचाई हेतु जल निकासी के लिये सलूस लगवा कर नहर निकाली गई थी।

इमलिया तालाब इमलिया - राजनगर क्षेत्र के इमलिया ग्राम में एक चंदेली तालाब है जिससे थोड़ी सी सिंचाई की जाती है। सामान्यतः यह जन निस्तारी तालाब है।

खौंप का तालाब - खौंप ग्राम छतरपुर नगर के उत्तर मे है। यहाँ चंदेली बड़ा तालाब है। इससे छतरपुर नगर को पेय जल प्रदाय किया जाता है।

हमा तालाब - छतरपुर नगर के उत्तरपूर्व में हमा ग्राम है। यहाँ चंदेली तालाब है। बांध पर देवी देवताओं के देवालय हैं।

द्रौड़सागर तालाब - छतरपुर से उत्तर पूर्व में दौनी ग्राम है, जो नौगांव महोबा मार्ग पर ३ किलोमीटर पूर्व को अन्दर है। यहां प्राचीन चंदेली तालाब द्रौड़ सागर है। बांध पर एक मंदिर है।

निवारी तालाब - छतरपुर महोबा बस मार्ग पर ग्राम निवारी में सुन्दर चन्देली तालाब है।

कुसुम सागर, बालवरण सागर - राजनगर क्षेत्र में है। कुसुम सागर से सौ हैक्टेयर एवं वरण सागर से ४५० हैक्टेयर भूमि की सिंचाई होती है। यह दौनों चंदेल युगीन तलाब हैं।

राईपुरा एवं भैंसखार तालाब - इन दोनों तलाबों से थोड़ी-थोड़ी सिंचाई होती है। दोनों चंदेलकालीन हैं।

अँधयारा गांव के तालाब - अँधयारा गाँव बिजावर परिक्षेत्र में है इस ग्राम के लोग तालाबों का ही पानी पीते हैं। अंधयारा गांव में नन्नों तालाब हैं। गांव के दांयी ओर गोविन्द सागर तालाब है गांव में संलग्न तीसरा बड़ा तालाब है। चौथा तालाब नया तालाब है।

ईश्वर सागर ईशानगर - इसे बैद का ताल और बदौरा का ताल भी कहा जाता है यह तालाब ग्राम के पूर्व में बैद के खेरे में है। यह तालाब जगतराज बुन्देला के समय का है। राजा जगतराज धसान नदी के किनारे की पहाड़ी पर बसे रामपुर कुर्रा में बने किले में रहा करते थे। एक बार जगतराज बीमार पड़े, जिनकी चिकित्सा यहां के वैद्य ने की थी। जब राजा जगतराज

स्वस्थ हो गये तो वैद्य से प्रसन्न हो गये। जिन्होंने रामपुर कुर्रा से पूर्व में ६ किलोमीटर की दूरी पर वैद्य के पुरवा में वैद्य के नाम से सुन्दर बड़ा 'वैद्य का ताल' बनवा दिया था। तालाब के बाँध पर ईश्वर का मंदिर भी जगतराज ने ही बनवाकर बस्ती का नाम 'ईश्वर नगर' रखा था। जिसे लोग ईशा नगर कहने लगे थे।

रामसागर तालाब लौड़ी - लौड़ी को लवपुरी कहा जाता था। यहाँ एक सुन्दर तालाब 'रामसागर टैंक' है जो चंदेलकालीन है। झूमर तालाब, झिन्ना तालाब, तुला तालाब, गोपी तालाब एवं झरकुआ आदि चंदेलयुगीन हैं।

अमखेरा तालाब - चंदेली तालाब है जिससे लगभग ४० एकड़ भूमि की सिंचाई होती है।

भिंटारिया तालाब बछौन - चंदेल काल में यह क्षेत्र बच्छराज के अधीन था। सर्व प्रथम इसे बछीनुस्तान (बनाफर) बोला जाता था। जिसे कालान्तर में बछौन कहा जाने लगा था। बछौन में सन् १३७६ ई. में राजा भिलमादेव ने एक बड़ा विशाल बांध बनवा कर बड़ा तालाब बनवाया था। जिसे भिटारिया तालाब कहा जाता है।

धौला तालाब पिपट, मोती सागर, बंसिया तालाब बंसिया, जोरन तालाब, बक्सोई तालाब एवं नंदगांव तालाब ऐसे तालाब हैं जिनसे १०० से २५० हैक्टेयर की सिंचाई होती है। यह सभी चंदेलकालीन तालाब हैं।

किशनगढ़ के तालाब -किशनगढ़ एक प्राचीन गांव है। यहां एक प्राचीन गौड़वानी किला है, जिसका बुन्देला काल में कैदखाने के रूप में उपयोग होता रहा। किशनगढ़ में प्राचीन दो सुन्दर तालाब हैं। प्रथम तालाब ग्राम के उत्तरी पार्श्व में है जबकि दूसरा तालाब किला से संलग्न नदी का बना हुआ है। इसके घाट बड़े सुन्दर बने हुए हैं।

बगहा तालाब - ग्राम बगहा में बगहा तालाब है। इस तालाब से लगभग ३५० हैक्टेयर कृषि भूमि सिंचित होती है।

लालपुर तालाब - छतरपुर के नजदीक लालपुर ग्राम है। यहां ग्राम नाम से एक बड़ा चंदेली तालाब है।

विजयसागर बारीगढ़ - यह महोबा के चंदेल राजा विजय वर्मा का बनवाया हुआ है। यह बड़ा विशाल तालाब है। इसके तीन ओर बारीगढ़ किला है। जिसे चंदेल काल में विजयगढ़ किला कहा जाता था। विजय सागर सरोवर को स्थानीय लोग कजलया तालाब भी कहते हैं।

कूंड़न तालाब देरी - देरी ग्राम छतरपुर नगर के पास ही है। यहाँ कूँड़न नाम का प्राचीन चंदेली तालाब है। तालाब के बांध पर श्री हनुमान जी की लेटी हुयी दर्शनीय प्रतिमा है।

उजरा तालाब उजरा - उजरा ग्राम छतरपुर से लगभग ३० कि.मी. दूरी पर है। यहां उजरा नामक चंदेली तालाब है। तालाब में कमल खूब पैदा होता है। इससे थोड़ी सी सिंचाई भी होती है।

हरिहर तालाब हरपालपुर - अलीपुर के राजा हरिसिंह ने अपने नाम पर हरपालपुर नगर बसाया था तथा कस्बा के लोगों के निस्तार हेतु हरिहर तालाब का निर्माण कराया था। वर्तमान में देखभाल एवं सफाई मरम्मत के अभाव में यह कचरा से पट रहा है।

गोरा सागर गोरा - छतरपुर के पास ग्राम गोरा में प्राचीन बड़ा चंदेली तालाब है। इससे लगभग एक हजार हैक्टेयर की रबी की फसल की सिंचाई की जाती है।

भगवां गाँव में भगवा तालाब, घुवारा में गौड़ कालीन तालाब, रगौली में बड़ा चंदेली तालाब, पथरगुवां एवं कसार में चंदेली तालाब है। जो सुन्दर एवं बड़े तालाब हैं।

नैनागिरि का तालाब - बकस्वाहा ग्राम से २४ किलोमीटर दक्षिण में नैनागिरि पहाड़ है। पहाड़ के शीर्ष पर पत्थर काट कर एक सुन्दर सरोवर का निर्माण चंदेलकाल में हुआ है। तालाब के मध्य जैनमत के मंदिर हैं। यह दर्शनीय स्थल है।

बिजावर नगर के तालाब -बिजावर बुन्देलों के पूर्व गौड़ शासकों का क्षेत्र था। जहाँ विजयशाह गौड़ राजा था। उसी विजयशाह का बसाया हुआ बिजावर कस्बा है। कालान्तर में यह छत्रसाल बुन्देला के प्रपोत्र जगतराज जैतपुर के पौत्र एवं पहाड़ सिंह के पुत्र वीरसिंह को स्वतंत्र राज्य के रूप में दिया गया था। उन्हीं वीर सिंह ने किला बिजावर का निर्माण कराकर किला के पूर्वी भाग में किला से संलग्न विशाल एवं सुन्दर तालाब का निर्माण कराया था। जिसका नाम राजा सागर है। तालाब के मध्य में महादेव जी की मढ़िया है, जिस कारण इसे महादेव सागर भी कहते हैं।

एक दूसरा तालाब कृष्ण सागर तालाब है जो बिजावर नगर के पश्चिमी भाग में है। यह निस्तारी तालाब तो रहा ही है, वर्तमान में कृष्ण सागर के पानी से २०० हैक्टेयर कृषि भूमि की सिंचाई भी होती है।

इनके अतिरिक्त रमना तालाब, पठार तालाब एवं नया तालाब बिजावर के नजदीकी संलग्न जंगली भूभाग में हैं।

महाराज गंज के तालाब - महाराजगंज, बड़ामलहरा से ५ कि.मी. की दूरी पर पूर्व दिशा में है। यहाँ पन्ना के राजा हिन्दूपत ने एक छोटा किला एवं किला के पूर्वी पार्श्व में संलग्न तालाब बनवाया था। एक दूसरा तालाब महाराजगंज से आगे खटोला मार्ग पर जंगल में है।

खटोला के तालाब - खटोला महाराजगंज से लगा हुआ स्थल है। आज यह वीरान है। गौंड़वाना शासन काल में यह सूरजशाह गौड़ राजा की राजधानी था। राजाबाबू पहाड़ पर सूरजशाह गौड़ की राजधानी थी। राजाबाबू पहड़ पर सूरजशाह गौड़ के किला के भग्नावशेष खड़े हैं। खटोला नगर के चारों ओर ७ तालाब थे जो नगर परकोटा के अन्दर थे। राजाबाबू पहाड़ की पटार में किले के उत्तरी भाग में ३ तालाब थे जो फूट चुके हैं। शेष विलाई तालाब, नया तालाब, गढ़ी तलैया एवं कनकुआ तालाब अभी भी दृष्टव्य हैं।

सटई तालाब - सटई ग्राम बिजावर छतरपुर बस मार्ग पर है। यहां एक सुन्दर चन्देल कालीन तालाब है। इसमें सिंघाड़ा पैदा होता है। तालाब से कुछ सिंचाई भी की जाती है।

गढ़ीमलहरा के तालाब - गढ़ीमलहरा छतरपुर-महोबा बस मार्ग पर प्राचीन प्रसिद्ध गांव रहा है। यहां प्राचीन चंदेलकालीन

एक विशाल तालाब है। इसके अलावा यहाँ दो छोटे तालाब भी हैं। गढ़ीमलहरा गाँव के पूर्व दिशा में महाराजपुर गाँव है, वहाँ भी विशाल एवं मनोरम चन्देली तालाब है। यहाँ पान की खेती अधिक होती है। इनके अतिरिक्त हिम्मतपुरा, बूढ़ाबाँध, अतरार, राईपुरा, बूदौर गांवों में सुन्दर तालाब है। बरोही गांव में भवानी सागर तालाब है।

बसारी तालाब - बसारी प्राचीन ग्राम है। यहाँ चन्देल कालीन सुन्दर सरोवर है। इमलया तालाब, हरसागर तालाब, गढ़ीतालाब, तथा मड़तला चारों तालाब आज भी है। इनका जल निर्मल रहता है। तालाब में नौकायन भी हो सकता है। यह साफ सुथरा सरोवर है। पर्यटन गांव बसारी का यह एक आकर्षण है।

बैनी सागर तालाब बैनीगंज - बमींठा के पश्चिमी पार्श्व में बैनीगंज के पास बैनीसागर बांध सन् १६७४ में बनवाया गया था जिससे क्षेत्र की ४१६८ हेक्टेयर कृषि भूमि की सिंचाई होती है।

राजगढ़ के तालाब - छतरपुर-पन्ना बस मार्ग पर स्थित चन्द्रनगर कस्बा के दक्षिणी पार्श्व में मनियागढ़ पर्वत की तलहटी में राजगढ़ पैलेस स्थित है। पहले यहाँ अच्छी सुन्दर बस्ती थी। अब यहाँ की बस्ती के खंडहर ही हैं। यदि कुछ शेष हैं तो पन्ना के राजा हिन्दूपत बुन्देला का बनवाया हुआ आलीशान महल है। और परिसर में निर्मित सुन्दर सरोवर है। यहां के सरोवरों में तकिया तालाब, भवानी तालाब एवं कजलया मुख्य हैं। जो पर्यटकों को आकर्षित करते रहते हैं। मनियागढ़ पहाड़ के ऊपर भी चंदेली किले के अन्दर पहाड़ का पत्थर काट कर निर्मित किये गये तालाब हैं। पहाड़ के दक्षिणी एवं पश्चिमी भागों में भी चन्देलकालीन तालाब हैं।

उपर्युक्त तालाबों के अलावा भी चन्देलकालीन प्राचीन बस्तियों में सुन्दर सरोवर रहे हैं। जिनकें नाम हैं :- सड़वा तालाब, चौपरा तालाब, भीमकुण्ड तालाब, कांगड़ा तालाब, शायगढ़ तालाब, ग्योलारा तालाब, बक्सोई तालाब, महरकुंआ तालाब, पनिया तालाब, पनवारी तालाब, बंधा का लक्ष्मण सागर, दलीपुर तालाब, बमनौरा तालाब, कम्मोदपुरा तालाब, मलगुवाँ तालाब, सारनी तालाब, पुर का तालाब, बड़ातालाब बड़ामलहरा, घुवारा तालाब, अनगौर तालाब, झींझन तालाब, बगौता तालाब, मातगुवां तालाब, ठकुर्रा तालाब, बकतला तालाब, ओटापुरवा तालाब, बनयारा तालाब, मछरा तालाब, रायचूरा तालाब, लामटी तालाब, मोतीगढ़ तालाब, दिलारी तालाब, सिद्धसागर तालाब, फुटवारी तालाब, कीरतसागर बृजपुर, बरमसागर तालाब रामनगर तालाब, भूरेपुरा तालाब, खड्डी तालाब, कितपुरा तालाब, चुरयारी तालाब, पलटा तालाब, परेई तालाब, पहरा में २ तालाब, चौवारा तालाब, गुढ़ का तालाब, भगवारा तालाब, चंदला तालाब, मनौरा का तालाब, सैंधपा तालाब, गकरया तालाब, हर्षनगर तालाब, दिलारी तालाब, पड़रिया तालाब, नयागाँव तालाब, लखैरा तालाब, थरा तालाब, तुलां तालाब, गोपी तालाब, खर्रोही तालाब एवं मड़देवरा तालाब हैं।

छतरपुर जिला पूर्वकालीन छतरपुर, बिजावर, अलीपुर, नैगुवाँ, रिवई लुगासी, गर्रौली, गौरिहार, चरखारी (ईशानगर) और घुवारा मलहरा (पन्ना) राज्यों का एक कम्पाउन्ड क्षेत्र है। जिला के सिंचाई विभाग रजिस्टर में कुल ८४-८५ तालाब पंजीबद्ध हैं। जबकि ग्राम पंचायत बार चंदेली, बुन्देली राजाओं के समय बने छोटे बड़े तालाबों की सूची बनाई जाय तो तालाबों की संख्या ३०० से अधिक ही है। कुछ फूट गये। कुछ मिट्टी से पट गये तो कुछ चलतेदारों ने अपने निजी हक में करा लिये। पुराने तालाबों की उम्र लगभग ८०० से १००० वर्ष हो चुकी है। उनमें गौंड़र भर चुकी है। बाँधों से रिसन होती है। मरम्मत कागजों पर हो जाती हैं। गाँव का तालाब, गांव समाज का प्राण होता है। गांव का अमृत कुण्ड होता है। व्यक्ति अपने घर के चुआना सुधार लेता परन्तु अपने तालाब की मिटती दशा को क्यों नहीं देखता? गांव वाले सामूहिक तौर पर उसका गहरीकरण, दुरुस्तीकरण क्यों नहीं कर लेते? तालाब में पानी नहीं रहेगा अथवा कम भरेगा तो रोटी की तलास में गांव वाले ही गांव छोड़कर भागेंगे। सरकारें और कर्मचारी कभी भी नहीं भागेंगे। आजादी के इस युग में जल संग्रहण संरक्षण गांव वाले ही करें। यह पुण्य का कार्य है। किसान भी जागरूक रहें एवं पानी होते समय, पानी की बर्वादी नहीं होंने दें। सिंचाई करते समय, पानी को खेतों से बाहर नालों में न बहा दें।

छतरपुर जिला के प्रभावी नेता और जनता पानी को सहेज कर अपने क्षेत्र में बनाये रखने को पहले भी सचेत नहीं जाने गये रहे। सन् १६१२ ई. में यूनाइटिड प्रौबिन्स की ब्रिटिश सरकार ने छतरपुर-पन्ना सीमा पर प्रवाहित केन नदी के गँगऊ स्थान पर बाँध बनाया और बांध के पानी का लाभ बांदा जिला के किसानों को लाभ दिलाया था। सन् १६७८ ई. में अर्थात् जब जिला के लोग स्वतंत्र थे। अपना भला-बुरा के लिए अपुन ही जिम्मेदार थे तब उत्तरप्रदेश सरकार ने बन्ने नदी पर रनगुवाँ गांव (छतरपुर) में रनगुवाँ बांध बना लिया था। भूमि छतरपुर की, नदी छतरपुर की, पानी छतरपुर की भूमि पर संग्रहीत हुआ, परन्तु लाभ उत्तरप्रदेश के किसानों को हुआ। हमारा पानी परन्तु हम प्यासे ही रहे।

बुन्देलखण्ड जो विंध्यांचल का शिखर भूभाग, ऊँट की कूबड़ पर बसा जनपद है। जो वर्षा होती रही है, उसका धरातलीय जल ऊँचाई से प्रवाहित होकर नदियों, नालों के द्वारा पुराने तालाबों में इकट्ठा हो जाता रहा। लेकिन अब वर्षा कम या अनियमित होने लगी। कारण कि वर्षा लाने वाले जंगलों के ऊँचे लम्बे पेड़ (एन्टीना) हम सबने नष्ट कर दिये। जिससे नियमित भारी पानी कम ही बरसने लगा है। अस्तु पानी का संकट बढ़ेगा ही।

बुन्देलखण्ड में भविष्य में पानी के संकट को मद्देनजर रखते हुए 'नदी जोड़ो' योजना के क्रियान्वयन की प्रक्रिया चालू की गई है। उक्त 'नदी जोड़ो' योजना भी छतरपुर जिला के उत्तरी ढालू भूभाग से क्रियान्वित की जा रही है। जिसका नाम है 'केन बेतवा लिंक प्लान'।

बुन्देलखण्ड का ढाल दक्षिण पश्चिम से उत्तर पूर्व को है। दक्षिण पश्चिम से सम्पूर्ण धरातलीय वर्षाती जल उत्तर को प्रभावित होता है। केन नदी बछौन के आसपास से लौड़ी परगने होकर, महोबा के दक्षिणी भाग से एक बड़ी नहर द्वारा बेतवा नदी से लिंक होगी। तात्पर्य कि यह लिंकिंग छतरपुर जिले के निचले उत्तरी

भूभाग से होने जा रही है। कहा जा रहा है और जनता किसानों को बतलाया जा रहा है कि इस लिंकिंग से पूरे दक्षिणी बुन्देलखण्ड (छतरपुर-टीकमगढ़ जिला) की भूमि सिंचित होगी। शायद संभव हो जाय। जबकि मैं इसे एक बड़ी अफवाह मानता हूँ। क्योंकि इससे केवल यू.पी. के महोबा-बांदा क्षेत्र को ही लाभ मिलेगा। हाँ वर्तमान में इंजीनियरिंग की अजीब-अजीब तरकीबें चल पड़ी हैं। जिनसे गंगा वंगाल की खाड़ी से उल्टे ऊँचे हिमालय पर चढ़ा दी जाय। शायद पैर (चरण) धोने का जल सिर (शीर्ष) पर पहुँच कर शरीर को स्नान कराने लगे। परन्तु मैं कहता हूँ कि वर्तमान केन बेतवा लिंकिंग से छतरपुर, बिजावर, बड़ामलहरा, बल्देवगढ़, टीकमगढ़, निवाड़ी, जतारा को पानी नहीं दिया जा सकेगा। हां - बेतवा-केन लिंक करना है तो चंदेरी के राजघाट बांध के बाम भाग से एक बड़ी नहर ललितपुर महरौनी, टीकमगढ़ के पूर्वी अंचल से गुलगंज-बिजावर अंचल के सटई क्षेत्र के बसारी के पूर्वी अंचल से बरियारपुर पर केन नदी से लिंक कर दिया जाय। ताकि बेतवा की बाढ़ का अतिरिक्त जल राजघाट बांध से नहर द्वारा केन में, मध यक्षेत्र के तालाबों नालों को भरता हुआ जा पहुँचेगा। पानी ऊपरी भाग से नीचे ढाल की ओर भागता ही है। ऐसा न होने से बुन्देलखण्ड हमेशा सूखा अकाल भोगता रहेगा। बेतवा-केन लिंकिंग चंदेरी से बरयारपुर ही क्षेत्र के हित में रहेगी। इसी से क्षेत्र के लोगों की रोटी रोजी की समस्या हल होगी।

– भारत भवन, पुरानी टेहरी, टीकमगढ़卐

बुन्देलखण्ड के भूले बिसरे कवि अब्दुल रहमान मंजर

– सी.एम. वर्मा

गौरवर्ण, ऊँचे कद काठी का आकर्षक व्यक्तित्व ढीला पायजामा, अचकन, सफेद गोल टोपी तथा देशी जूते यही बाहरी रूप था हमारे मौलवी अब्दुल रहमान मंजर साहब का। बाहरी स्वरूप तो आकर्षक था ही आन्तरिक स्वरूप तो और अधिक आकर्षक था। हृदय से कोमल पर अपने सिद्धान्तों का पालन करने में कठोर प्रकृति के व्यक्ति थे। वह अपने धर्म के कट्टर अनुयायी थे पांच बार नमाज पढ़ना तथा अन्य सामाजिक कार्यों में बढ़-चढ़कर भाग लेना उनके स्वभाव में शामिल था। उनमें साम्प्रदायिकता किंचित नहीं थी वह एक देशभक्त मुसलमान थे तथा शिक्षण की अवधि में देश सेवा करने के लिए अपने विद्यार्थियों को सदैव प्रेरित करते रहते थे।

टीकमगढ़ के अन्तिम महाराजा वीरसिंह देव हिन्दी, बुन्देली भाषा के अनन्य भक्त थे, उनका मौलवी साहब पर बहुत स्नेह था। वह उनके राजकवियों में शामिल थे। उन्हीं के प्रभाव से वह उर्दू व फारसी के साथ ही साथ हिन्दी में भी रचनाएँ किया करते थे। जब कवि लोग राजाओं की स्तुति में श्रृंगारिक कविताएं सुनाकर अपने को धन्य मानते थे उस समय मंजर साहब दीन दुखियों, मजदूरों की यथार्थ अनुभूतियों का वर्णन किया करते थे। वह एक प्रगतिवादी शायर थे। उनकी रचनाओं में यथार्थ अनुभूतियों का कलात्मक चित्रण है। प्रगतिवादी विचार और तीक्ष्ण व्यंग्य भी उनकी रचनाओं में देखने को मिलता है।

मंजर सा. का जन्म सन् १८७४ में अमरोहा जिला मुरादाबाद वर्तमान के उत्तरप्रदेश में एक साधारण मुस्लिम परिवार में हुआ था। सन् १९१५ में वे टीकमगढ़ के सवाई महेन्द्र हाईस्कूल में पर्सियन भाषा के शिक्षक होकर आए थे लेकिन टीकमगढ़ का अपने अनुकूल शैक्षणिक और साहित्यिक वातावरण तथा तत्कालीन महाराजा सा. का स्नेह पाकर वह टीकमगढ़ के ही होकर रह गए थे। महाराजा सा. के निकट सम्पर्क में आने के कारण ही वह उर्दू, फारसी के अतिरिक्त हिन्दी भाषा की सेवा करने के लिए उन्मुख हुए। उन्होंने अनेक ग्रन्थों की रचना की थी। उन्होंने उमर खय्याम की रुबाइयों का हिन्दी कविता में अनुवाद भी किया था।

मंजर सा. अपने विद्यार्थियों में बहुत लोकप्रिय थे। वह हमारे शासकीय छात्रावास के बहुत समय तक अधीक्षक भी रहे थे। पाकिस्तान बनने के बाद जब उनके सभी रिश्तेदार पाकिस्तान चले गए तो उन्हें भी विवश होकर टीकमगढ़ छोड़कर पाकिस्तान जाना पड़ा था।

मजदूरों की विपन्न अवस्थाओं का उनके द्वारा किया गया चित्रण देखिए -

दुर्दशा मजदूर की मजदूर होकर देखिए
भूख में दो दिन का बोझा सर पै ढोके देखिए।
चलते चलते रास्तों में खाके ठोकर देखिए।
खूने बाजू से फटा दामन, भिगोकर देखिए।
देखते हँसते हुए लोगों को रोकर देखिए।।
दुर्दशा मजदूर की मजदूर होकर देखिए।।

जब जमाने में खुशी की छाई हो हरसूँ बहार।
ईद को दिन हो या दशहरे दीवाली का त्योहार।
भूखे बच्चे करते हों जब रोटी रोटी की पुकार।
गेहूँ चावल की जगह मटकी में चोकर देखिए।
दुर्दशा मजदूर की मजदूर होकर देखिए।।

कोठियों, बँगलों से नेता जी जरा मुख मोड़कर।
सेठ साहूकारों की जेबों से रिश्ता तोड़कर।
मोटे मोटे नर्म गद्दों की मसहरी छोड़कर।
मिट्टी पर इकरात नंगी पीठ सोकर देखिए।।
दुर्दशा मजदूर की मजदूर होकर देखिए।।

नंगे भूखों की जवाँ तक आ गई जाने हर्जी।
आपको अपने बजट से ही फुरसत नहीं।।
आह इनकी ले न डूबे इस हुकूमत को कहीं।
इन गरीबों के लिए करना हो जो करके देखिए।
दुर्दशा मजदूर की मजदूर होकर देखिए।।

– फौलादी कलम मार्ग, चेतगिरि कॉलोनी, छतरपुर卐

बुन्देली लोकगीतों में नारी का स्वरूप

— डॉ. (श्रीमती) गायत्री वाजपेयी

बुन्देली लोकसंस्कृति सामुहिकता एवं समन्वय की संस्कृति है। यहाँ कोई भी कार्य, पर्व, त्यौहार एवं उत्सव अकेले नहीं अपितु मिलजुलकर सम्पन्न होते हैं। वैसे भी बुन्देली समाज में प्रारम्भ से ही संयुक्त परिवार की प्रथा रही है। जहां लड़की को बड़े बुजुर्गों, छोटे भाई बहनों आदि के साथ रहना पड़ता है। बाल्यावस्था से ही वह सभी के सानिध्य एवं साहचर्य में रहकर परिजनों के साथ यथायोग्य व्यवहार करना सीखती है। बड़ों के प्रति सम्मान एवं छोटों के प्रति स्नेहपूर्ण व्यवहार की सहज शिक्षा उसे बाल्यकाल से ही दी जाती है। बेटी पराया धन है, उसे पराये घर जाना है, यह मानकर उसे अधिक सहनशील, कार्य कुशल एवं स्फूर्तिमय बनने की प्रेरणा दी जाती है। मातृगृह में बेटी सुख एवं स्वतंत्रता का अनुभव करती है अपनी सखी सहेलियों के साथ तरह-तरह के खेल खेलती है उसके प्रमुख खेल गुड़ियां खेलना, झूला झूलना, नौरता खेलना आदि होते हैं। इन समस्त खेलों के माध्यम से उसे गृहस्थ जीवन की शिक्षा सहज ही प्राप्त हो जाती है। झूला झूलना लड़कियों के मनोरंजन का प्रमुख साधन है। सावन का महीना लगते ही पेड़ों पर झूले पड़ जाते हैं। सखियों के साथ हास-परिहास करते हुए लड़कियां झूला झूलती हैं। वहां भी उनकी भावनाएं मुखर रूप में गीत के माध्यम से अभिव्यक्ति पाती हैं -

एक चना दो देउलरी, माई साहुन आए
कौन सी गुइयाँ दूर री, माई साहुन आए
राम कुँवर सी गुइयाँ दूर री, माइ साहुन आए
वीरन लिवौआ जांय री, माई साहुन आए
आगे नौआ पीछूं बमना, बीच बहिन की पालकी
एक चना दो देउलरी, माई साहुन आए।

गीत में निहित केन्द्रीय भाव नारी की दोहरी भूमिका की ओर संकेत करता है। जिस प्रकार एक चना दो हिस्सों में बंटकर देवल बन जाता है। वैसे ही नारी जीवन भी दो हिस्सों में विभक्त नैहर और पीहर की विविध भूमिकाओं को निभाते हुए पूर्णतः को प्राप्त होता है।

क्वांर मांस में अविवाहित कन्यायें नौरता खेलती हैं, गीत गाती हैं। अति कलात्मक ढंग से चौकादि पूरती हैं तथा ढिरिया लेकर गीत गाते हुए घर-घर जाती हैं। गीत की पंक्तियों में व्यक्त भाव मातृपक्ष के प्रति कन्या के असीम स्नेह को ध्वनित करता है। बालिका पिता से चुनरी रंगने का हठ करती हैं -

ऊँचे डगर की पीपरी नारे सुअटा
जिन तरैं लगे हैं बाजार।
बिरजी गौरा बेटी बाप से नारे सुअटा
राजा बाबुल चुनरी रंगाव।

बालिका के हृदय में माता-पिता के प्रति प्रेम का अथाह सागर हिलौरे ले रहा है। यही कारण है कि यह चुनरी में ऐसी ही छमेंट चाहती है जिसमें उसका मायका अंकित हो। जिसका वर्णन गीत में इस प्रकार हुआ है -

ढिग ढिग लिखियों मोरो मायको, नारे सुअटा
अंचरन माई के बोल।
माई बैठी मंझधरा नारे सुअटा, बाबुल धौर दुआर।
चौकन चौकी चौखुटी नारे सुअटा, चौकी के चारऊँ खूंट।
चौकन बैठ नैया डेढ़ सौ नारे सुअटा,
जिनमें भैया चंदा सूरज मोरे कौन?
लाल पाग कारी ढाल के नारे सुअटा,
लीली घुड़ल असवार।
चंदा सूरज दोऊ भैया ठांढ़े नारे सुअटा,
पकरैं लौंग की डार।
लीली जो बांधो भैया लौंग से नारे सुअटा,
घरियक घामो बिलमाव
हम कैसे घामो बिलमावे नारे सुअटा,
जिनकी बहिन परदेश।
घामो बिलमावे मोरे बाबुल नारे सुअटा,
जिनने दई परदेश।

नौरता गीतों में पूरा नारी मनोविज्ञान अभिव्यक्ति पाता है। किस प्रकार नारी मायके की सुख समृद्धि एवं कुलवृद्धि की शुभेच्छा रखती है? उसके अन्तःकरण से सदैव यही आशीष निकलती है -

तुम जिन जननें भौजी मांगने नारे सुअटा, घर घर देत असीस।
जिते अक्षत भौजी भौं परे नारे सुअटा, उत्ते दुलैया तोरे पूत।
दूदन पूतन भौजी घर भरै, नारे सुअटा, बहुअन भरै चटसार।
लरका खावै घियापुरी नारे सुअटा, बउएँ कच्चुलन दूद।

इसी प्रकार एक गीत में बहिन भाई के हितार्थ बदरिया रानी से वीरन के देश में बरसने का निहोरा करती है -

बदरिया रानी बरसो वीरन के देश।
काना से आई कारी बदरिया, काना बरस गये मेघ।
अग्गम दिसा से आई बदरिया, पच्छिम बरस गये मेघ।

नारी अपने सौन्दर्य एवं साज श्रृंगार के प्रति सदैव सजग रहती है। आभूषणों के प्रति उसे विशेष लगाव होता है। जिसका उल्लेख नौरता के "झांई देखने दिखाने" वाले गीतों में होता है -

अपनी गौर की झांई देखौ।
अपनी गौर की झांई देखो काहनैं पहिरैं देखौं।
कान तरूकला देखने, नाक नथुनियां देखौ।
हाथ ककनवां देखौ, पांव पैजनिया देखौ।

यह सौन्दर्य श्रृंगार की चाहना केवल अपने लिए ही नहीं है वरन् सभी के लिए है -

गौरा तोरो सिंगार, मैया मोये दै दियो।
गौरा तोरो सिंगार, सबरी बिटियन खों दियो।

भारतीय समाज में नारी को बहू के रूप में अनेक अत्याचार सहने पड़ते हैं। एक बालिका के रूप में वह खेल खेल में ही बालसुलभ चंचलता के साथ इस अन्याय के विरोध में अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करती है -

तिल के फूल तिली के दाने चंदा ऊँगे बड़े भुनसारे।
ऊँगन न होय बारो चंदा, हम घर होय लिपना पुतना।
सास न होय देहे गारियन, ननद न होय कोसे बिरना।
माई को कहो न करिहों, बाबुल को कहो न करिहनें।
पानी की खेप न धरिहों, गोबर की हेल न धरिहों।
चकिया को डड़ा न पकरिहों, तबा पै कुचैया न धरिहौं।
बासी को कौर न दैहों, ताती होय सो लप लप खैहों।

माँ भी बेटी की इस बाल सुलभ चंचलता का उत्तर देते हुए कहती हैं -

खेल लो बेटी खेल लो, माई बाबुल के राज।
जब दूर जैहो बेटी सासरे, सास न खेलन देय।
रात पिसाबे, पीसनो, दिवस गुबर की हेल।
दूरा कें देसा दई है गौरा बेटी, दई है सबई बेटी।

नारी को इन सब समस्याओं से जूझना ही पड़ता है, परन्तु वह अपनी इस संघर्ष यात्रा में, टूटती नहीं है, वरन बड़ी मजबूती से अपने भाग्य के सहारे परिस्थितियों के साथ कदमताल करते हुए जीवन पथ पर बढ़ती जाती है -

कुँअला होई तो पाटिये, उर करम न पाटे जांय।
कगदा होय तो बांचियै, उर करम न बांचे जांय।।

माँ की ममता की छांव में हंसती खेलती बाल सुलभ क्रीड़ायें करती बालिका सयानी हो जाती है। माता पिता उसके भविष्य के लिए चिंतित हो उठते हैं। सुयोग्य वर और श्रेष्ठ घर की चिन्ता उन्हें सताने लगती है -

रंग महलिया माँ दियना जलत है, दियना जले सारी रात।
सोवत माया झंझकि उठि बैठी, धिया है व्याहन जोगे।
देस निकर स्वामी धिया वर खोजो, धिया भई ब्याहन जोग।
पास गाँव ढूंढ़यों दूर गांव ढूँढ़यो, ढूढंयों शहर गुजरात।
कतहूं न मिले तोर धिया वर सुन्दर, तोर धिया रहै कुंवार।
माया कहै मैं कठी बियाहों, पिता कहैं सरदार
भैया कहैं मोर असमन बौले, बहिनी बियाहौं पिराग।
चढ़िकै मोरी बहिनी बैठ तखत पर, उतर के गंगा अन्हाय।।

कन्या भी माता-पिता की इस चिन्ता से अनभिज्ञ नहीं है। माता-पिता की इस चिन्ताकुलता से वह भी दुखी है। उसके अन्तःकरण की वेदना इन शब्दों में मुखरित हो उठती है -

काहे को बाबुल मोरे कुइयन खुदायो, काहे लगाओ लख आम।
काहे को बाबुल मोरे कन्या जो जन्मो, काहे बढ़ाओ जिया सोच।
पनिया भरन खां बेटी कुइयां खुदायो, सो चौखे खो लख आम।
धरम करें खां बेटी कन्या जो जन्मी, कटे जन्म के पाप।
धिया बिन हम दूध बिन अचबन, बिना धिया धरम न होय।

भारतीय समाज में कन्या का विवाह एक बहुत बड़ी समस्या है। दहेज जैसी कुरीति सुरसा की भाँति अपना मुँह फैलाती ही जा रही है। ऐसी स्थिति में उन माता-पिता के लिए जिनके पास पुण्य कमाने के लिए धिया तो है परन्तु दहेज में देने के लिये धन नहीं हैं। इस धर्म संकट की घड़ी में उनका हृदय पुकार उठता है -

जमुना मनावै सूरज मनावै, मोरे घर धिया न होय।
धिया जनम तब दइयो विधाता, जब घर सम्पत्ति होय।।

प्रत्येक विवाह योग्य कन्या और उसके परिजनों की चाह होती है कि उनको ऐसा घर वर मिले जहां सभी प्रकार के सुख हों। उनकी लाड़ली बेटी को किंचित मात्र भी कष्ट की अनुभूति न हो। ससुराल में वह राजरानी बनकर रहे -

मोरी लाड़ली बनरी नादान, आजुल जी सों अरज करै।
मोरी ऐसे घरै दियो महाराज, जहाँ बेटी राज करें।
जहां बम्मन तपत रसोई, कहार दोई पानी भरै।
मोरी झूलों की झूलन हारी, कटोरन दूध पियै।
मोरी रुपयों की परखन हारी, मुहरों के मोल करैं।
मोरे छज्जे की पीढ़न हारी, झरोखन बाव ढुरैं।

और वह बेला भी आ जाती है, जब माता-पिता अपने हृदय पर पत्थर रखकर अपने कलेजे के टुकड़े को नम आंखों से बिदा कर देते हैं -

राजा ससुर घर जाती है बेटी करकें सोलह श्रृंगार।
दम दम दमके माथे की बिन्दिया, उसई गरे को हार।
अंगना में छोड़ी चुनती मुनइयां, तुलसी छटा की छांह।
छूटे वे अमुआ की डारी के झूला, सूनी नदी के किनार।
ममता है छूटी भाई बहिन की, बाबुल को छूटो दुलार।
भौजी से छूटी मीठी सी बतिया, भैया को छूटी है प्यार।
बहिना सी छूटी प्यारी ये सखियां, गुरु सें छूटीं स्नेह।
भइया है किल्पै बहिना हैं सिसकै, बाबुल ने खाई पछार।
चँदा सी बेटी डोला में बैठी, डोला उठाओ कहार।

कितना विचित्र है नारी जीवन! एक अपरिचित बालिका जिसका जन्म, पालनपोषण एवं शिक्षा-दीक्षा कहीं और हुई, परन्तु अक्षत के छींटे और सप्तपदी के साथ ही वह नवीन गृह में प्रविष्ट हो। उसे अपना मान लेती है जिससे कभी परिचय नहीं हुआ उसके जीवन का सर्वस्व बन जाता है। जिस घर में अभी तक उसका कोई सम्बन्ध नहीं था वह उस घर की स्वामिनी बन जाती है। उसे गृहलक्ष्मी का गौरव प्राप्त हो जाता है। उसके सारे कर्म एवं उपक्रम उस परिवार की सुख समृद्धि की कामना से जुड़ जाते हैं। प्रातः काल सबसे पहले उठना, झाडू बुहारी करना, सभी के जलपान की व्यवस्था अत्यन्त ही सहज भाव से हंसते मुस्कुराते हुये पूर्ण करना, नारी के कल्याणकारी मंगलमय स्वरूप की ही अनुपम झांकी प्रस्तुत करता है। एक मां के रूप में नारी सदैव पूजनीय एवं वंदनीय रही है। बच्चे की छोटी से छोटी एवं बड़ी से बड़ी आवश्यकताओं एवं उसकी सुख सुविधाओं के लिए वह सदा चिन्ताकुल रहती है। बच्चे की इच्छानुसार भोजन बनाकर देना,

उसे अपने हाथों से खिलाना, मां के लिए बड़ा ही तृप्तिदायक होता है। अपने बच्चे के लिये भोजन की व्यवस्था करती मां का एक प्रफुल्लित चित्र इस गीत में दृष्टव्य है -

गोपाल प्यारो मांगत माखन रोटी,
अपने गोपाल को रोटी बनाय दऊं
एक छोटी एक मोटी।
गुपाल प्यारो मांगत माखन रोटी,
अपने गोपाल को मैं ब्याव रचाय दऊं
राजा वृषभान की बेटी।
गोपाल प्यारो मांगत माखन रोटी।

अपने बालक के लिए कठिन से कठिन कार्य करने में मन का हृदय जहां हर्ष का अनुभव करता है, वहीं बालक के अनिष्ट की आशंका मात्र से विकल हो उठता है -

मोरो कनैया आज रोवै, न दूध पीवै न गोद खेले।
काऊ सौतनियाँ ने दे दई अफीम, दिल्ली शहर से वैदा बुलाओ।
सो मोरे ललुआ की उतारे अफीम मोरो कनैया आज रोवे।

बुन्देलखण्ड में अनेक उत्सव पर्व एवं तीज त्यौहारों पर भी नारी की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। होली, दीवाली, रक्षाबंधन, कार्तिक स्नान, अक्षय तृतीया आदि सभी त्यौहार नारी बड़ी उमंग एवं उत्साह से मनाती है। कार्तिक व्रत नारी परिवार की सुख समृद्धि, संतान की मंगल कामना और उसके मोक्ष के लिए करती है, तथा आदर्श गृहस्थ जीवन के लिए करती है।

राजा जनक से बाबुल दइयो, रानी सुनैना सी माता दइयो।
राजा दशरथ से ससुरा दइयो, रानी कौशिल्या सी सासो दइयो।

प्रतिदिन प्रातःकाल तुलसी मैया को जल चढ़ाती, सिन्दूर लगाती, सुख सौभाग्य की मंगल कामना करती तथा मस्तक नवा यह प्रार्थना करती भारतीय नारी का रूप किसके मन को प्रमुदित नहीं करता -

तुलसी महारानी नमो नमो।
इन तुलसा ने कौन तप कीने,
सालिगराम भई पटरानी, नमो नमो।
छप्पन भोग छत्तीसों व्यंजन,
बिन तुलसा हरि एक न मानी, नमो नमो।

सावन का महीना और राखी का त्यौहार मन उमंग व उत्साह से भर उठता है। नारी के मन में जाग उठती है भाई के हाथ में रक्षासूत्र बांधने की ललक, पुकार उठता है उसका अन्तर्मन -

वीरन तेरे बिन कोऊ नैया,
राखी का बंदवैया।
एक दिना सावन में रैंगओ लेव सुद मोरे भैया।
को ल्याहे मोय मोर पपीरन, वारी छपी चुनरिया।।

बुन्देली नारी सदा ही अपने कलयाणकारी स्वरूप एवं सांस्कृतिक परम्पराओं के प्रति कटिबद्धता के कारण अभिनंदनीय रही है। वह जहां अपने कर्तव्य के प्रति निष्ठावान, कर्म परायणा, कुशल गृहणी है, वहीं वर्तमान परिस्थितियों में तो उसकी भूमिका अत्यंत महनीय है। वह पढ़ लिखकर प्रत्येक क्षेत्र में अपना स्थान बना रही है। अपने अस्तित्व एवं अपनी पहचान की रक्षा करते हुए नवीन दिशा की ओर अत्यंत निपुणता के साथ अग्रसर हो रही है।

- श्रीकृपा निकेत
आदर्श नगर कॉलोनी, छतरपुर ❋

दो गीत

- डॉ. शिवाजी चौहान 'शिवा'

चल रे मनुवाँ

चलरे मनुवाँ हारे चलिये कोंस कचरियाँ खइये
डोंगरा की पानी पीकें मोंगरा हो जइये
हम अपने बचपन की बातें तुमें सुना रए भइया
झरबेरी के बेर चले खावे संग किसन कनइया
गोलीं खेलन लगे हार में बा सुख की का कइये
मउवा जामुन, आम, नीम, बरगद की सीतल छइयां
उतईं चराउत हते बरेदी छिरियां भैंसे गइयाँ
वे बिरछा ना रहे दुपरिया बोलो कां बिलमइये
कऊँ कऊँ नरवा भरे पुखरियां कितऊँ कितऊँ लहरावें
खेतन खेतन खेतन वोर हरिया रोज भगावें
पसू पखेरू करें किलोलें अब वो समैं भुलइये
झुली परें सोचत ते घरलो संग साथ मिल जाबै
अब सोचन हैं कोऊ आँगें पाछें ना आजावैं
कितनी भव भैभीत शिवाजी कैसें भरमं भगइये

इतै न आई रैबे खों

इतै न आई रैबे खों
हुये जनम के कैबे खों
मन्दोदरी कही बानी
स्वामी अच्छी हठ ठानी
काए लगे विष बैबे खों
बाजत लंका पै डंका
हनूमान दैरए हंका
को है पूर पुजैबे खों
पिया सिया खों लौटा दो
बैर भाव सब बिसरा दो
करौ तैयारी जैबे खों
छमा मांग पइँयाँ गैलो
कनें शिवाजी जो कैलो
आए दरस हरि दैबे खों

-गुरसराँय, झांसी (उ.प्र.) ❋

दशारानी कौ चमत्कार

–कु. अनीता तिवारी 'नीतू'

भीत दिना पैलऊँ की बात है। एक गांव में एक मठू माते हते। मठू माते कैं उनकी मातेन अर चार लरका चार बऊयें हतीं। चार लरका चार बउअन में तीन लरका तीन बउयें चतुर सियाने उर लरका बिटियन वाले हते। चौथे लरका बऊ भीतऊ सीदे-सादे उर बिना लरकन-बिटियन वारे हते। उनें कोनऊँ मोंड़ी-मोड़ा नैं भये ते। ईसें माते के घर के सब जनें चौथे लरका बउ सैं नाखुश रत ते, उर उनें कोऊ बिलकुल चाउत नई हतो। सो बात-बात पै माते के घरै रोज-रोज खूब किलकिल दांती मची राबै। रोज-रोज किलकिल दांती होबे सैं माते कैं हमेसूं कलय मची राय। माते कैं कछू खेती-वारी सोऊ हती, पै कलय होबे सैं उनकैं पज कछू नैं राबै। ऐसें माते के घर की दशा भीतऊँ बिगरत जाय, अर दशा बिगरबे की पूरी दारोमदार चौथे लरका बउ पै थोपो जाय। माते के घर के सबई जनें हल्के लरका बउ पै ताने मारें अर उनें भारी हैरान-परेशान करें। सो हल्की बऊ खूब चिंता में रन लगी। जब देखो जब बा हल्की बउ चिंता में डूबी राय। सो ऐंसई चिंता में डूबी हल्की बउ एक बेर रात कै बिछौनन में परी-परी गुनतारौ करत-करत सो गई। सोउत सोउत उये भुनसारे पारै एक सपनौं आव, अर सपनन में उये एक डुकरिया दिखानी। डुकरिया ने ऊसें कई कै चिंता नैं करो हल्की बउ तुम गांव के बड़े पंडत से दशारानी के विरत की विधि पूंछकैं दशारानी की विरत, अर उनकी सेवा भंगती पूजा अरचना करियौ सो तुमाये घर की दशा सुदर जै है। सपनन में हल्की बउ सें ऊ डुकरिया नें ऐंसी कई अर चली गई, जबई कैं हल्की बऊ की नींद खुल गई। भुनसारौ होई गव तो सो बा उठ बैठी। हल्की बउ नें उठकें नित किरिया करी, मौं-हांत धोव, अर घर सें निकरकैं बा गांव के बड़े पंडत नौं जा पौंची। पंडतजी के इतै जाकें ऊ हल्की बउ नें उनखौं अपने सपने की बात बताई। सो पंडतजी ने ऊके सपने की बात सुनकें उसें कई कै तुम सुम्मवार के दिना दशारानी को विरत करो। सुम्मवार के दिना दशारानी के नाम की उपास करो। उपास के दिना दिन में दशारानी की पूजन करकैं एक बेर बिना नमक की लुचई, अर लुचई नैं होये तो फरा बनाकें गिरहन करो। अर जो कछू तुमाई सिरिद्धा होय सो दान-पुन्न करो। ऐसें तुम पांच-दस-पंदरा-बीस-पच्चीस, जितने चाहौ उतने विरत करो। तुम चाही तो जीवन भर दशारानी की विरत करौ। दशारानी के विरत सैं तुमाई मनोकामना पूरी हुइयै, अर तुमाये घर की दशा अच्छी बनी रये। तुम जब चाहौ अर जब तुमाई गुंजास होये सो दशारानी की पूजा अरचना के संगे दान-पुन्न अर सुहागलें करौ। ईसें तुमाये ऊपर हमेसूं दशारानी की किरपा बनी रैय। ई तरां हल्की बउ नें पंडतजी से दशारानी के विरत की बिधि पूँछ कैं अपने घर की गैल धरी, अर अपने घरै आ गई। घरै आकैं हल्की बउ नें दशारानी कौ विरत सेवा भगती अर पूजा अरचना दान, पुन्न करबै शुरू कर दव।

फिर का भव कै सुम्मवार के दिना बा हल्की बऊ जब दशारानी की विरत करै सो कभऊँ बड़ी बउ, तौ कभउं मंजली बउ, अर कभउं संजली बउ ऊसें किलकिल दांती करकैं दशारानी की पूजा में विघिन डारें। सो हल्की बउ खों भारी दुख होय, पै उनें दशारानी की विरत नैं छोड़ो। हल्की बऊ मन लगाकैं दशारानी की विरत करत राय अर घर के सबई जनों के तानें सुनत राय। घर के सबई जनें उसें किलकिल दांती करत रायें अर उये खूब हैरान परेशान करत राये। ई तरां माते के घर में कलय मची राय अर माते के घर की दशा भारी बिगरत जाय। माते के घर की दशा ऐंसी बिगरी कै घर के चार लरका बउओं में तीन बड़े लरका-बउयें बीमार पर गये, अर उनके लरका वारे बीमार रन लगे। संगै जो कछू खेती-वारी हती सो बा चौपट पर गई। ईसें माते कें जौन कछू जमा पूंजी पैलऊं की धरी ती सो बा सब दवा दारू अर खान-पान में स्वाहा हो गई। सो माते कछू गुनतारे में रान लगे अर गुनतारे में रत रत माते ने एक दिना का करी के अपने घर के सबई जनों खौं एक जांगां इकट्ठौ करो, अर सबसें जा पूंछी कै तुमन औरें कछू ऐसी उपाव बताव जी में सब जनें शांति से राबें, अर रोज-रोज की किलकिल दांती सें छुटकारौ पाबें। सो माते के सबई बड़े लरका बउओं ने माते सैं कई कै जा हल्की बऊ जौन निठल्ली होकें भगतन बनी पूरी जिंदगानी बड़ी मस्ती अर भगती में काढ़ रई है, उये घर सें अलग करकें अगर खेत पै पठै दव जाय तो घर में बड़ी शांति रैय। काये कै जा कछू काम धाम तौ करत नईयां बलकैं ठलवाई में खात पियत अर पूजा भगती की ढोंग धतूरौ करत। सो ई खों खेत पै पठै दव जाय, खेत पै जाकें हल्की बऊ खेत की रखनवाई करै अर मईं ऊकी डेरा डरै जबईं घरै शांति परै। उनकी जा बात सुनकैं माते नें मंजूर कर लई, अर हल्की बऊ खौं हल्के लरका समेत घर सें अलग करकें खेत पै पठै दव। सो हल्के लरका अर हल्की बऊ ने खेत पै जाकें अपनौं डेरा डार लव, अर दोई जनें मईं रन लगे। संगै मईं हल्की बउ दशारानी को विरत करै अर खेत की काम करै।

असाढ़ की समैया हती सो नौनें खूब पानी बरसन लगो। पानी बरसन लगो सो सबने अपने-अपने खेतन की जुताई-बुवाई शुरू कर दई। गांव के सब किसानों खौं किसानी की काम करत देख माते के हल्के लरका, अर हल्की बउ नें सोई अपने खेत में किसानी की काम शुरू कर दव। उनने अपनौ खेत जोतकें ऊ में जुआंर बो दई। दशारानी की किरपा सें पैलऊँ की सालन सैं अब की बेर खूब अच्छौ पानी बरसो। सो खेतन में फसलें सोई खूब अच्छी दिखान लगीं। हल्की बऊ

ने अपने खेत की ऐंसी निंदाई-गुड़ाई करी कै ऊके खेत की फसल गांव के सबई खेतन सें चौगुनी अच्छी दिखाय। हल्की बऊ हल्के लरका समेत खेत पै रै कैं किसानी करत रायं अर है सो हर सुम्मवार खौं हल्की बउ दशारानी को विरत करत राय। ऐसें दोई जनें बड़े पिरेम सें खेत पै रायें, सो खेत पै रत-रत दशारानी की किरपा सें हल्की बउ गरबवती हो गई। ईसें दोई जनें बड़े खुश रायें, अर फसल रखायें। होत-करत खेत में ठांड़ी जुआंर के पेड़न में भुन्टा निकर आये, अर उन भुन्टन में दाने पर आये। सो नीनें हल्की बऊ दौर-दौर कैं सबरे खेत में हरिया भगाउत राय अर दशारानी के गीत गाउत राय। ईसें दशारानी की ऊपै ऐसी किरपा भई कै गांव के सबरे खेत में ठांड़ी जुआर सें माते की हल्की बउ के खेत में ठांड़ी जुआंर चौगुनी अच्छी दिखाय। जुआंर के दाने खूब बड़े-बड़े रस भरे-भरे राबें, बड़े बड़े अर भरें-भरे दानन के जुआंर के भुन्टा माते के खेत में चमकत रायें। होत करत जुआंर के दाने पक परे अर जाड़े की समैया आन परी, सो खेतन में ठांड़ी जुआर की फसल कटन लगी। खेतन में जुआंर की फसल की कटाई होत देख हल्की बउ ने सोई अपने खेत में ठांड़ी जुआंर की फसल की कटाई कर डारी। अर जुआंर के भुन्टन सें पज निकारकैं इकट्ठी कर लई। दशारानी की किरपा सें गांव के सबई किस्साननों की पज सें हल्की बउ की चौगुनी पज भई। सो अब की बेर की पज देख कैं माते भौत पिरसन्न भये। ऐई के संगै माते के घरै सब जनों खौं हल्की बऊ के गरबवती होबे कौ पतौ चल गव, सो सब जनें हल्की बउ खौं खूब चाउन लगे, अर उसें बड़ी पिरेम करन लगे। होत-करत हल्की बऊ कै कछू दिनन में लरका हो गव, सो लरका की हौन-ब्यान करकैं हल्की बउ ने दशारानी कौ पूजन कर सुहागनें कर डारी। अर है सो दशारानी की भोग-परसादी सबई जनों खौं दै घाली। सो माते के जौन तीन बड़े लरका-बउयें, अर नारी-नता बीमार हते बे सब दशारानी के भोग परसादी पाये से अच्छे हो गये। ऐसे दशारानी की किरपा सें माते के घर की दशा सुधर गई अर उनके घरै शांति पर गई। अब माते के चारई लरका अब चारई बउओं समेत उनके घर के सबई आदमी नीनें मिल-जुरकें रन लगे। संगे सबई जनें मिल-जुरकें खेती-वारी करन लगे सो मठू माते कैं नीनें खूब धन-धान्न हौन लगो। ईसें गांव में उनकी खूब पिरतिष्ठा बढ़ गई अर गांव के सबई जनें उनें खूब मानन लगे। ऐसें दशारानी की किरपा सें मठू माते के सब दालुद्दुर दूर हो गये, अब बे पिरेम पूरवक पिरसन्न होकें रन लगे। अर 'दशारानी कौ चमत्कार' मानकें सब जनें दशारानी की पूजा भगती उर जै जै कार करन लगे। किसा हती सो हो गई दशारानी की जै भई।

-तिवारी मुहल्ला, शाहगढ़,
जिला सागर म.प्र. 卐

आउत है सुद उन गाँवन की

— डॉ. शंकर लाल शुक्ल

आउत है सुद उन गाँवन की।

जिन गाँवन में जनम लओ, हुदरात फिरे,
पढ़ लिख संवरे और जुआनी आई।
याद आउत हैं वे दिन सबरे सपनन में,
पुरा परोसी भइया-भौजी और बाप महताई।
दशरऔ और दिवारी रह रह, याद आउत सावन की।
आउत है सुद उन गाँवन की।

बड़े सें डिनडूबे नों, मेंड़ और खेतन की,
करब काटतन गिरै पसीना, और जरिया लेतन की।
चकिया पीसत महतारी की, हांतन की ठेठन की,
दिन दिन भर रखाउत्ते बैठे, गेंवड़े के खेतन की।
हार में दद्दा के उपनये, ढूँड़ लगें पांउन की।
आउत है सुद उन गाँवन की।

जाड़िन में मैरा के ऊपर, प्यांर बिछां कै बोरा में,
ठिठुर ठिठुर काटीं रातें, सिकुड़ें रये एक पिछौरा में।
कांखत रये रात भर, कांटो ठटौ पांव के पोरा में,
सुअर न चटका दे ठड़ेल कीं, सोने रात डड़ोरा में।
छोटा मौड़ा दिनभर चराउत तौ, गइयन के राउंन की
आउत है सुद उन गाँवन की।

संजा बिरियाँ भैंसे, वे दिन करवे सानी के,
औ दो टल्ला हते हमायें, थोरे खर पानी के।
उटे दूद संग बासी रोटी, मीड़ कै खावे के लाने,
कभऊँ खातते मठा महेरी, बाके की का कानें।
भौजाई के संग बखरी में, भोर मठा भाँवन की।
आउत है सुद उन गाँवन की।

गाँव भरे की बिटियन खों, अपईं बैन मानत्ते,
औ बसोर कक्को की मौड़ी न पराई जानत्ते।
हती न घर में चून चनन कीं, मुतियन चौक पुरत्ते,
ताती जलेवी, दूदा के लड़आ, सोने के गड़ुआ भरत्ते।
हरे हरे बांस कटाये बाबुल, वी मड़वा छांउन की।
आउत है सुद उन गाँवन की।

भलें गरीब हो मौड़ा, दशरथ घर जनमत्ती,
रानी कौशिल्या की कूंख सिरानी, ढोलक पै सोहर गवत्ती।
सोनें कौ दिन और सोने की रातें, सोनें कौ दियल जरत्ती,
बारी ननदिया नेग मांगत्ती, चूल्हे पै, चरुआ चढ़त्ती।
कठरा डरे पैंजना ठनकें, गोरी धन पाँवन कीं।
आउत है सुद उन गाँवन की।

— भाण्डेर (दतिया) म.प्र. 卐

बुन्देली शब्द सम्पदा

– डॉ. बहादुर प्रजापति

किसी भी भाषा या बोली की समृद्धिं उसकी शब्द-सम्पदा पर आधारित होती है। अर्थ के स्तर पर शब्द भाषा की लघुत्तम इकाई है। इस दृष्टि से शब्द भाषा का महत्वपूर्ण अंग है। शब्द की महत्ता न केवल भाषा के स्तर पर होती है अपितु बोली के स्तर पर भी उसका अपना महत्व हैं। मानव हृदय की विभिन्न वृत्तियों की अभिव्यंजना के लिए, भौतिक जगत में विद्यमान नाना वस्तुओं तथा पदार्थों के परिचय के लिए, सामाजिक, पारिवारिक, राजनैतिक, व्यावसायिक तथा सांस्कृतिक आदि विभिन्न क्षेत्रों के व्यवहार की दृष्टि से शब्द तथा उसमें विद्यमान अर्थ का जो महत्व है, वह किसी से भी छिपा नहीं है। शब्द हमारी भावनाओं को उजागर करने के लिए सबसे बड़ा साधन है।

हिन्दी के समान बुन्देली का भी एक विशाल शब्द भण्डार है। बुन्देली को वृहद शब्द-भण्डार वाली बोली मानते है। बुन्देली का शब्द-कोश एक पृथक अध्ययन का विषय है जहां बुन्देली, आर्य भाषा के शब्दों के अतिरिक्त निरन्तर सम्पर्क में विदेशी भाषाओं के विजातीय शब्दों के अतिरिवत निरन्तर सम्पर्क से विदेशी भाषाओं के विजातीय शब्दों को अपनी प्रकृति के अनुसार ग्रहण करती है।

बुन्देली विशाल जन क्षेत्र की बोली है। हिन्दी के अनुरूप इसमें विभिन्न शब्दों का समाहार है। इस बोली ने अपनी प्रकृति के अनुकूल अनेकानेक शब्दों को आत्मसात करने की प्रवृत्ति भाषा के स्तर से लेकर बोली और उपबोली के स्तर तक होती है।

भाषा विज्ञान-वेत्ताओं ने उत्पत्ति या उद्गम की दृष्टि से शब्दों का विभाजन सामान्यतः चार प्रकार से किया है यद्यपि शब्द समूह के वर्गीकरण को लेकर भाषाविद् मतैक्य नहीं है, लेकिन अधिकतर भाषा-वेत्ता इस बात पर सहमत हैं कि किसी भी भाषा में शब्द-समूह चार प्रकार के होते हैं - तत्सम, तद्भव, देशी (देशज) और विदेशी

१. तत्सम शब्द -

तत्सम का शाब्दिक अर्थ है 'उसके समान' अर्थात् संस्कृत के समान। हिन्दी और उसकी विविध बोलियों में जो शब्द संस्कृत से यथावत आ गए, तत्सम कहालए अर्थात् जिन्हें बिना किसी विकार या परिवर्तन के स्वीकार कर लिया गया है। जो बिना विकृति के लोक-व्यवहार में प्रयुक्त हो रहे हैं बोली या उपबोली के स्तर पर तत्सम शब्दों की तत्समता संदिग्ध हुआ करती है और फिर ग्रामीण वातावरण में तत्सम शब्दों का यथावत प्रयोग और भी कठिन हो जाता है। पढ़े-लिखे लोग भले ही तत्सम शब्दों का उच्चारण कर लें, लेकिन ग्रामवासी अपनी सुविधानुसार शब्दों का उच्चारण करते हैं, जो शब्द के मूल रूप को विकृत कर डालते हैं।

बुन्देली में प्रयुक्त होने वाले कुछ तत्सम-रूप निम्न प्रकार हैं जिनका व्यवहार आए दिन होता रहता है - अन्न, दुर्गा, शत्रु, सीमा, अमर, धिक्कार, मन्त्री, स्वामी, अंत, पंच, गौत्र, विद्वान, अपरम्पार, पाप, हल, नदी, कमल, पापी, काल, सुन्दर, कुपथ, फल, देव, पतंग, क्रोध, बुद्धि, मद, बेला, कण्ड, भमानी, उत्तर, भ्रम, कथा, मन, मन्त्र, साक्षी, कन्या, ममता, सेना, लक्ष्मी, घट, माया, पक्ष, नम्र

२. तद्भव शब्द -

तद्भव वे शब्द हैं जो संस्कृत से उत्पन्न होकर अपना मूल रूप (संस्कृत रूप) विकृत करते हुए पाली, प्राकृत और अपभ्रंश से होते हुए, हिन्दी और उसकी विविध बोलियों में समावेशित हो गए हैं। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि तत्सम शब्दों के विकृत रूप ही तद्भव है।

बुन्देली में तद्भवता का रूप मुख-सुख उच्चारण सुगमता और सरलीकरण की प्रवृत्ति के कारण और अधिक विकृत हो गया है। उदाहरण के लिए हस्त, तत्सम शब्द हैं जिसका तद्भव रूप 'हाथ' ठहरता है और यही शब्द बुन्देली बोली में अल्प प्राणीकरण की प्रवृत्ति और अनुनासिकता के कारण 'हाँत' हो गया। स्पष्ट है कि हिन्दी तद्भवता का रूप 'हाथ' बुन्देली में जैसा का तैसा नहीं रह पाया अर्थात् विकार में विकार पैदा हो गया।

बुन्देली बोली में ऐसे तद्भव शब्द सर्वाधिक व्यवहार मे हैं। यथा -

तत्सम (मूल रूप)	तद्भव (हिन्दी रूप)	बोली रूप
अर्क	आक	अकउवा
अंगुष्ठ	अंगूठा	नुकटा
अर्द्ध	आधा	आदौ
अन्न	अनाज	नाज
आम्र	आम	आँम
अश्रु	आँसू	अँसुआ
अक्षि	आँख	आँक
अग्रणी	अगाड़ी	अगाँई
अमृत	अमरित	इमरत
ओष्ठ	ओठ	औंट
उपवास	उपास	उपास
कण्टक	काँटा	काँटौ
कज्जल	काजल	काजर

३. देशज शब्द -

'सच्चे देशी' शब्द उन बोलियों के अवशेष हैं जो कि जनता द्वारा आर्य भाषा अपनाने से पूर्व देश में बोली जाती थी तथा वैदिक भाषा में ग्रहीत द्रविण एवं अन्य अनार्य शब्दों के विषय में भी यह कहा जा सकता है कि वे प्राचीन आर्य भाषा में देशी, तत्व के सूचक हैं प्राकृत-युग में इन शब्दों ने व्याकरणों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया। विशेषकर उस अवस्था में

जबकि इन शब्दों की व्युत्पत्ति संस्कृत या वैदिक भाषा के किसी शब्द से नहीं दिखाई जा सकी ऐसी अवस्था में व्याकरणों ने इन शब्दों पर देशी, नाम का लेबल लगा दिया। जिसका अर्थ था 'देश का' अर्थात् मूल देशीय अथवा स्थानीय और जिनकी व्युत्पत्ति अज्ञात है भले ही वे संस्कृत से निकले हैं, लेकिन मूल रूप से इतने अलग थलग पड़ गए हैं कि उन्होंने अपना स्वतंत्र अस्तित्व स्थापित कर लिया है और देश के क्षेत्रीय जन जीवन में बेधड़क प्रयुक्त हो रहे हैं। बुन्देली में प्रयुक्त देशज शब्द रूपों के कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं -

अजूबा - सलौने, सुन्दर
अकड़ - अभिमान, घमण्ड
अटपटी - बेढंगा, बेतुका
अदन - चूल्हे पर पानी कुनकुना करना
अघाना - तृप्त होना, ऊब जाना आदि
अकनियाँ - ज्वार के दाने रहित बाल, छूछा आदि
आँसना - दुख देना, कष्ट देना, चुभना
कलेऊ - सुबह का भोजन
कुठिया -मिट्टी का बना एक बड़ा पात्र जिसमें अनाज रखा जाता है।
खुरपी - कृषि कार्य में प्रयुक्त एक औजार
खाजर - अरहर की सूखी डन्ठल विशेष

४. विदेशी शब्द -

हिन्दी और उनकी विविध बोलियों में विदेशी शब्द ऐसे घुल मिल गए हैं, जिनको पहचानना अत्यन्त कठिन है। लगभग ११वीं शताब्दी से भारत पर विदेशियों के आक्रमण होते रहे हैं और उन्हें शासन करने का अधिकार भी प्राप्त होता रहा हैं परिणाम स्वरूप प्रशासन, धर्म और संस्कृति से सम्बन्धित कतिपय विदेशी शब्द हिन्दी भाषी प्रदेश में प्रयुक्त होने लगे। धीरे-धीरे वे भाषा और बोलियों के अभिन्न अंग बन गए। बोली सम्पर्क के कारण विदेशी शब्दों का आंचलिक शब्दों पर प्रभाव पड़ता गया और वे अपनी सुविधानुसार देश के ग्रामीण अंचलों मे प्रयुक्त होते चले गए।

बुन्देली में विदेशी शब्दों का व्यवहार अपनी मुख-सुख सुविधानुसार होता है ऐसे शब्द बोली के अनुरूप बोले और लिखे जाते हैं -

अरबी	**फारसी**	**तुर्की**	**पश्तो**
अमीर	खराब	कुली	पठान
अकल	गरीव	कलगी	गुन्डा
आखिर	जुलूस	चम्चा	अचार
आसामी	जहाज	चेचक	पटाखा
आदमी	जिक्र	चारपाई	डेरा
आफत	तमाम	चाकू	लुच्चा
स्तीफा	तगदीर	दरोगा	अटकल
इलाज	तारीक	तलाश	लफंगा
उमर	तकिया	**पुर्तगाली**	**अंग्रेजी**
कसूर	तोता	अलमारी	अपील
कसर	दावत	कमरा	पंचर
कमाल	दुकान	काफी	बस
किसम	दीवान	काजू	टैक्सी
खबर	बाकी	गिरजा	रिक्सा
खतम	माल	गोदाम	अस्पताल
मौका	लेकिन	चाबी	डाक्टर

५. स्थानीय शब्द -

इस वर्ग के अन्तर्गत वे शब्द आते हैं जो ध्वनि, रूप रचना और अर्थ दृष्टि से क्षेत्र विशेष में ही बोले और समझे जाते हैं इनका अपना स्थानीय महत्व है यों तो इस प्रकार के शब्द देशज शब्दों की कोटि में रखे जा सकते हैं, लेकिन इनमें स्थानीयता का भाव अत्यधिक रहता है। एक स्थान से दूसरे स्थान पर न तो इनका लोक व्यवहार होता है और न ही इनका दूसरे क्षेत्र में सरलता से अर्थ ग्रहण हो जाता है। बुन्देली में प्रयुक्त होने वाले स्थानीय शब्द इस प्रकार है।

स्थानीय शब्द		**अर्थ**
अफर	-	तृप्त होना
उपत	-	बिना बुलाए किसी के यहां जाना
कुलका	-	छिद्र विशेष
कांदी	-	घास विशेष
ततूरी	-	गर्म जमीन पर पैरों का जलना
पौर	-	मकान का एक कमरा विशेष
सपरना	-	स्नान करना, नहाना
सकाँय	-	आने वाला कल
उपनाए	-	जूते रहित चलना

६. ध्वन्यात्मक शब्द -

वे शब्द, जो हिन्दी और उसकी आंचलिक बोलियों में किसी न किसी पदार्थ की वास्तविक या कल्पित ध्वनि, अनुकरण के आधार पर गढ़े जाते हैं, ध्वन्यात्मक शब्द कहलाते हैं। इन्हें ध्वनि अनुकरणात्मक, ध्वनि-मूलक तथा अनुकरणात्मक आदि नामों से भी अभिहित किया जाता है। कल्पित ध्वनि को ध्यान में रखकर जो शब्द बनाए जाते हैं वे अनुकरणात्मक शब्द कहलाते हैं, जैसे खटखटाना, धड़ाम, चट आदि ये शब्द देशज शब्दों का ही एक भाग हैं तथा देशज के साथ इनको भी अज्ञात व्युत्पत्तिक शब्द-वर्ग में स्थान मिलना चाहिए। हिन्दी और उसकी बोलियों में ध्वन्यात्मक शब्द अन्य शब्दों की तरह परम्परागत, नवनिर्मित तथा ग्रहीत सभी प्रकार के हैं। हिन्दी में इस प्रकार के शब्दों की संख्या अधिक है। हिन्दी की बोलियों में विशेषकर क्षेत्रीय बोली-रूपों में ध्वनि-अनुकरण के आधार पर निर्मित बहुत से ऐसे शब्दों का प्रयोग हो रहा है जो कोष ग्रन्थों के लिए सर्वथा अपरिचित हैं। बुन्देली बोली में इस वर्ग के पर्याप्त शब्द व्यवहृत हैं। ध्वन्यात्मक शब्द ध्वनि के विशेष संगठन के करण अर्थ को स्पष्ट करके भाव को तीव्र बनाने में समर्थ होते हैं जो इस प्रकार अवतरित हैं।

पड़ाक, टन्टी, चटाक, टाँय-टाँय, दररानौं, दन-दनावौ, बक-बकावौ, खट-खटाऔ, खुन-खुना, कुन-कुनौ, टप-टप, टैं-टैं, भौंकौ, लप-लप, दचर-दचर, धड़ा-धड़, धम-धम, भड़ा-भड़

- शा. महाविद्यालय लौड़ी, जिला छतरपुर (म.प्र.)

समस्याग्रस्त बुन्देलखण्ड और आर्त्तनाद करता हुआ यहां का निवासी

– राधाकृष्ण बुन्देली

बुन्देलखण्ड जिसकी गौरवगाथा युगों से गाई जा रही है वह आज समस्याग्रस्त है और वहाँ का निवासी मूक होकर पीड़ा सहन कर रहा है, वह अपना दुःख-दर्द किसी से कहता है तो उसका मजाक उड़ाया जाता है। उसकी सहायता के नाम से आने वाला धन भ्रष्टचारी, दबंग और चोर-उचक्के हड़प जाते हैं और वह भूखा का भूखा रह जाता है। यहाँ का राजनेता स्वार्थी अनुभवहीन तथा भ्रष्टाचारी होता है। डॉ. केदारनाथ अग्रवाल के शब्दों में - 'कक्कू पहने हैं सरताज'

जब अयोग्य व्यक्ति शासक होगा तो यहाँ के निवासियों को दुख दर्द सहन करना पड़ेगा और अपना चरित्र भी बेचना होगा केदारनाथ अग्रवाल के ही शब्दों में -

''व्यास मुनि को धूप में रिक्शा चलाते देखता है,
सजी शैस्वा द्रोपदी को रूप की दुकान खोले देखता है।''

अति प्राचीन काल से बुन्देलखण्ड विषम प्राकृतिक संरचना के कारण समस्याग्रस्त है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी यहाँ की विषम परिस्थितियों का चित्रण अपनी रामचरित मानस में किया है। ''नाथ हमार यहे सेवकाई। भूषण बसन न लेहि चुराई।''

यही नहीं मुगल सम्राट औरंगजेब ने भी यहां के व्यक्तियों की दुर्दशा का चित्रण किया है यदि यहाँ का व्यक्ति अपराधी और चरित्रहीन है तो उसका कारण विषम आर्थिक परिस्थितियाँ और गरीबी हैं यथा -

''जमी हम वार नहीं, दरक फलदार नहीं।
मर्द वफादार नहीं, औरत बिन यार नहीं।।''

बुन्देलखण्ड को लोग अपराधियों का गढ़ मानते हैं यहाँ की चम्बल घाटी से लेकर मानिकपुर के जंगलों तक अनेक दस्यु दल सक्रिय रहे हैं और आज भी हैं। मानसिंह, फूलनदेवी, निर्भय गुर्जर, मंगल सिंह, ददुआ, ठोकिया यहां के नामी डकैत हैं। आखिर इन व्यक्तियों को डकैत किसने बनाया और ये डकैती क्यों डालते हैं? यह एक विचारणीय विषय है।

अति प्राचीन काल से बुन्देलखण्ड समस्या ग्रस्त है और आगे भी रहेगा क्योंकि केन्द्र और प्रान्तीय सरकारें, इस क्षेत्र की उपेक्षा कर रही हैं जब यह क्षेत्र ४० छोटी-बड़ी रियासतों में विभाजित था उस समय भी यह समस्या ग्रस्त था विदेशी आक्रमणकारियों ने खनिज सम्पदा को लूटा-खसोटा और जनता का उत्पीड़न किया। चन्देलकाल में महमूद गजनबी का आक्रमण सन् १०२२ में हुआ इसके पश्चात् पृथ्वीराज का आक्रमण सन् ११८६ से लेकर सन् ११६६ के मध्य में हुआ। पृथ्वीराज ने परमाल देव से सुलह करने के लिये यह शर्त रखी -

''किला कालिंजर का मागत है, बैठक मांगे ग्वालियर क्यार।
चन्द्रावली का डोला मांगे, और मागै नौ लखा हार।

राजा परमाल देव ने और उसके बहादुर सैनिक आल्हा, ऊदल ने यह शर्त स्वीकार नहीं की युद्ध हुआ और भीषण नरसंहार हुआ। इसके पश्चात् कुतबुद्दीन ऐबक ने १२०२ में कालिंजर पर आक्रमण किया इस युद्ध में ही निर्दोष व्यक्तियों की हत्या की गयी इसके पश्चात् शेरशाह सूरी ने सन् १५४४-४५ में बुन्देलखण्ड को जीता। शेरशाह सूरी की मृत्यु भी कालिंजर में हुई इस प्रकार यहाँ की आम जनता शोषण का शिकार होती गई और गरीब होती चली गई।

सौभाग्य की बात है कि औरंगजेब के शासनकाल के अन्तिम समय में बुन्देलखण्ड छत्रसाल महाराज के हाथ में आ गया। इन्होंने जनता का दुःख-दर्द जाना तथा जनता के उत्पीड़न का अन्त किया। प्रजातंत्र की नींव डाली अथाई पंचायत प्रणाली प्रारंभ की और जनता को न्याय दिया इनके गुरु प्राणनाथ थे जो सामाजिक एकता और वर्ग रहित समाज के पक्षपाती थे। इन्होंने छत्रसाल को यह आशीर्वाद प्रदान किया।

''छत्ता तेरे राज में धक-धक धरती होय।
जित-जित घोड़ा पग धरे, तित-तित हीरा होय।।

छत्रसाल के अन्तिम काल में सन् १७२८ के लगभग मोहम्मद बंगस का आक्रमण हुआ इस आक्रमण को रोकने के लिये छत्रसाल ने बाजीराव पेशवा से मदद ली और मो. बंगस को परास्त किया तथा पारिवारिक सम्बन्ध बनाये रखने के लिये मस्तानी को बाजीराव पेशवा को सौंप दिया हृदयशाह और जगतराज के शासन काल तक मराठों और बुन्देलों के सम्बन्ध बने रहे।

१८०४ के बाद बुन्देलखण्ड अंग्रेजों के प्रभाव में आ गया अंग्रेजों ने जमकर यहां के निवासियों का शोषण किया जिससे यहाँ का व्यक्ति गरीब होता चला गया सन् १८३६ में अनावृष्टि के कारण यहां के लोग एक-एक बूंद पानी के लिए तरस गये और उन्होंने इसे भगवान इन्द्र का अभिशाप माना -

''इन्द्र करौटा लै गये, मघा बांध गये टेट।
बेर करौंदा जो कहै, मरन न दैहे एक।।

इसके पश्चात् यहाँ का व्यक्ति विषम प्राकृतिक संरचना के कारण कृषि कार्य में लगा होकर भी अधिक उत्पादन नहीं कर पाया तथा सदैव प्रकृति पर निर्भर रहा तथा समस्त भारतवर्ष में इसे अभावग्रस्त क्षेत्र समझा गया -

''महुआ मेवा बेर कलेवा, कुलगुच बड़ी मिठाई।
जो इतनों चाहुने होय, तो करो गुड़ाने सगाई।।

दुख दैन्य झेलता हुआ भी यहाँ का निवासी सहनशील रहा और उसने हर परिस्थितियों का मुकाबला किया उसने अनावृष्टि, बहुवृष्टि, प्राकृतिक आपदा झेली। आतताइयों के जुल्म सहे और लोगों को यह सीख दी -

''साहब की अगाड़ी और घेड़े की पछाड़ी कतऊ नई करी जात।''

जब कोई किसी व्यक्ति को उत्पीड़ित करता था तो वह उत्पीड़क से यह कहा करता था - "मालिक पीठ में चाहे जितनी पन्ईयाँ मार लेओ, पर पेट में लात न मारो।"

सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में व्यक्ति भूख प्यास की ज्वाला से जलता रहता था और लोग सम्पन्न होने की झूठी डींग हांकते थे - "घर में नईया दाने, अम्मा चली भुनाने।"

जब कोई मेहमान घर में आ जाता था तो बड़ी समस्या पैदा हो जाती थी और उस घर की औरत सोंचती थी - "परदेस से आ गये पई पावनें। घर में नईया चून।"

यहाँ का व्यक्ति करता तो क्या न करता उसे मजबूरन उदर पूर्ति के लिये अपराध में कूदना पड़ा वह डकैत, चोर, अपहरणकर्ता और धन लेकर हत्या करने वाला बना दबंगों के द्वारा सताये जाने के कारण वह प्रतिशोध के लिये अपराधी बना। आजादी के ६० वर्ष व्यतीत हो गये बुन्देलखण्ड में दिखावटी प्रगति चाहे जो भी हुई हो किन्तु यहां का निवासी निम्न समस्याओं से ग्रसित है -

१. **भूमि का उपजाऊ न होना** - सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड विंध्याचल पर्वत श्रेणियों से घिरा हुआ है यहाँ की भूमि कृषि योग्य नहीं है इसलिए यहाँ अन्न का उत्पादन नदी, कछारों में ही सम्भव है।

२. **सिंचाई के संसाधनों का अभाव** -सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में ब्रिटिश शासनकाल से लेकर अब तक वांध, नहरों और तालावों का निर्माण हुआ है किन्तु वह पर्याप्त नहीं है। आज भी अधिकांश भूमि सिंचाई से वंचित है और यहां का किसान कृषि के लिये वर्षा पर निर्भर करता है पिछले तीन वर्षो से वह प्रकृति की आपदायें झेल रहा है अनावृष्टि के कारण वह सरकार और महाजनों का कर्जी बन गया है। कुआं, तालाबों और नहरों में पीने तक के लिये पानी नहीं है। अच्छे-अच्छे जमींदार कंगाल बन गये हैं और लाखों रुपयों के कर्ज का बोझ उन पर हो गया है। किशोरीलाल साहू से लेकर एक सौ पचास भूखे प्यासे व्यक्ति मृत्यु का आलिंगन कर चुके हैं। जो भी सरकारी सहायता शासन के द्वारा आ रही है उसका भी बन्दरबाट हो रहा है २५० और ५०० रुपये के चेक देकर गरीबों का मजाक उड़ाया जा रहा है। व्यक्ति कराह रहा है और उन्हें देखने वाले व्यक्ति कहते हैं -

"कौन कहता है कि बुन्देलखण्ड में है नहीं पानी।
खेत सूखे है तो क्या हुआ पर नम आँखों में है पानी।"

३. **बेरोजगारी** - बुन्देलखण्ड में शिक्षा का प्रसार ऐसा हुआ कि पढ़ा-लिखा व्यक्ति बेरोजगारी की लाइन में खड़ा हो गया। वैज्ञानीकरण हो जाने के कारण कुटीर उद्योगों का विनाश हो गया और उसमें लगे हुये व्यक्ति बेरोजगार हो गये अर्थाभाव के कारण जो व्यक्ति मेहनत मजदूरी कर पेट भर रहा था वह भी बेकार हो गया लगभग पूरे बुन्देलखण्ड में पांच लाख व्यक्ति वेरोजगारी की समस्या से जूझ रहा है, अब वे दावे खोखले दिखाई देने लगे जब नेता कहा करते थे -

"हर खेत को पानी है, हर हाथ को काम।
हर पेट में रोटी, हर जेब में दाम।।"

अब तो ऐसा लगता है -

"बुन्देलखण्ड में जो भी मिल जाये वही काम है।
पीने के लिए आँसू है, खाने के लिए गम है।"

इस प्रकार बुन्देलखण्ड में बेरोजगारी की भयावह स्थिति है यदि इस स्थिति में सुधार न हुआ तो हजारों व्यक्ति परिवार सहित आत्म-हत्या करेगा।

४. **अपराध एवं दबंगई** - पूरें बुन्देलखण्ड में अपराधों के कारण जनजीवन सुरक्षित नहीं है जनता चाहती है कि जीवन सम्पत्ति और सम्मान की सुरक्षा हो किन्तु यहां का कोई भी निवासी स्त्री हो या पुरुष सुरक्षित नहीं है कोई भी दिन ऐसा नहीं जाता जिस दिन डकैती, चोरी, अपहरण, राहजनी, हत्या और बलात्कार के मामले अखबारों में प्रकाशित न होते हों लोगों का मानना है कि बुन्देलखण्ड की पुलिस अपराधियों का संरक्षण करती है। अपराध रोकने का कोई प्रयास नहीं करती ग्वालियर, चित्रकूट, बांदा, महोबा आदि क्षेत्र अपराधियों के गढ़ बन गये। गरीब जनता असुरक्षित जिन्दगी व्यतीत कर रही है। अनेक गांव में द्रोपदी की चीरहरण लीला पाण्डवों के सम्मुख हो रही है और पांडव दुष्ट दुशासन का कुछ भी नहीं बिगाड़ पा रहे क्योंकि पुलिस उनकी संरक्षक है। अब परमात्मा भी उनका मददगार नहीं रहा कोई भी राजनीतिक दल का आदमी केवल समस्याओं को उछालने का खेल करता है और उसके पीछे उसे उसका उद्देश्य सत्ता-हथियाने का होता है। अब तो नेताओं के बारे में लोगों की धारणा अच्छी नहीं रही और लोग बांदा की भाषा में यह कहने लगे -

"डुबाये दिनीस लुटिया, कताये लिहिनिस निकुआ, सनेखी बरउना।"

कुछ लोग पृथक बुन्देलखण्ड की मांग भी उठाने लगे है किन्तु जनता यह मानती है कि जब तक नेता अपराधियों को संरक्षण देते रहेंगे तब तक बुन्देलखण्ड का उत्थान हो ही नहीं सकता।

५. **बुन्देलखण्ड की उपेक्षा** - बुन्देलखण्ड की सीधी-सादी जनता के साथ भेदभावपूर्ण व्यवहार हो रहा है और यहां की जनता ज्वलन्त समस्याओं के समाधान के लिये उत्तरप्रदेश और मध्यप्रदेश के दरवाजे खट-खटाती है किन्तु दोनों प्रान्त की सरकारें बुन्देलखण्ड की उपेक्षा करते हैं केवल चुनाव के समय ओट लेने के लिये जनता याद आती है। खेद का विषय है कि आधा बुन्देलखण्ड उत्तर प्रदेश में है और आधा बुन्देलखण्ड मध्यप्रदेश में। चित्रकूट जैसा महातीर्थ भी दो प्रान्तों में विभाजित है। ऐसा लगता है कि बुन्देलखण्ड निष्प्राण हो गया है और जनता उत्पीड़न सहने की आदी हो गई है। उपेक्षा सहन करना हमारे भाग्य और जीवन का अंग बन गया है -

"तुम्हें नफरत करना हो तो करते जाओ,
ठुकराना हो ठुकराते जाओ।
पर इतना याद रखना, ये मेरे वतन के नेता,
हमी काम आये थे, और हमी काम आयेंगे।
यह समझते जाओ।"

- विजय पुस्तक भण्डार, महेश्वरी देवी, बांदा

भबूदिया बाबा कौ चमत्कार

– श्रीमती गीता चौबे 'दिव्या'

भीत दिना पैलऊँ की बात है। एक गांव में एक लंबरदार हते। उनकी नाव हतो शांतिलाल। अर शांतिलाल की घरवाई की नाव हतो शांतिबाई। जैंसई शांतिलाल बैंसई उनकी घरवाई शांतिबाई। जैंसी उनकी नाव हतो बैंसई उनके गुन हते। दोई जनें बड़े शांत सौभाव के भीतऊ पिरेमी आदमी अर शंकर जी के भगत हते। दोई जनें शंकर भगवान की खूब पूजा भगती करत ते। संगै साधुअन की आव भगत अर सेवा-खुशामद सोऊ बे खूब करत ते। अकेलें का हते कै उनकें अबै नीं कौनऊं लरका-वारे नैं भये थे। सो एक बेर का भव कै उनके इतै एक बाबा आये। देखत में बे बाबा शंकर जी घांई लगत ते। उन बाबा को नाव हतो भबूतिया बाबा। जैंसई उन बाबा की नाव हतो बैंसई उनके गुन हते। भबूदिया बाबा अपने पूरे आंग में भबूद लपेटैं रत तें। अर कछू भबूद बे अपने कमण्डल में सोऊ धरैं रत ते। भबूदिया बाबा की एक खास अदत जा हती कै अगर कोऊ भगत आदमी अपनी दुख-तकलीफ पीर-पिराते की बात उनें बताय, तो बे अपने कमण्डल सें भबूद निकार कैं ऊये देत भये जा काबें कै तुम शंकर भगवान की नाव लैकें जा भबूद खइयौ अर माथे पै लगइयौ सो तुमाई दुख-तकलीफ पीर-पराती जो कछू हुइये ऊ सब दूर हो जैय। संगै तुमाई जो कछू मनोकामना हुइये सो बा सोई पूरी हुइये। ऐसे चमत्कारी भबूदिया बाबा लंबरदार-लंबरदारन के इतै पधारे। सो उनने बाबा की खूब आव भगत सेवा खुशामद करी अर भोजन कराये। जब बे बाबा उतै सैं जान लगे सो लंबरदार-लंबरदारन ने उनसें बिनती की कै महाराज हमायें अबै नीं एकऊ लरका-वारे नईं भये आयें, सो ई बात की हमें भीतऊ दुख है। ईसें महाराज जू कछू ऐंसी किरपा करौ कै एक ठऊ लरका तौ हमायें होई जाये। उनकी बिनती सुनकैं भबूदिया बाबा ने अपने कमण्डल की भबूद देत भये उनसें कई कै तुम दोई जनें शंकर भगवान की नाव लैकैं जा भबूद खइयौ अर माथे पै लगइयौ सो तुमायें एक ठऊ लरका जरूरई हुईये। ऐसें लंबरदार-लंबरदारन खौं भबूद दैकैं बे भबूदिया बाबा उतै सें चले गये।

अब लंबरदार-लंबरदारन ने शंकर भगवान की नाव लैकैं भबूदिया बाबा की दई भबूद खाई अर माथे पै लगाई, सो कछू दिनन बाद भगवान की किरपा सें उनके एक ठऊ लरका बिरधापन में होई गव। ईसें बे खूब पिरसन्न रन लगे संगै ऊ लरका की परवरस अर देखभाल खूब अच्छी तरा करत भये ऊसे खूब पिरेम करन लगे। होत-करत ऊ लरका दिन-दूनौं रात-चौगुनों होकें निंगन-फिरन लगो। बड़े आदमी की लरका सो नौनें खूब कठला-चूरा अर तमाम सोने-चांदी की चीजें-बसतें पैरें फिरै। अकेले ऊ लरका खौं सोने-चांदी की चीजें-बसतें पैरें देख काऊ में जा हिम्मत नई कै ऊ अपनी नियत खराब कर सके। काये कै बड़ेन की लरका सो सब डरात ते। अर बड़े पिरेम सें सब जनें ऊ लरका सें लल्ला-लल्ला कत ते। अर गांव के सबई जनें ऊ लरका खौं भारी चाऊत ते। काये कै गांव में लंबरदार-लंबरदारन की माली हालत भीतऊ अच्छी हती। जमीन-जायजात सोऊ उनकें मुलक हती। अर बे परस्वारती सोऊ खूब हते। गांव में बे सबई आदमन कौ अटका सटाऊत ते। अर अटका सटाबे खौं बे एक मईदार सोई राखे ते। बे अपने मईदार पै बड़ौ विसवास करत ते। ईसें बे अपने लरका खौं मईदार के संगई खेलबे खौं छोड़े रत ते। सो मईदार लल्ला खौं खूब खिलाउत राय। ईसें लल्ला सोई मईदार के अंगे खूब लगो राय। ऐसें होत-करत लंबरदार की लरका आठक-साल की हो गव। सो एक दिना का भव कै लंबरदार ने कछू जरूरी काम सें मईंदार खौं हारै जाबे की कई, सो मईदार हार के लानें निंग परो। अब मईदार खौं हार कुदाऊ निंगत देख बौ लरका लंबरदार सें बोलो कै दद्दू हम सोई आज मईदार के संगै हारे जैं हैं। जो लल्ला ने लंबरदार सें ऐसी कई सो लंबरदार ने ऊसें कई कै बेटा तनक बड़े और हो जाव फिर खूब जईयौ हारै। अकेलें बौ लरका नैं मानों अर जबरई मईंदार के संगे हारे निंग परो। मईंदार हतो उनकी भीत विसवासी आदमी, सो बे चुप होकें बैठ गये। अर मईदार लल्ला खों लुवायें हारे चलो गव।

फिर का भव कै ऊ दिना सूरज डूबत दिखान लगो अर इंदयारौ सो हौन लगो, अकेलें मईंदार अर लल्ला हार सैं नैं आये। ईसें लंबरदार-लंबरदारन दुखी से हौन लगे। अरोस-परोस के आदमन खौं पतौ चलो सो अरोस-परोस के आदमी उनके घरै आऊन लगे। सबई खौं चिंता हौन लगी कै लल्ला अर मईदार अबै नौं हार सें काये नई आये। ईसें लंबरदार के कछू आदमी उनें ढूंढ़बे हारै कड़ गये। ऐसें रात हो गई पै लल्ला अर मईंदार की कछू पतौ नैं लगो। सो जैसई-जैंसई रात जात भई दिखान लगी बैंसई-बैंसई लंबरदार के इतै कहर सौ परन लगो। अर अरोस-परोस से चलकें सारे गांव में ई बात की हल्ला हो गव, सो गांव भर के आदमी लंबरदार के इतै जुर आये। ऐसें लंबरदार की पूरौ घर-भर गव अर लंबरदार-लंबरदारन उतई बेहोश भये चारों-खाने चित्त डरे रायें। दोई जनों खौं कछू होस हवास नैं राये। उनकी हालत देख कें गांव वारन ने उनकी खबर दूर-दूर नौं उनके सबई रिश्तेदारन के सबई सगे-संबंधी अर मिलबे-जुरबे वारे सोऊ आ गये। अर सबई जनें लंबरदार-लंबरदारन खौं खूब समझायें अर धीरज धरायें। संगै लल्ला के ढुंड़ौवा ढूंढ़बे लगे रायें। पै लल्ला कौ कछू पता नैं लगो, सो नैं लगो। ई तरां रात बीत गई। अब भोर होतनई लंबरदार-लंबरदारन के इतै रुआंटे पर गये। लंबरदार-लंबरदारन चिल्लियान लगे, अर उल्टी-सीदी बकन लगे। सब जनें उनखौं समझाबें पै बे कछू नैं मानें। इत्ते में का भव कै एक जनों दौरत-दौरत आव अर कान लगो कै लल्ला की लास तो हारई में एक रूख के नैचें धरी। जैंसई जा खबर लंबरदार-लंबरदारन ने सुनी सो बैसई उनें धरती खिसकत सी दिखान लगी। लंबरदार लंबरदारन रोऊत भये बेचैन होकें धड़ाम सें धरती पै गिर परे। बे धरती पै डरे रायें अर रोऊत रायें। ऐसें उने

बिलकुल चैन नैं राबे।

कछू देर में लल्ला की हत्या होबे की खबर राज दरबार नीं पींच गई। सो राज दरबार की तरप सैं ई जांच-पड़ताल होन लगी। राज दरबार की तरप सैं जांच-परताल होकें लल्ला की लास खौं लंबरदार-लंबरदारन के सुपरत कर दव गव। ऐसें कछू आदमन नैं लल्ला की लास खौं हार सैं लियान कैं लंबरदार लंबरदारन के घरै धर दव। अब लंबरदार-लंबरदारन की हालत भीतऊ खराब हो गई। बे बिलख-बिलख कैं बिलाप करन लगे। बे लल्ला की लास सें लिपट-लिपट कैं चिल्लियाबें, सो चारऊ तरपें उनके चिल्लयाटे सुना परें। चिल्लियाटे सुनकें उनके इतै भारी आदमी जमा हो गये। सब जनें उनें खूब समझाबैं पै बे काऊ की नैं मानें। उनें उनकी घर काटन-सी लगो, सो कछू आदमी लल्ला की लास खौं मरघटे ले जाबे की तैयारी करन लगे। आदमी मरघटा जाबे की तैयारी करई रये ते कै जबई कैं उतै भबूदिया बाबा आ गये। अर भबूदिया बाबा नें उतै आकें एक आदमी सें पूंछी कै काये भगत काय हो गव इतै? सो ऊं आदमी ने भबूदिया बाबा सें कई कै महाराज लंबरदार के आठक-साल के लरका खौं काऊ ने हार में मार डारो। संगै जो कछू सोने-चांदी की चीजें-बसतें लरका पैरें तो सो बे सब चीजें बसतें सोई उतार लई। महाराज! लल्ला मईंदार के संगै हारै गव तो अर मईदार की सोऊ अबै नीं कछू अतै-पतौ नईयां। जा सुनतनईं बाबा कौ चैरा तमतमा उठो। अर बे तुरतईं लंबरदार के भीतरै जा पींचे। उन्हें देख कैं लंबरदार लंबरदारन खौं कछू होस सी आ गव। बे उठे अर दोई जनें बाबा के गोड़न पै गिर परे। बाबा ने उनें उठाव अर कमण्डल सें भबूद निकार कैं उनखौं दई। भबूद देत भये बाबा ने उनसें कई कै तुम शंकर भगवान कौ नाम लैकें जा भबूद लरका के मौं में डारो अर माथे पै लगाव, तुमाव लरका जी जैय। सो उनने बाबा सें भबूद लैकें लरका के मौं में डारी अर माथे पै लगाई। ईसें लल्ला की चैरा खिल उठो। ऐसें लल्ला हतो सो जिंदा हो गव। लल्ला खौं जियत पाकैं लंबरदार-लंबरदारन के जी में जी आ गव। अर उननें लरका खौं गरे सें लगा कैं ऊसें पूंछी कै काये बेटा तुमाये संगै का भव तो। सो लल्ला सिसक परो अर सिसकत-सिसकत ऊनें उनसें कई कै दद्दू चीजें-बसतें छुड़ाकैं मईंदार ने मोरी घुटकी मसक दई, अर मोये मई हार में रूख तरैं डार दव। सो जा खबर तुरतई राज दरबार नीं पींच गई। राज दरबार सैं मईंदार खौं पकरबे कछू सिपाई छोर दये गये। मईदार चीजें-बसते लयें मई हारई में दुको-दुको फिर रव तो। सो राज दरबार के सिपाइयन ने हार में जाकें, अर ढूंड़-ढांड़ कैं मईदार खौं चीजन-बसतन समेत पकर लव। अर पकरकैं उये राजा के सामूं पेश कर दव। राजा ने उसें पूंछतांछ करी, सो ऊनें अपनौं जुरम कबूल कर लव। सो चीजें-बसतें जबत करकें राजा नें मईंदार खौं कारागार में डारो, अर भबूदिया बाबा कौ चमत्कार मान कैं राजा नें उनकौ खूब सत्कार करो। किसा हती सो निपटी, खाव शक्कर की पट्टी।

– शिक्षामित्र, प्राथमिक विद्यालय इमिलिया,
पो. बरखिरिया, ललितपुर (उ.प्र.) 卐

बंजर कर दओं पूरौ हार

– अताउल्ला खान 'हुनर' चरखारवी

बंजर कर दओं पूरी हार बिन्ने कर दओ बन्टाढार।
बीज के पइसा मोंसे लै गये दारू पीकैं खेत में सो गये।
बाट हेर कैं, मोड़ी-मोड़ा, बिना ब्यारी ऊसई सो गये।।
भुनसारें घर में आ धमकें रोकें बोले पइसा खो गये,
ऐसे मिले पति करतार लाज का चौला दओ उतार।
बंजर कर दओ पूरी हार बिन्ने कर दओ बन्टाढार।।

गिरबीं रखत करत बैनामा लाला कैरओं रात कूँ आना।
सास हमारी हम सी कै रई रात नई भुन्सारे जाना।।
मोरे तन कौं देख सुहाना लाला मांग रहयों नजराना,
अबतौं कछु कर दे करतार, न जाऊँ लाला के द्वार।।
बंजर कर दओ पूरी हार बिन्ने कर दओ बन्टाढार।।

खादी के उन्ना सिलवा लयें, कै रयें नेतन संगे जा रये।
चार, पांच पुंगन के संगैं गलियन-गलियन मौज मना रये।।
रोजई दारू पी कैं आ रयें, घर वारन पें ऐंठ बता रयें,
बे हो गयें बिलकुल बेकार, बन गये पुंगन के सरदार।
बंजर कर दओ पूरी हार बिन्ने कर दओ बन्टाढार।।

मइके से मैं कितना लाऊँ अपनी बीती किसे सुनाऊँ।
या जाऊँ मै कुयें ताल मै या फिर विष खा के मर जाऊँ।।
क्या ऐसी वैसी बन जाऊँ पुंगन कों मैं यार बनाऊँ,
ऐसे चरित्र रहें जो बिनके बिक जायें न मोरी हार।
बंजर कर दओ पूरी हार बिन्ने कर दओ बन्टाढार।।

एक दिना कौ रौनी नइयाँ तीस दिनन कौ जौ रौनौ है।
दुपी-छुपी है बात उजागर बाकी भी एक दिन हौनी है।
बनी बनाई बात कुटुम्बी चिन्दी-बोटी सी हौनौ है,
ढील हमायें सास ससुर की बना गई उनकी मक्कार।
बंजर कर दओ पूरी हार बिन्ने कर दओ बन्टाढार।।

– ५१२, ईसाई टोला, प्रेम नगर, झांसी (म.प्र.) 卐

बुन्देली दोहे

– गुप्तेश्वर द्वारिका गुप्त

धुआँ उड़त मों ऊपरें, घर नईं भूँजी भांग।
बे कातीं हम निर्जिला, लरका दै रये बांग।।

मन दसरथ नें आज फिन, हनें सुरत के बान।
तलफें सरमन घाइं जे, घायल होके प्रान।।

सबकी इच्छा खों तकी, मैंगाई रई लील।
जीन बची सो लै उड़ी, राजनीति की चील।।

जंगल सहरन के घनें, भटकें भूके पेट।
नेता मंच मचान सें, खेल रऐ आखेट।।

ऐंसी बदली नीत है, को कीखों समझाय।
खात बिजूका खेत खौं, कछू न ब्वारें जाय।।

– ई.डी. २५, म.प्र.वि.मं.कॉलोनी, रामपुर जबलपुर (म.प्र.) 卐

बुन्देलखण्ड के मुकुटमणि : मधुकर शाह बुन्देला

— वीरेन्द्र बहादुर खरे

आज जब लोकतंत्र की हवा बह रही हो राजाओं की शान में कसीदे पढ़ना आउट आफ फैशन एवं प्रतिक्रियावादी कार्य और दक्षिण पंथी सोच माना जायेगा। राजा शब्द अब श्रेष्ठता का पर्याय नहीं क्रूरता, निरंकुशता, शोषण एवं अन्याय का पर्यायवाची हो गया है, किन्तु जनमानस की स्मृति में एवं इतिहास के पन्नों में ऐसे राजा उपस्थित हैं जो प्रजावत्सलता के लिये, धर्म के लिए, कला और संस्कृति के प्रति प्रेम एवं अपने अवदान के लिए आज भी लोगों की जुबान पर चढ़े हैं। जनता आज भी उन्हें आदर एवं सम्मान देती है। उन पर श्रद्धा करती है।

ओरछा के महाराज मधुकर शाह बुन्देला ऐसे ही लोकप्रिय एवं जननायक राजा हैं। वे ओरछा को राजधानी बनाने वाले प्रतापी राजा रुद्रप्रताप (१५०१-१५३१ ई.) के पुत्र थे। अपने भाई भारतीचंद की मृत्यु के बाद भारतीचंद के निःसन्तान होने के कारण सन् १५५४ में वे ओरछा के राजा हुये। उन्होंने अपने पिता रुद्रप्रताप और भाई भारतीचंद की कीर्ति को आगे बढ़ाया। उन्होंने स्वशासित प्रदेश ओरछा की जनता को सुरक्षा प्रदान की। उसे सुख और सम्पन्नता दी। अपने प्रदेश में उन्होंने अमन चैन स्थापित किया। उनकी बाहों की सबल छाँव में आसपास के इलाके के व्यापारी, कलाकार, विद्वान, कवि, पण्डित, आ-आकर ओरछा में बसने लगे। ओरछा को मधुकर शाह ने भवनों-मंदिरों से सजा दिया।

मधुकर शाह वीर और पराक्रमी राजा थे। जैसे कुशल व्यापारी अपनी पूंजी और व्यापार का निरन्तर विस्तार करता रहता है ओरछा के राजा ने भी उत्तराधिकार में पाये अपने राज्य का विस्तार किया। उसे अपनी महत्वाकांक्षा की सीमा मालूम थी। उन्होंने हिन्दुस्तान का बादशाह नहीं बनना चाहा। बुन्देलखण्ड और अपनी राजधानी ओरछा से दूर के प्रदेशों को लेने का उन्होंने प्रयास नहीं किया। उन्होंने भाण्डेर, करेरा, एरछ, पिछौर, शिवपुरी, भसनेह, शाहगढ़ एवं नरवर को जीत लिया। ग्वालियर के तोमर शक्तिहीन हो गये थे ग्वालियर का पतन हो गया था। कच्छपघात, परमार आदि प्राचीन राजपूत जातियां अब शासक नहीं थी। चंदेरी भी बाबर की मार से मृतप्राय था। अतः मधुकर शाह का रास्ता साफ था उसने सागर-झांसी, झांसी-ग्वालियर के बीच के भूभाग पर आक्रमण कर अपने राज्य का विस्तार कर लिया।

१५५४ में मधुकर शाह राजा बने। शेरशाह और इस्लाम शाह की मृत्यु हो चुकी थी। शूर वंश के अफगान सरदारों में भारत के ताज़ के लिये महाभारत हो रही थी। सिकन्दर सूर दिल्ली का सुल्तान था पर उसे २३ जुलाई १५५५ में युद्ध में पराजित कर हुमायूं ने फिर से दिल्ली पर मुगल सत्ता स्थापित कर दी। पर इससे पहले कि उसके पैर भारत में जमें २५ जनवरी १५५६ में पुस्तकालय की छत से फिसल गये और हुमायूँ की मृत्यु हो गई। उसका पुत्र अकबर उस समय १५५६ फरवरी में हेंमू बक्काल को पानीपत के मैदान में पराजित कर हिन्दुस्तान का बादशाह बना तो १३ वर्ष ४ माह का था। वह अपने संरक्षक बैरमखां के प्रभाव में था और उस पर अपनी धाय मां माहम का प्रभाव था। १५६० में अकबर ने बैरम खां को राज्यकाल से मुक्त कर दिया। १५६४ में उसने माहम धाय के बेटे आधम खां को अपने साथ गुस्ताखी करने के कारण मार डाला। इस प्रकार उसने अपने आपको आधम खां एवं माहम के शिकंजे से छुटकारा दिलाया और खुद मुख्त्यार बन गया। इन १० वर्षों में राजनैतिक उथल पुथल का लाभ उठाकर मधुकर शाह ने अपने आपको एक राजनैतिक शक्ति के रूप में स्थापित कर लिया। उन्होंने ग्वालियर एवं सिरोंज के मुगल प्रदेशों पर आक्रमण कर मुगल फौजदारी की नींद खराब कर दी। ओरछा का राज्य हिन्दुओं की आस्था का केन्द्र बन गया। उनके राज्य में मित्र मिश्र काशीनाथ एवं हरीराम व्यास जैसे विद्वान एवं संत सुरक्षित एवं सम्मानित जीवन जी रहे थे। ओरछा हिन्दुओं के लिये आस्था एवं आश्रय का केन्द्र बन गया। ओरछा में मधुकर शाह के संरक्षण में लक्ष्मी एवं सरस्वती दोनों साथ-साथ रह रहीं थी।

मध्ययुग के मुस्लिम शासन में हिन्दू अपने जीवन और धर्म को लेकर चिंतित और आशंकित रहे। बीच-बीच में धर्मांध शासकों जैसे सिकंदर लोधी, बलवन, फीरोज तुगलक ने मूर्तियों एवं मंदिरों को तोड़ने हिन्दुओं के धार्मिक कार्यो में रोक लगाने का कार्य किया। मुसलमान शासक हिन्दुओं पर जंजिया लगाते थे तीर्थ कर लगाया जाता और तीर्थ यात्रा को हतोत्साहित किया जाता था। इस कारण संतों एवं भक्तों को उत्तरभारत के प्रमुख तीर्थ अयोध्या मथुरा में राम, कृष्ण, शिव आदि की मूर्तियों को लेकर चिन्ता बनी रहती थी, वे अपने अपने आराध्यों को यहां से किसी अन्य दूर दुर्गम सुरक्षित स्थान पर ले जाना चाहते थे। भगवान कृष्ण तो नाथद्वारा में विराज गये थे।

१५७३ में ओरछा के राजा मधुकर शाह ने एक साहसिक कदम उठा लिया सोची समझी योजना के अनुसार रामभक्त रानी गणेशकुंअरि ने अयोध्या की यात्रा की। अकबर ने १५६३ में यात्रीकर समाप्त कर दिया था और तीर्थ यात्रा पर रोक हटा ली गई थी इससे यात्रा में कोई बाधा नहीं थी। जब वे वहां से लौटी तो उनके साथ रामराजा की मूर्ति थी जो सरयू में उनके हाथों में आ गई। इस पूरे कार्य को ईश्वरों एवं चमत्कारों घटना का रूप देने और उसे महिमा मण्डित करने के लिए एक कथा कही गई और रानी के हाथ में राम का आना गणेश कुंवरि की गहरी भक्ति और ईश्वर की अनुकम्पा का प्रसाद माना गया। ओरछा में रामराजा के आने की कथा हर आम व खास आदमी को विदित है और लोक कथाओं एवं गीतों का श्रृंगार है।

निरंकुश राजतंत्रात्मक मध्ययुग से मुस्लिम बादशाह के

शासित प्रदेश से किसी हिन्दूराजा द्वारा मूर्ति ले जाने का साहस किसी चुनौती से कम नहीं था। इस घटना का धार्मिक महत्व तो था ही। रातों-रात मधुकर शाह और गणेश कुंअरि हिन्दुओं के नायक बन गये। मधुकर शाह तो भक्त प्रवर महंत नाभादास ने आदर से अपने ग्रंथ 'भक्तमाल' में स्थान दिया। गणेश कुँअरि तो रामभक्तों की अग्रिम पंक्ति में शामिल हो गई। राजा की लोक प्रियता राजा के लिये हजारों सैनिकों के बल के बराबर होती है। पण्डित हरिहर निवास द्विवेदी ने कहा है "उस समय की एक बड़ी घटना मानी गई है। (तानसेन पेज ७३ लेखक श्री हरिहर निवास द्विवेदी)

१५७४ में अकबर ने मधुकर शाह के खतरे को भीपा १५७४ में उसने वाहरा के सरदार सैयद महमूद वारहा को मधुकरशाह को दबाने भेजा सैयद महमूद ने राजा को दबाने में पूरी ताकत झोंक दी। मधुकर शाह ने भी शाही फौज की ताकत देख मुगल प्रदेशों के आक्रमण करना बंद कर दिया। महमूद वारहा को सीमित सफलता मिली और इसी को अकबर के दरबार में उपलब्धि ा माना गया। कुछ समय पश्चात् महमूद वारहा की मृत्यु हो गई और मुगल सैनिकों का ओरछा से दबाव कम हो गया। संकट टल जाने पर मूर्ति को अप्रैल १५७४ में महलों में प्रतिष्ठित कर दिया गया।

राजा की गतिविधियाँ फिर बढ़ गई। १५७७ में मुगल सेनापति सादिक खां को मधुकर शाह को समझा बुझाकर वश में करने के लिये एक बड़ी फौज के साथ ओरछा भेजा। इस युद्ध का प्रामाणिक वर्णन अकबरनामा के मूल लेखक अबुल फजल (जो बादशाह अकबर का विश्वास पात्र मंत्री और सरदार था) ने किया "राजा मधुकर ने सम्राट की आज्ञा मानना छोड़ दिया और विद्रोही बन गया तो बादशाह ने बहुत बड़ी सेना के साथ सादिक खां को उसके देश पर अभियान करने के लिये भेजा। सादिक खां को आदेश दिया गया कि मधुकर शाह अगर उचित सलाह नहीं मानें तो उसे दण्ड दिया जाये। राजा मधुकर नहीं माना तब नरवर के मार्ग से जंगल साफ करती शाही सैना उदैचा ओरछा की ओर चली जब करेरा के दुर्ग के पास पहुंची तो वहां परमानंद पंवार दुर्ग में छिपा हुआ था शाही सेना ने दुर्ग घेर लिया। दुर्ग की सेना के लोग प्रतिदिन बाहर आकर लड़ते और हार जाते अंत में परमानंद ने शाही सेना से प्राणों की क्षमा मांगी, शाही सेना ने उसकी प्रार्थना मान ली आगे जंगल था अतः एक दिन जंगल काटा जाता दूसरे दिन सेना प्रस्थान करती। ऐसा करते-करते वे शत धारा नदी के तट पर पहुंच गये जो उदैंचा के उत्तर में है।

राजा मधुकर अपनी सेना के साथ नदी तट पर था प्रतिदिन कुछ झड़पें हो जाती थी। अब शाही सेना ने यह तय किया कि नदी को पार किया जावे। पर नदी पार करते समय व्यवस्था नहीं रह पाई। शत्रुओं की गोलियों के कारण अग्रसेना नदी को पार नहीं कर सकी तब नदी में हाथी डाले गये फिर लड़ाई हुई जिसमें शत्रु हार गया। शाही सेना ने राजा के महल में अधिकार कर लिया पर वन की सघनता के कारण यह पता नहीं चला कि मधुकर का क्या हुआ? सादिक खां का ख्याल था कि वह कहीं जा छिपा है और फिर आक्रमण करेगा उसने बार-बार शाही सेना की सहायता के लिये आदमी भेजे। फिर मधुकरशाह ने आकर पीछे से आक्रमण कर दिया। अधिकांश शाही सेना भाग खड़ी हुई किन्तु अलगूं खां कुछ वीर लोगों के साथ डटा रहा। सादिक खां ने आकर विचलित सेना को प्रोत्साहित किया तब अबूमाली और अन्य लोगों में साहस आया। सबने अपने प्राणों का मोह छोड़ प्रतिष्ठा की रक्षा की। इस युद्ध में मधुकर शाह का ज्येष्ठ पुत्र होरलदेव गोली लगने से मारा गया। २०० लोग मारे गये कुछ शाही लोग आहत हुये।

यह युद्ध राणा संग्राम सिंह और बाबर के बीच के युद्ध की याद ताजा करा देता है जिसमें बाबर को हार का खतरा नजर आने लगा था। मधुकरशाह का आक्रमण इतना भयानक था कि सादिक किसी नए आक्रमण का विचार छोड़ केवल ओरछा का घिराव किये रहा। राजा को भी बहुत हानि उठानी पड़ी थी। मुगल सरदारों और राजा दोनों ओर से संधि की चाह हो रही थी। संधि की संभावना को देख राजा ने महेवा के जागीरदार उदयाजित (भाई) के पुत्र प्रेमचन्द को आगरा भेजा। मुगल सरदारों के प्रयास से अकबर और मधुकर शाह में १५७८ में संधि हो गई। (अकबर नामा अनुवादक मथुरा लाल शर्मा पेज ४७६ वर्ष २३) मधुकर शाह ने अपनी स्वतंत्रता पर आंच न आते देख समझौता कर लिया। इस संधि में अकबर ने कोई अनुचित शर्त नहीं रखी।

अकबर और मधुकर शाह के बीच लगभग ६ वर्ष तक मधुर सम्बन्ध रहे। अकबर एक दूरदर्शी बादशाह था। वह अच्छी तरह जानता था कि अपने राज्य की सलामती और लम्बी उम्र के लिये राजपूतों और हिन्दुओं के साथ उदारता और समानता का व्यवहार करना पड़ेगा और धार्मिक स्वतंत्रता देनी होगी। पर उसके धर्म के मुल्ला मौलवी इस बात को स्वीकार नहीं करेंगे। अपने प्रभाव के कारण वे अमीरों सरदारों को धर्म के नाम पर अकबर का विरोध करने के लिये भड़का सकते हैं। अमीर और सरदार तो महत्वाकांक्षी होते हैं अतः वे सत्ता के लिये खतरा बन सकते हैं। कट्टर मुल्ला मौलवी अकबर के शासन के लिये खतरा बन सकते हैं। मुल्लाओं के प्रभाव को घटाने अपने प्रति निष्ठा रखने वाले समर्थकों की संख्या बढ़ाने के लिये उसने सन् १५८१ में दीन-ए-इलाही धर्म चलाया। इस धर्म में सभी अच्छे धर्मों की बातों का मेल था। इस धर्म के अनुसार धर्म के अनुयाइयों को चार भागों में बांटा जाता था। पहले वे जो अपनी सम्पत्ति बादशाह को देने को तैयार हों। दूसरे कोटि के वे हैं जो धन और जीवन को बादशाह के लिये समर्पित करने को तैयार थे। तीसरी कोटि के वे थे जो धन जीवन के साथ अपना सम्मान भी बादशाह पर निछावर करने को तैयार थे और चौथे सर्वश्रेष्ठ वे थे जो धन जीवन मान सम्मान के साथ अपना धर्म भी कुरबान करता था। इस धर्म का मुख्य उद्देश्य था अकबर के लिये पूर्ण निष्ठावान व्यक्ति को तलाशना ताकि अकबर ने अपने किसी दरबारी पर दीन इलाही मानने का दबाव नहीं डाला पर अकबर के प्रतिवफादारी दिखलाने के लिये बहुत से सरदारों ने दीन इलाही धर्म को स्वीकार कर लिया। जाहिर है कि अकबर बुन्देलखण्ड के और

हिन्दुओं के हृदय में स्थान बनाने वाले राजा मधुकर शाह को भी अपने पाले में करने के लिये दीन इलाही में शामिल देखना चाहता था। पर मधुकर शाह जैसा स्वाभिमानी राजा किसी नश्वर मनुष्य के प्रति धन, जीवन, स्वाभिमान एवं धर्म का त्यागकर समर्पण करने को तैयार नहीं हो सकता था भले ही वह प्रतापी मुगल बादशाह अकबर क्यों न हो। वह यह भी जानता था कि उसका दीन इलाही धर्म को मानने से इंकार करना अकबर को नागवार गुजरेगा। मधुकर शाह ने इसका परिणाम भी देख लिया था। आमेर के राजा भगवान दास अकबर के विश्वासपात्र एवं स्वामिभक्त राजा थे उन्होंने दीन इलाही धर्म को मानने से इंकार कर दिया। राजा को अकबर के कोप का भाजन बनना पड़ा। १५८६ में भगवानदास ने आत्म हत्या कर ली। (अकबर महान् - लेखक : जी.एन. लूनिया)

उन्होंने दूसरे दिन दरबार में अपने माथे पर अपने आस्था का प्रतीक वैष्णव तिलक लगाकर दरबार में आकर अपनी दीनइलाही धर्म को न मानने की इच्छा बतला दी। दरबार में तिलक लगाकर आना दरबारी शिष्टाचार एवं नियम के विरुद्ध था। मधुकर शाह ने इस प्रकार दीन इलाही के प्रति अपनी असहमति जतला दी। अकबर की भृकुटि तन गई उसके माथे पर बल पड़ गये। अपने अधीनस्थ राजा का यह जवाब उसे खल गया। मधुकर शाह भी अकबर की नाराजगी भांप गये। कुछ समय बाद ही अकबर ने वार कर दिया अकबर नामा का लेखक कहता है "मधुकर शाह पहाड़ी प्रदेश का निवासी था जब उसको दक्षिण की सेना के साथ जाने का आदेश हुआ तो उसने नहीं माना उसने क्षमा भी नहीं मांगी। उसे दबाने के लिए शहावउद्दीन अहमद और अन्य जागीरदारों को दबाने के लिये भेजा गया।

मधुकर शाह को रामानंदी तिलक लगाये देख अकबर के मन में क्या चाहा और अगर वही किया होता तो मधुकर शाह दरबार में क्या कर बैठते। इस दोनों के मन के महाभारत को कवियों एवं जनता ने कथा के रूप में उजागर कर दिया जो बुन्देलखण्ड के जनजन की जुबान पर है।

अकबर ने मधुकर शाह को अपने सेनापति के अधीन अभियान में दक्षिण भेजकर यह बतलाना चाहा कि मधुकर शाह उसके गुलाम और सामंत हैं। मधुकर शाह ने भी दिल्ली से ओरछा आ यह बतला दिया कि वे आजाद राजा हैं। पर शाही सेना द्वारा उसका देश लूटा गया। राजा ने कड़ी टक्कर दी इस बार अहम शाह आसकरन आदि शाही सेना नायकों ने मधुकर शाह के बीच संधि करनी चाही पर सफल नहीं हुये। उसने शाही सेना को लूटा। सेना, खाद्य सामग्री की कमी के कारण वहां से भागी शाही सेना कछौवा पर आक्रमण किया। राजा मधुकर के पुत्र इन्द्रजीत, सतराय और उसके पौत्र हरदेव ने दुर्ग को मजबूत कर दिया था। उन्होंने बाहर आकर लड़ाई लड़ी। वे वार करके किले में छिप जाते। इस लड़ाई में मधुकर शाह का भतीजा रघुनाथ मारा गया। शाही सेना की विजय हुई। दुर्ग पर एक मास तक शाही सेना घेरा डाले पड़ी रही। एक रात को इन्द्रजीत शत्रु को चकमा देकर दुर्ग छोड़कर भाग गये। खाली दुर्ग पर शत्रु का अधिकार हो गया।

अबुल फजल यह नहीं लिखते हैं कि कछौवा पर अधिकार करने के बाद शाही सेना ओरछा पर क्यों नहीं बढ़ी। दोनों पक्षों में युद्ध करने का साहस चुक चुका था। राजा बहुत बूढ़ा हो गया था। अकबर भी ओरछा के जंगलों में उलझकर शक्ति खर्च नहीं करना चाहता था। अतः मधुकर शाह और बादशाह में संधि हो गई बादशाह की उम्र का आदर करते हुये उन्हें दरबार में पेश होने से छूट मिल गई। मधुकर शाह का हिन्दुओं की नजरों में और कद बढ़ गया। इस घटना का कवियों ने चटक रंग से वर्णन किया और इस तिलक को मधुकर शाही तिलक ही कहा जाने लगा। मधुकर शाह टिकैत हो गये।

दिल्ली दरबार की यह परम्परा थी कि जब बादशाह या राजकुमार किसी राजा के राज्य से गुजरे तो राजा को उसके स्वागत के लिये राज्य की सीमा पर उपस्थित होना पड़ता था। १५९१ में मुराद दक्षिण जाते हुये ओरछा के समीप आया तो उसने मधुकर शाह को नहीं देखा। मुराद नाराज हो गया। मुराद ने उसे चेतावनी भी दी फिर भी मधुकर शाह न खुद गये न किसी प्रतिनिधि को स्वागत के लिये भेजा। जब और अधिक दबाव पड़ा तो उन्होंने पौत्र को भेज दिया और अपनी उपस्थिति के लिये लाचारी जाहिर की। मुराद की आन की बात थी। अतः राजा ने शर्त रखी कि उन्हें लेने के लिए इस्माइल खां और राजा जगन्नाथ को भेजा जाये। मुराद की आज्ञा से इस्माइल तो पहुंच गये पर राजा जगन्नाथ नहीं आये। राजा नरवर से लौट गये। मुराद आग बबूला हो गया उसने राजा मधुकरशाह को झुकाने के लिये ओरछा पर आक्रमण का आदेश दे दिया। करेरा दुर्ग में अमीर सेन ने शाही सेना का मुकाबला किया पर दुर्ग को दुश्मन के हाथ जाते देख रामशाह वहां से भाग निकले और ओरछा आ गये करेरा के दुर्गपति अमीर सेन ने शाहजादे मुराद से क्षमादान की प्रार्थना की जो स्वीकार कर ली गई।

अकबर बादशाह ओरछा के राजा मधुकर शाह से युद्ध को निरर्थक मानने लगा था उसने शाहजादा मुराद के इस कार्य को नापसन्द किया और उसे आज्ञा दी कि वह मालवा के विवाद में न उलझकर शीघ्र दक्षिण जायें। यह घटना १५९१ अक्टूबर की है। १५९२ में महाराज मधुकर शाह स्वर्ग चले गये। मधुकर शाह ने जीवन के लक्ष्य धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का समुचित पालन किया। महाकवि केशव दास ने वीर सिंह देव चरित्र में उनकी प्रशंसा करते हुये कहा -

"जिन जीतो रन रनगत खान, अली कुलीखां वीर निधान,
जाम कुली खां जालिम जियो, शाह कुलीखां भागे गयो।
गिनै न राजा रावत राव, हार गओ है जिनसे शाव।
जीति अकबर लेनी दिशि चारि तेहू तिन से मानी हार।

(वीरसिंह देव चरित्र,महाकवि केशवदास रचित प्रथम प्रकाश)

सचमुच चारों दिशाओं को पराजित करने वाला अकबर रूपी सूर्य ओरछा के जंगलों में भटककर सांझ का फीका सूर्य बन गया और मधुकर शाह से युद्ध करने से कतराने लगा।

- नगर भवन के पास, टीकमगढ़ 卐

बुन्देलखण्ड के कवि सरमन लाल 'सरस'

– डॉ. बारेलाल जैन

जिस समय भारत में स्वतंत्रता आन्दोलन की बिगुल चारों ओर से बज रही थी, उसी समय सरमनलाल 'सरस' का जन्म सकरार (झांसी) ग्राम में, श्रमण परिवार में हुआ था। आशुकवि सरमन लाल ने अपने ३०-३५ काव्य संग्रहों के माध्यम से ग्राम्य जीवन, शहरी जीवन और समाज के बीच मिटते हुए जीवन मूल्यों की चिंता तथा पनपते हुए अराजक तत्वों की खोज कर अपनी कविता में चित्रण किया। जीवन भर कुँआरे रहने की वेदना, कविता-कामिनी के आगोश में व्यक्त की, वहीं राष्ट्र, आराधना, कला के महल कविता की सार्थकता, रिश्तों के सच आदि का भी बयान किया। रूढ़ियों, पाखंडों के खिलाफ खुलकर व्यंग्यार्थ प्रस्तुत किये। नये मुहावरों की तलाश अपनी भाव अभिव्यंजना में प्रगतिशील बिम्बों और प्रतीकों को लेकर भाषा रची। उनकी अनुपस्थिति विद्वतों को आज खलती होगी, लेकिन उनकी काव्य-सर्जना आज भी हमें एक सम्बल देती है, जिन्होंने अपने अवसान के पूर्व आभास पाकर कहा था – 'टिक न सकेगा कभी एक क्षण खोलेगा जब काल किवरिया।' इन पंक्तियों में जगत का सच, जीवन की क्षणभंगुरता समाहित है। वहीं नर जीवन की सार्थकता और नर जीवन के लोकाचार में घुस आई पाखंड रूढ़ियों के प्रति उनका हृदय छटपटाता रहा उन्होंने तीव्र अनुभूति को अपनी वाणी इस तरह दी –

जब मनुजता की कहीं चोटी नहीं मिलती,
सत्य ढकने को लंगोटी नहीं मिलती,
अफरे हुए भगवान को मिष्ठान चढ़ता है,
भूखे हुए इन्सान को, रोटी नहीं मिलती।

कवि ने आम आदमी के भीतर पनपी जड़ता को दूर करने के लिए अपना दर्शन प्रस्तुत करते हुए कहा – भ्रम में है यह अब तक दुनियाँ, लगा रही गोता है/ईश्वर का अवतार अलग से, कभी नहीं होता है/निश्चित ही सरसजी पर श्रमण संस्कृति और मार्क्सवादी दर्शन का प्रभाव पड़ा है। इसलिए उसने ऊंच-नीच, अमीर-गरीब, काले-गोरे के भेदभाव को समाप्त करने का संदेश दिया है – प्राण सभी में एक सदृश है, समझो तर्क यही है/समता मानवता में, मानव में फर्क नहीं है/संस्कार, शिक्षा समाज और मानवता हृदय मनुष्य को सद्प्रेरणायें देती हैं, लेकिन अपराध, आतंक, हिंसा की बर्बरता ने सदा से ही यहां दंगे, फसाद और खून की होली खेली है। सरस जी ने पूरे राष्ट्र और संसार को राम का भाईचारा, कृष्ण का प्रेम, ईसा और हजरत का अपनत्व, बुद्ध की करुणा, महावीर और गांधी की अहिंसा का शंखनाद किया है – अतः समझते रहो पराये प्राणों की तुम पीड़ा/ सरस प्यार का भूखा है नन्हा-सा भू का कीड़ा। विजातीय तत्व जब तक राष्ट्र और दुनियां में शासक हैं तब तक सरस जी को उत्कृष्ट राज्य की स्थितियां नजर नहीं आती हैं उनका मानना है कि सर्वोदय अरु समाजवाद तब तक कैसे आ सकता है, जब तक ऐसे मक्कारों से राम राज्य का रिश्ता है। आज हर व्यक्ति द्वन्द्व में जी रहा है कि सज्जनता खतरे में है जबकि अवसरवादिता का गुण ग्रहण कर लेने पर कुछ न कुछ लाभ मिल ही जायेगा कवि का व्यंग्य इस तरह प्रस्तुत हुआ है –

जैसा समय काम कर वैसा, अब न खुद को हरिश्चंद कह।
अगर काम बन रहा दुस्ट से, दुस्ट चंद को दयाचंद कह।

और तो और आज का व्यक्ति बहुपक्षीय व्यक्तित्वधारी हो गया है यानि गिरगिट जैसा रंग बदलने वाला हो गया है, सरस जी की पारखी दृष्टि इस तरह कविता में प्रतीत रूप में प्रस्तुत हुई है-

शेर-स्यार दोनों के बाने, चलो समय पर यहाँ धार कर।
शेरों से तुम मिलो बाद में, प्रथम गधों से नमस्कार कर।

कारण स्पष्ट है आज जीवन के हर क्षेत्र में इतनी विसंगतियां उभर कर सामने आई है कि जीवन जीना बड़ा जटिल हो गया है, कवि का मानना है – कीनऊ गैल निगी अब सब में, कांटे डरे दिखावें/ लवरा गटकें हलुवा पूरी, सांचे चना चबावें/ कवि अपनी शब्द अर्थ सर्जना में माहिर है। वह वक्त की नब्ज पकड़कर एक प्रहरी की तरह हमारे सामने उपस्थित है। जो देखता है वह निर्भय होकर कहता है। आज की युवा पीढ़ी भी आधुनिकता के तीव्र प्रवाह में कुछ इस तरह अपना ओज खो चुकी है – तुम्हारा शेर-सा सीना, नई शक्ति तुम्हारी है। तुम्हें तलवार से ज्यादा, लगै सलवार प्यारी है। मानव की जवानी देश प्रेम, समाज-विकास, संस्कृति रक्षा के प्रति उदासीन हो गई है, उसे तो भौतिक-साधन, विषय वासनायें ही प्रिय लगती हैं और उन्हीं की प्राप्ति में उसकी ताकत खर्च हो रही है और इसी प्रवाह में नारियां भी बह चली है वह नारी जिसके पौरुष से, सारी दुनिया घबड़ाती है। वह नारी अब तलवार छोड़, अपनी सलवार हिलाती है। पुरुष और नारी मिलकर सृष्टि को जन जीवन, दिव्य जीवन देती है लेकिन धन/पद के मोह में पड़कर इन दोनों ने ही अपनी अस्मिता खाक में मिला ली है, सरस जी इस बेचैनी से व्यथित है। आज के शिक्षित युवा की एक तस्वीर उन्होंने खींची है – जब से बी.ए. पास भये लल्ला, बने गांव के गामा/ बन्न-बन्ना के उन्न पैरें, डाटन लगे पनामा/ कितना गंभीर/सार्थक चरित्रांकन है सरस जी की कविता में आज के भटके और पथ-भ्रष्ट जीवन की भूल-भुलैया राह की। जो समाज सेवा से विलग अपराध जगत की ही शरण में जाते हैं – इसी के चलते ये युवक अपने व्यसन के भी आदी हो गये हैं, कवि ने अपनी कविता में भीतरी मनोविकारों के साथ ही बाहरी व्यसन आदि के साथ दहेज जैसी कुप्रथा के अंत करने पर बल दिया है – लाखों घर बरबाद हो गये, इस दहेज की बोली में। अर्थी चढ़ी हजारों

कन्या, बैठ न पाई डोली में। सरस जी ने विकासशील समाज की कल्पना में पुरुष के कन्धे से कन्धा मिलाकर चलने वाली नारी के सहयोग को महत्वपूर्ण माना है - शोभा है कनक-कामिनी संग, बरना यह कनक धतूरा है/ नर कितना ही हो पूर्ण रूप, नारी के बिना अधूरा है/ यही कारण है कि पूरी उम्र कुंवारा रहकर भी कवि स्त्री की वेदना में जलता रहा है, अंतिम समय तक उसकी इच्छा बनी रहे कि जीवन संवारने के लिए साथी मिले - मैं कब से नाथ पुकार रहा, मेरे जीवन में लाली दो। गोरी दो अथवा काली दो, भगवान मुझे घरवाली दो। सरस जी ने बढ़ती हुई जनसंख्या के प्रति सचेष्ट करते हुए समूचे भारत में जीवन में सहानुभूति का संचार भर देने वाली 'कला' के महत्व को कविता में समाहित किया- सरस यहाँ की कला देखकर, हर नर कल पाता है। हर पत्थर में कला बोलती, कलाकार गाता है।

आज की शिक्षा नीति पर भी बुन्देली कवि सरस जी ने धारदार व्यंग्य करते हुए शिक्षा के कर्णधारों एवं शिक्षा प्राप्त बेरोजगारों के प्रति निशाना साधा है -

जाने कौन घड़ी में लिखी देश की जंत्री
पढ़े लिखे सब घास चरा रये, घसियारे भये मंत्री

तथा

दद्दा ने सोची थी मौड़ा, पढ़ के बने कलेक्टर
लेकिन कर्मन की गति देखो, ठोकत फिरत खनस्तर।

जीवन की हर विधा पर बुन्देली के कवि ने माँ बुन्देली बोली में सुन्दर चित्र टांके हैं। उनकी साधना को प्रमाण।

- हिन्दी विभाग, अ.प्र.सिं.वि.वि., रीवा

कैसे बजें रमतूला

- डॉ. जवाहर लाल द्विवेदी

अपनें ई बुन्देलखण्ड भरे में जा भौत पुरानी मान्नता है के बिटिया तौ देवी जू का रूप होत है। ऐई सें कोनऊ पुन्न का काज करत तौ उनें न्यौत के खीर और लुंचई (पूड़ी) खवाके अशीष लेत हैं। हर साल चैत और क्वांर के मईना में नौ-नौं दिना की नवरात मनावें सें नई चूकत। पर जा बड़े अन्धेर की बात हो रई कै शहरन और गांवन में जो पढ़वे लिखवे वालें बढ़े तो लगत उनकी तो अकलई मारी गई। वे सबरे जनें कछू ऐसे काम सोऊ कर रए जिनसें अपन सब की माथौ शरम से झुक जात।

पुराने जमाने में सुनवें खौं मिलत तौ के बड़े-बड़े घरन में मौड़ी को जनम होत तो वे उये मार डारत ते पर जा बात पे विश्वास ने होत तो। कछु विज्ञान की बढ़त ने ऐसी-ऐसी मशीनें सोऊ बना लई हैं के उसें पतो चल जात के पेट में मोड़ा है के मोड़ी? कऊं मौड़ा न भयो तो फिर वे ऐसे गरभ को गिरावे के लानें कोशिश करवें सें नई चूकत हैं। भले उनकी घरवाई या बऊ की जान जाय तो जाय। ऐसे हत्यारे न तो आदमियन को कछु कानून बिगाड़ सक रव और न डॉक्टर-डॉक्टरी शरम खा रय। जे डॉक्टर वो काम कर रय जो कंस भी नई करततो। बताऔ तो भैया ई बुरय करम में औरतन को तनकऊ शरम नई लगत। कैसी घनघोर कलजुग की माया फैल गई। सासें सोऊ मोड़ा होवे के लानें बऊ कों सतावें सें नई चूकती। पैलई से सबरें देश में लड़का से लड़कियन की संख्या भाई कम है और फिर ई कन्या भ्रूण हत्या न तो हदई पार कर दई है। कैऊ राज्यन में तो मोड़न के ब्याव के लाले पर रय हैं। अपनें ऐंगर के कछु प्रदेशन में तो मोड़ियन की खरीद करके ब्याव की खबरें अखवारन में पढ़वे मिलत है। कित्ती शरम की बात है पर नकटन की कौन समझावें?

काय भैया इत्ती तरक्की के बाद भी हमाई समाज में लरका और बिटिया कौ अन्तर बनौ रय तो बड़े दुख की बात है। अब तौ बिटियाँ कछु मामले में लड़कन से आगें देखवे मिल रई हैं। जीवन के सबई क्षेत्रन में लड़कियां खूबई नांव कमा रई है। केऊँ बेर तो जा देखवे मिली है कै बाप-मताई खौं लरका तौ धौकी दे गइ पर अन्त समय पे मोड़ी ने सहारो दयो। तोऊ पे मोड़ी को पराये घर कौ ईधन कहावे कौ चलन बनाऊ है। काय कल्पना चावला, किरण बेदी, सानिया मिर्जा, पी.टी.ऊषा, कौनऊ लरका से कम काम कर रई हैं, उनने सोऊ अपने बाप मताई के साथ अपने देश कौ नाम अमर कर दयौ है।

सबसें पैला तो ऐसे लिंग परीक्षणन खौं जल्दी से जल्दी रोको जावे। लोगन की सोच बदलवे का सोऊ जरूरत है। ऐसे लोग जो कन्या भ्रूण हत्या करवे में मदद देवें उनको सामाजिक बहिष्कार होवे। नईतर फिर बेई बात होने के जी लरका खौं तुमने कुल खानदान बढ़ावे को पैदा करौ है, ऊकौ ब्याव न हुइये तो डूब गयौ तुमाओ वंश? इतनऊ नई हुईये, सबरे समाज में अपराधन की बाड़ सोऊ आजे। अगर समय पर नई चेते तो जा जाने रइयो के कभऊ नई और कैसऊँ नई बजपे रमतूला। आज सबरे हार कन्या भ्रूण हत्या को असर देखवे मिलन लगौ है। जो काम धार्मिक रूप से सोऊ पाप करम है। ई साल सूका परवे सें सब कोऊ हाल-बेहाल हो रई। जब कऊं आदमी अपनो मन की करन लगत है तो फिर भगवान सोऊ नई चूकत है। विधाता ने नर नारी सें सृष्टि बनाई है पर हमाई ऐसी बुद्धि मारी गइ कि केवल बेटा पैदा करके संसार चलावे की ठानी है।

- प्राध्यापक वाणिज्य, शा.महाविद्यालय, राघौगढ़, गुना



उत्तरी बुन्देलखण्ड : समन्वय की अनूठी मिसाल

- राहुल मिश्र

बुन्देलखण्ड का उत्तरी इलाका, अर्थात् उत्तर प्रदेश के मध्य प्रदेश की सीमा से लगे हुए जिले-बाँदा, कर्वी, महोबा झांसी और हमीरपुर। विकास की गति में पिछड़े हुए, विपन्नता के दंश को झेलते और समूचे राष्ट्रीय परिदृश्य में अनजान-से इस क्षेत्र में आखिर क्या विशिष्टता है? यह प्रश्न यदि किसी से पूछ लिया जाए तो उत्तरी बुन्देलखण्ड के बारे में सतही जानकारी रखने वाला प्रत्येक व्यक्ति नकारात्मक जवाब ही देगा। किन्तु असलियत इसके बिलकुल विपरीत है। रोजगार के संसाधनों की अनुपलब्धता, खेती-किसानी में पिछड़ापन, राजनीतिक उपेक्षा और सामान्य से कम शिक्षा-स्तर के साथ ही हनक व आपसी प्रतिद्वंद्विता के कारण लड़ाके और कटु स्वभाव के लिए कुख्यात इस क्षेत्र के लोगों की तहजीब को अतीत से लेकर और गहराई तक जांचा, परखा जाए तो वह गुण स्पष्ट परिलक्षित होता है, जो देश तो क्या दुनिया भर में विरले ही मिलता है। वह गुण समन्वय का है, सद्भाव और सामन्जस्य का है, सबको साथ लेकर चलने का है।

इस क्षेत्र में बहुत समय तक मरहठों-पेशवाओं ने शासन किया, मुगल भी आए और बर्तानिया हुकूमत भी काबिज रही। इनसे पूर्व राम आए और नाथ-सिद्ध परम्परा के संतों ने भी डेरा जमाया। इन सबके साथ ही अलग-अलग तहजीब, रीति-नीतियों को मानने वाले भी इस क्षेत्र में आए, बसे और रम गए। यहाँ के निवासियों ने सबको बसाया, अपनाया और आपस में घुल-मिल भी गए।

कहा जाता है कि अयोध्या के राजा राम चित्रकूट आए और अपने वनवास के बारह वर्ष यहीं पर व्यतीत किए। यहां के लोगों के नेह-प्रेम में बँधकर राम ने वनवास का लगभग पूरा समय चित्रकूट में बिताया। यहां के कोल-भीलों को छोड़कर जाते साथ ही राम के ऊपर मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़ा। इस क्षेत्र में राम के निवास करने के कारण और साथ ही राम के अनन्य भक्त, भक्तिकाल के प्रमुख कवि गोस्वामी तुलसीदास की जन्मस्थली (राजापुर, जिला चित्रकूट धाम करबी) के कारण समूचा क्षेत्र राममय हो गया। बाबा तुलसी का रामचरित मानस हर घर में पहुँच गया। बच्चे हों, बूढ़े हों या फिर युवा, हर किसी के जीवन में मानस की पंक्तियाँ उतर गईं। इसीलिए अक्षर ज्ञान नहीं होने के बावजूद तमाम ऐसे लोग भी इस क्षेत्र में मिल जायेंगे, जो पूरी लय, ताल और उच्चारण की शुद्धता के साथ मानस पाठ कर सकते हैं। भोर की पहली किरण के साथ, साँझ में दीपक की रोशनी के बीच, गांवों की चौपाल में, अथाई में और यहाँ तक कि दादी-नारी के किस्से-कहानियों में राम और रामचरित मानस यहाँ गहरे तक पैठा हुआ है।

इस क्षेत्र का दशहरा अगर राममय है तो दीपावली कृष्णमय है। दीपावली के दूसरे दिन हर घर में गोवर्धन पूजा करके कृष्ण के लोकरक्षक स्वरूप का स्मरण किया जाता है। मुख्यतः यदुवंशियों के साथ ही सभी लोग ग्यारह वर्ष का मौनी व्रत भी लेते हैं। यहां की भाषा में इसे 'मौन चराना' कहा जाता है। हर वर्ष का एक मोर पंख बढ़ाते-बढ़ाते मोर पंखों का पूरा गट्ठा तैयार हो जाता है। और दीपावली के अगले दिन गायों, बैलों और बछलों को परिक्रमा करते, दिवारी के ढोल-नगड़िया की धुन पर रंग-बिरंगे कपड़े पहनकर लाठियां भांजने-खेल खेलते उत्साही लोगों को देखकर ऐसा लगता है मानो समूचा ब्रज क्षेत्र बुन्देलखण्ड में सिमट गया है।

शिव और शक्ति की उपासना में भी यह क्षेत्र पीछे नहीं है। चित्रकूट के अधिष्ठाता देव मत्तगयेन्द्र नाथ स्वामी को जल चढ़ाने के लिए हर अमावस और पूर्णिमा में उमड़ने वाले लाखों श्रद्धालुओं की भीड़ को देखकर शिवभक्तों की भक्ति का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। इस क्षेत्र में शक्ति की उपासना का तो कोई सानी ही नहीं है। जगह-जगह देवालय (देवाला) बनाकर नौ दिनों तक चलने वाली देवी पूजा। दिल को दहला देने वाली कष्टसाध्य आराधना-कोई लौंग खाकर ही जिंदा है तो किसी ने अपने शरीर में जवारे (जौ के बीज) बो रखे हैं कोई अपने गाल में लोहे की सांग घोंपे हुए है तो किसी ने मिट्टी के पात्र में आग जलाकर हाथों में ले जाने (खप्पर भरने) का व्रत ले रखा है। 'धूरा भर पैजनिया, मइया तोरी धूरा भरी पैजनिया...' जैसे देवी गीतों (३ माह) से नौ दिनों तक शक्तिस्वरूपा को प्रसन्न करने के इस क्षेत्र के वाशिंदों के यत्न को देखकर अच्छे-अच्छे देवी भक्त निःसंदेह आश्चर्यचकित हो जायेंगे।

कबीर के रहस्यवाद और नाथ-सिद्ध संतों की तंत्र पूजा से भी यह क्षेत्र अनजान नहीं है। कबीरवाणी (कबीरी) के गवैये ढोलक, हारमोनियम, चिमटा और मजीरे की संगत में रात-रात भर कबीरी गाते मिल जायेंगे और उतनी ही तल्लीनता के साथ सुनने वाले श्रोता भी इस क्षेत्र में खूब मिल जायेंगे। तानपूरा, इकतारा बजाते गांव-गांव घूमते कबीरी भजन के गवैयों के बिना इस क्षेत्र की पहचान ही अधूरी है। महोबा जनपद का गोखार पहाड़ गोरखपुर वाले गोरखना की तपःस्थली के रूप में विख्यात है। इसी तरह वर्तमान कर्वी नगर (जनपद चित्रकूट) बाबा मछिंदर नाथ की शक्तिपीठ (अमृत नगर) माना जाता है। कर्वी से लगभग तीन किलोमीटर दूर बने मंदिर इस बात के आज भी गवाह हैं कि धर्म, आध्यात्म, दर्शन के साथ ही तंत्र विद्या भी यहाँ जनमानस में समाहित थी।

ओरछा के हरदौल जू पौराणिक देवता नहीं है, उनका अतीत तो ज्यादा पुराना नहीं लगता, फिर भी राम, कृष्ण, शिव, शक्ति और तमाम संत-महात्माओं से भी अधिक मान्यता हरदौल जू को मिली हुई है। इस क्षेत्र के हर गांव में, कस्बे में हरदौल चबूतरा अवश्य मिलेगा। शादी-विवाह हो या कोई भी मांगलिक कार्य हो, सबसे पहले हरदौल ही पूजे जाते हैं। महिलायें बड़ी

तल्लीनता के साथ हरदौल के गीत गाती है। दतिया वाले असल पवाँर बुन्देला राजा एरच के, मोर मुकुट हरदौल जी का सोहे, बाँधो-बाँधो हजारी हरदौल बुन्देला राजा एरच कें।" जैसे तमाम हरदौल गीत सुनकर बेशक यह जाना-समझा जा सकता है कि मर्यादा, राष्ट्रप्रेम और उदात्त मानवीय गुणों की स्थापना करने वाले महापुरुष को देवता की तरह पूजना भी यह क्षेत्र जानता है। निःसंदेह यह देवत्व का मानवीकरण है, जो देश क्या दुश्मनी के किसी भू भाग में ढूँढ़ पाना असंभव है।

बाँदा में रामा जी का इमामबाड़ा साम्प्रदायिक सौहार्द की अनूठी मिसाल है। नवाब बाँदा की सेना के सैनिक, मराठा, ब्राह्मण, रामा जी ने इमामबाड़ा की स्थापना करके इस क्षेत्र में ताजिएदारी की शुरुआत की। आज भी रामा जी के वंशज पूरे वर्षा उस इमामबाड़े की व्यवस्था संभालते हैं और मोहर्रम में बढ़-चढ़ कर सहभागिता भी करते हैं। देश ने भले ही कई बार साम्प्रदायिक दंश को देखा और भोगा हो, किन्तु इस क्षेत्र में साम्प्रदायिकता की आंच तक नहीं महसूस की गई है।

राम का प्रभाव कहा जाए या कृष्ण का, शिव और देवी की बात हो या फिर कबीरी, गोरख-मछिंदरनाथ की तंत्र पीठ हो या फिर रामा जी का इमामबाड़ा, ये महज पूजा धर्म और आध्यात्म के प्रतीक नहीं हैं। वरन् इस क्षेत्र की समन्वय की भावना को प्रदर्शित करने के मापदण्ड हैं। समरसता और समानता का भाव इस क्षेत्र के कण-कण में व्याप्त है। ऐसी विशिष्टता देश या विदेशों में विरले ही देखने को मिलेगी।

जब तक यह क्षेत्र पश्चिम के अंधानुकरण की तेज बयार से सुरक्षित बचा रहा है, तब तक इस क्षेत्र में विद्यमान समन्वय के ऐसे प्रतीक सुरक्षित रहे हैं और संरक्षित भी होते रहे हैं। बदलते समय के साथ, पश्चिम के प्रभाव और आधुनिकता-भौतिकता-बाजारवाद कें कारण समन्वय के प्रतीकों पर अस्तित्व का खतरा मंडराने लगा है। इस क्षेत्र की अपनी अनूठी पहचान के लिए, समन्वय की भावना को सुरक्षित रख सकने के लिए इन प्रतीकों को संभालना-सहेजना जरूरी है।

- छाबी तालाब रोड, बांदा (उ.प्र.) ॐ

अन्त न जइयौ तुम बसन्त

– प्रेमनारायण पाठक 'अरुण'

होते न आदि तौ अन्त काँ सें आउते,
होते न साधू तौ सन्त काँ सें आउते!
होते न पन्थ 'अरुण' कन्त काँ सें आउते,
होते न वन तो बसन्त काँ सें आउते।।

आ गये अब दिन पीरे-पीरे-बागन, खेतन नीरे।
रोम-रोम खाँ जगा जात जे - सुन्दर सुखद समीरे।
रवि के रथ रै-रै कें चलबें-थमें नदी के तीरे।
'अरुण' सबई रँग लगत सुहाने-पीरे और हरीरे।

बगरी बागन बीच बसन्ती-धरा धार लई सन्ती।
खेतन ओढ़ी पीरी चादर, बदरा गही महन्ती।
ऐंसे में कयै कन्त भूल गये, अपने घर की कन्ती।
'अरुण' काय हो गये बैरागी, धार माल बैजन्ती।

आये ऋतुराजा हरषाकें, घरन-घरन में झाँकें।
काँ लौ पत्तन की नई दुलहिन, घूँघट में मौं ढाँकें।
कानन, वनन, बगैचन खेतन-बिरछन बस गये जाकें।
'अरुण' सुहाने पाकर कें दिन-हराँ हराँ रथ हाँकें।

जे दिन भर-भर देत उमगें, ऋतुराजा के सँगें।
नभ खाँ चूमें पीरे पत्ता, जैसें उड़ें पतंगें।
पेड़न, पत्तन, फूलन कलियन, धारें पियरे रंगें।
'अरुण' अनंग भयो मतवारी, छू-छू जाबें अंगें।

आ गये अब ऋतुअन के राजा, लैकें संग समाजा।
कामदेव के जगे पहरुआ, तज मर्यादा लाजा।
जाँ देखौ जाँ छाई बसन्ती, तन तन अतर लगा जा।
'अरुण' धार लई काय महन्ती, अबतौ प्रीतम आजा।।

- सटई, जिला छतरपुर (म.प्र.) ॐ

बुन्देली कविता : अपढ़ा

– शिवकुमार गुप्त 'सागर'

जगत गुरु कहलाउत हती जौ, अपनों देश महान।
लेकिन अपढ़ रये सें भइया, भारी भव निकसान।।

पढ़ नईं पाय खचोरे लम्पू, मंटोले कन्छेदी।
कोऊ जात लकईंया काटन, कोऊ बनों बरेदी।।
कोऊ दिन भर करत मजूरी, काटत मिलजें धान।
अपढ़ा रय सें मोरे भइया, भारी भव निकसान।।

पढ़े-लिखे, पटवाई, मास्टर, और डाक्टर बनतई।
बिना पड़े बैलन के संगे, बैलई जैसे जुततई।।
मों पै पसरी पीर पतारई, पड़ जाते भगवान।
अपढ़ा रय सें मोरे भइया, भारी भव निकसान।।

पढ़े लिखे की भौत बकत, होतई भइया जू घर में।
वौ सिरीं नई बन सकतइं, वो कितऊं जाय दफ्तर में।।
जो मौका पै चेतत, बई की मदद करत भगवान।
अपढ़ा रय सें मोरे भइया, भारी भव निकसान।।

बिना पढ़े हुइयौ तौ तुमखों, लूट जमानों लै है।
एक रुपइया के बदले में, दस की धरवा लै हैं।।
साऊकार झूठे रुक्का पै, लगवा लेत निसान।
अपढ़ा रय सें मोरे भइया, भारी भव निकसान।।

का तुम चाउत तुम्हारे लरका, ढोर चरावे जावें।
या फिर औरन के मों ताईं, सबरी उमर चितावें।
बिना पढ़े की चिठिया, बाँचत मिलजै सकल जहा।
अपढ़ा रय सें मोरे भइया, भारी भव निकसान।।

- मुख्य बाजार निवाड़ी, जिला टीकमगढ़ ॐ

बुन्देलखण्ड के कलम के सिपाहियों पर एक आत्मीय टिप्पणी –

कलम आज उनकी जय बोल

– डॉ. सन्तोष भदौरिया

बुन्देलखण्ड का स्वाधीनता आन्दोलन और हिन्दी पत्रकारिता का इतिहास जनजागरण का अप्रतिम अध्याय है, जो अपूर्व क्रियाशीलता और चेतना का संवाहक है। बुंदेलखण्ड की हिन्दी पत्रकारिता ने बुन्देली जनता को जाग्रत कर स्वाधीनता प्राप्ति हेतु प्रेरित और आन्दोलित किया। इस जनजागरण और स्वतंत्रता प्राप्ति के पीछे एक संघर्ष पूर्ण इतिहास की झलक हम पाते हैं। बुन्देलखण्ड क्षेत्र के उन कलम के सिपाहियों के त्याग, बलिदान और निष्ठा ने सदियों से अनवरत जारी गुलामी से हमें छुटकारा दिलाया। 'खींचो न कमानों को न तलवार निकालो, जब तोप मुकाबिल हो, तो अखबार निकालो' को अपना मूल मंत्र और जीवन ध्येय मानते हुए बुन्देलखण्ड के संपादकों, पत्रकारों और प्रकाशक ने जेल, जब्ती, जुर्माना की परवाह किये बिना बुन्देलखण्ड की पत्रकारिता को अपने खून पसीना से सींचा, जब हम बुन्देलखण्ड की हिन्दी पत्रकारिता के उद्‌भव, विकास और उत्कर्ष की चर्चा करते हैं तो उन बलिदानी संपादक एवं पत्रकारों की याद आना स्वाभाविक है जिन्होंने बुन्देलभूमि की स्वाधीनता को ही अपना सर्वोत्कृष्ट न्योछावर किया। उन्हीं में से कुछ पत्रकारिता जगत के हस्ताक्षरों को स्मरण करने की कोशिश की गयी है, जिन्होंने बुन्देलखण्ड की हिन्दी पत्रकारिता के विकास के लिये आधारभूमि तैयार की।

पं. बनारसीदास चतुर्वेदी हिन्दी पत्रकारिता के पितामह माने जाते हैं। फिरोजाबाद में दिसंबर १८९२ में जन्में इस व्यक्ति ने अपना सर्वस्व पत्रकारिता को अर्पित किया। बुन्देलखण्ड में उनका आगमन एक ऐतिहासिक घटना है। टीकमगढ़ में प्रकाशित 'मधुकर' का संपादन काल बुन्देलखण्ड की पत्रकारिता का महत्वपूर्ण युग है। अपने पत्र 'व्यसन' के संबंध में उन्होंने स्वयं लिखा है कि "जब साढ़े चौदह वर्ष तक मुझे कुण्डेश्वर में एकांत जीवन व्यतीत करना पड़ा, तब इस 'व्यसन' ने सुस्त जीवन में रस का संचार किया।"[१] चतुर्वेदी जी ने जीवन पर्यन्त स्वतंत्र लेखन और पत्रकारिता का कठिन पाठ पढ़ा, उन्होंने पत्रकारिता के माध्यम से संपादन कला को एक नया रूप प्रदान किया। 'मधुकर' एवं 'लोकवार्ता' पत्रों के सफल मार्गदर्शन द्वारा बुन्देलखण्ड के साहित्य और इतिहास को प्रकाश में लाने का स्तुत्य प्रयास आपने किया। बुन्देली जनता में सांस्कृतिक चेतना को जाग्रत करना आपके ही वश की बात थी। 'मधुकर' के बारे में कृष्णानंद गुप्त ने लिखा है कि "मधुकर" को तो बुन्देलखण्ड का एक इनसाइक्लोपीडिया कहा जाए तो अन्योक्ति नहीं होगी। बुन्देलखण्ड के लोक साहित्य और संस्कृति आदि पर उसमें सैकड़ों लेख भरे पड़े हैं।[२] बनारसी दास चतुर्वेदी की विनम्रता की कोई मिसाल नहीं, जब उनसे बुन्देलखण्ड की साहित्यिक जागरूकता के संबंध में विचार व्यक्त करने के लिये कहा गया तो उन्होंने कहा कि "बुन्देलखण्ड की जो थोड़ी सी सेवा मुझसे बन पड़ी, उसका श्रेय मुख्यतः महाराज वीरसिंह जू देव को ही है, वे अच्छे लेखक थे, उन्होंने ही 'मधुकर' पाक्षिक पत्रिका का प्रकाशन कराया। आपने ये भी कहा कि बुन्देलखण्ड का साहित्यिक एवं सांस्कृतिक सर्वेक्षण किया जावे तो पुराने पत्र जैसे 'मधुकर', विंध्यवाणी इत्यादि के अंक आदि उसमें सहायक हो सकते हैं।"[३]

बुन्देलखण्ड के कुण्डेश्वर में रहकर 'मधुकर' पत्र के माध्यम से उन्होंने बुन्देलखण्ड के लोक साहित्य को आमजन तक पहुंचाया। बुन्देली लोक कहानी, लोक-कथाओं और लोकगीतों को उन्होंने हिन्दी साहित्य का अनिवार्य अंग माना। इसी दौरान आपने बुन्देलखण्ड प्रांत निर्माण आन्दोलन का सूत्रपात किया। इनके व्यक्तित्व निर्माण में बुन्देलखण्ड का विशेष योगदान रहा है वे स्वयं कहते हैं कि "अपनी घोर विपत्तियों के दिनों में मुझे बुन्देलखण्ड में ही शरण मिली थी। महाकवि रहीम की वह उक्ति "जेंहि पे विपदा परत है, सों आवत येंहि देस" मेरे सम्बन्ध में पूर्णतः चरितार्थ रही है। इस प्रकार चतुर्वेदी जी के लगभग ३२ वर्ष बुन्देलखण्ड में बीते। सन् १९५२ में दिल्ली प्रस्थान से पूर्व चतुर्वेदी जी ने टीकमगढ़ में ही निवासरत रहकर बुन्देलखण्ड की सेवा की। उनके व्यक्तित्व के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि वे व्यक्ति नहीं एक संस्था थे।

बुन्दलेखण्ड के एक अन्य यशस्वी पत्रकार और स्वतंत्रता संग्राम सेनानी श्री रामेश्वर प्रसाद शर्मा का नाम उल्लेखनीय है। वे जीवन पर्यन्त एक सफल पत्रकार एवं संपादक के रूप में कार्यरत रहे। उनकी लेखनी ब्रिटिश शासन को हिलाने की ताकत रखती थी। सन् १९२० से १९४५ तक के २५ वर्षों में उन्होंने बुन्देलखण्ड के स्वाधीनता आन्दोलन में अपनी प्रखर पत्रकारिता के माध्यम से प्राण फूंके। हिन्दी प्रवर आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के झांसी आगमन के बाद वे 'सरस्वती' के सहकारी संपादक भी रहे।

बुन्देलखण्ड के स्वाधीनता आन्दोलन में सक्रिय भागीदारी करते हुए उन्होंने अनेक जेल यात्राएँ की, जुर्माने भरे और अपना सब कुछ पत्रकारिता के लिये त्याग किया। सन् १९१९ में झांसी में प्रकाशित उनके पत्र 'साहस' ने राष्ट्रीय आन्दोलन को नई राह दिखाई। राष्ट्रीय चेतना से सराबोर यह पत्र उनके जेल जाने पर ही बंद हुआ और पुनः प्रकाशित हुआ। सन् १९१८ में उरई एवं कोंच से प्रकाशित 'उत्साह' पत्र का संपादन कार्य इन्हीं के द्वारा संभाला गया जो १९२१ में बंद हो गया। इन्होंने 'प्रभाकर' समाचार पत्र का भी संपादन किया। दो अन्य पत्र 'न्याय' और 'त्रिशूल' भी उन्होंने निकाले जो आर्थिक संकट के चलते बंद करना पड़े। राजनीति और पत्रकारिता में समान रूप से सक्रिय रहे, उनके बारे में स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि "जिला झांसी के अहिंसक गांधीवादी सत्याग्रह आन्दोलन में १९२० से १९४५ तक लगातार संघर्षरत रहने वाले देशभक्तों में रामेश्वर प्रसाद शर्मा ही सूत्रधार और अग्रणी रहे। सबसे अधिक जेल यात्रायें की, जुर्माने दिए, घर फूंककर तमाशा देखा, धन व पत्नी का बलिदान हुआ, विधुर

जीवन जवानी से ही आरम्भ हुआ, मगर कभी हिम्मत न हारी, ना घर बना सके, ना बैंक में रकम जमा की और ना ही कोई पद लिया, बस निरंतर कार्यकर्ता ही बने रहे।'[४] बुन्देलखण्ड की पत्रकारिता में उनके योगदान को याद करना हमारा प्रथम दायित्व है।

कोटरा, जालौन निवासी तेजस्वी पत्रकार श्री मूलचन्द अग्रवाल का उल्लेख किये बिना बुन्देलखण्ड की पत्रकारिता को समग्रता में समझना नामुमकिन है। प्रारंभिक शिक्षा पूर्ण कर कलकत्ता पहुंचकर ख्यातिनाम पत्र 'विश्वमित्र' का संपादन किया। इस पत्र के 'रमता योगी' स्तम्भ में उनकी प्रखर लेखनी के दर्शन हुये। पत्रकारिता के जुनून और राष्ट्र सेवा के जज्बे के फलस्वरूप उन्हें कलकत्ता की अलीपुर सेन्ट्रल जेल की यातनायें भी सहनी पड़ी। इसके बावजूद उन्होंने पत्रकार धर्म का सफलता से निर्वाह किया। अपनी जन्मभूमि बुन्देलखण्ड की पत्रकारिता के लिये लाखों रुपये का अनुदान दिया। कालपी में आयोजित समारोह में अपने उद्बोधन के दौरान उन्होंने कहा था कि 'उनकी लेखनी और वाणी ने कभी भी ब्रितानी सत्ता के आर्डिनेंस की परवाह नहीं की। राष्ट्रीय स्तर के पत्रों का प्रकाशन करते हुए श्रमजीवी पत्रकार के रूप में उन्होंने काफी ख्याति अर्जित की।' 'विश्वमित्र' तथा 'एडवांस' पत्र के संस्थापक के रूप में उनका नाम आदर से लिया जाता है। विश्वमित्र को यह श्रेय प्राप्त है कि व्यावसायिक स्तर पर विज्ञापन को महत्व देकर दैनिक का प्रकाशन तथा एक ही पत्र को कई प्रांतों से निकालने का पहला सफल प्रयास किया।'[५] अपने पत्रकारिता जीवन से बहुत कुछ सीखते हुए उन्होंने भावी पत्रकारों के लिये महत्वपूर्ण सूत्र दिये। उन्हीं के शब्दों में ''पत्रकार क्षेत्र में आये हुये या आने वाले यात्री ये बात कभी ना भूलें कि आत्मवंचना उनका सबसे बड़ा शत्रु सिद्ध होगा। योग्यता-संपादन न करने पर अपने को सुयोग्य समझ लेना जीवन की सबसे बड़ी खाई साबित होगी। अकृतज्ञता जीवन का अभिशाप सिद्ध होगा। पत्र संपादन और पत्र संचालन बहुत ही बड़ी साधना, बहुत बड़ा योग और बहुत बड़ी तपस्या है।''[६] उन्होंने अपने पत्रकारीय जीवन को तपस्वी के रूप में बुन्देलखण्ड को अर्पित कर उच्च मानदंड की स्थापना की।

बाबू बेनीप्रसाद श्रीवास्तव की हिन्दी पत्रकारिता के एक और कीर्ति स्तम्भ हैं जिन्होंने आजीवन बुराइयों के खिलाफ संघर्ष किया। विदेशी साम्राज्य के खिलाफ संघर्षरत रहकर जीवन के अंत में आर्थिक परेशानियां भी उठाई। बुन्देलखण्ड में उनकी पैनी दृष्टि और बेजोड़ कलम का कोई सानी नहीं है। उनकी मृत्यु जिन खेदजनक परिस्थितियों में हुई, वह आज भी रोंगटे खड़ी करती है। सन् १९२३ में अपने पत्रकारीय जीवन की शुरुआत उन्होंने 'दिग्दर्शन' निकालकर की। इसके बाद सन् १९३० में 'हिंद राजस्थान' जैसा बेबाकी अखबार बुन्देलखण्ड की धरा को दिया। इसी वर्ष 'पब्लिसिटी' एवं 'फ्री थिंकर' अंग्रेजी अखबार निकाले तथा 'कालचक्र' एवं 'प्रवाह' नाम से साप्ताहिक पत्रों का प्रकाशन किया जो आर्थिक तंगी के कारण बंद करने पड़ें। एक लंबे अंतराल के बाद सन् १९४७ से 'बुन्देलखण्ड' साप्ताहिक और फिर उसी के दैनिक रूप का प्रकाशन किया। 'हिन्द राजस्थान' में उनकी कलम के तीखे तेवर देखने को मिलते हैं। यह दैनिक, साप्ताहिक और पाक्षिक रूप में निकलकर अंग्रेज शासकों की नींद हराम करता रहा। मानहानि के मुकद्मे के साथ एक-एक साल की सजा व दो-दो सौ रुपये का जुर्माना भी इसके खाते में दर्ज है। बाबू बेनीप्रसाद श्रीवास्तव अपने अंतिम समय में सन्यासी का जीवन जीते रहे। राठ के अत्यंत पिछड़े संडीला गांव में ८ अप्रैल १८९६ में जन्में बाबू बेनीप्रसाद को हिन्दी, उर्दू और अंग्रेजी का ज्ञान विरासत में मिला था। साथ ही संघर्ष करने का स्वभाव भी। जून १९३६ में अपनी जिंदगी का खुलासा करते हुये उन्होंने 'मेरी आज तक की जिंदगी' नामक पुस्तक लिखी जो उनकी आजीवन संघर्ष की साक्षी है। झांसी को अपनी पत्रकारीय प्रतिभा का केन्द्र बनाकर उन्होंने अपने लेखन से अंग्रेजी साम्राज्य को लगातार चुनौती दी। ये दुर्भाग्यपूर्ण है कि ऐसे कृतित्व को अंतिम समय में समाज की उपेक्षा का शिकार होना पड़ा।

सन् १८९५ में छतरपुर में जन्में वियोगी हरि कर्मठ और कलम के धनी पत्रकार थे। आपका मूल नाम हरिप्रसाद द्विवेदी था। सन् १९२० में गांधी का अनुकरण करने के उपरान्त इन्होंने स्वाधीनता आन्दोलन हेतु अपना सब कुछ समर्पित कर दिया। लगभग पचास पुस्तकों का लेखन एवं संपादन किया। जबलपुर से 'पतित बंधु' पत्रिका का संपादन किया। गांधीवाद एवं गांधीदर्शन में पूर्ण विश्वास रखने वाले वियोगी हरि ने हिन्दी साहित्य सम्मेलन की पत्रिका 'सम्मेलन' और गांधी द्वारा संपादित ख्यातिनामा पत्र 'हरिजन सेवक' का भी संपादन किया। इनकी संपादन कला राष्ट्रीयता से ओतप्रोत है। बुन्देलखण्ड के प्रति इनके मन में हमेशा सेवा भाव रहा। यहां की प्रकृति इन्हें लगातार आकर्षित करती थी। आजीवन बुन्देलखण्ड से बाहर रहने के बावजूद उन्होंने लगातार बुन्देलखण्ड की सेवा की। आज भी उन्हें बुन्देलखण्ड की धरा में आदर और सम्मान से याद किया जाता है।

बुन्देलखण्ड की हिन्दी पत्रकारिता में रघुनाथ विनायक 'धुलेकर' का नाम स्वर्ण अक्षरों में अंकित हैं। ६ जनवरी १८९१ में झांसी के संपन्न परिवार में जन्मे धुलेकर ने सन् १९२१ से ही स्वाधीनता आन्दोलन में अपनी सक्रिय सहभागिता निभाई। अंग्रेज सरकार के खिलाफ झांसी से 'उत्साह' व कानपुर से 'मातृभूमि' एवं 'फ्रीइंडिया' जैसे विचारोत्तेजक पत्रों का संपादन किया। सफल पत्रकार एवं लेखक के रूप में उनकी पहचान कर उत्तर प्रदेश साहित्य सम्मेलन ने आपको 'साहित्यवारिधि' की उपाधि से अलंकृत कर अपने को ही गौरवान्वित किया।'[७] अंग्रेज़ों की भारत विरोधी नीतियों का विरोध करते हुए १९२० में प्रकाशित अर्द्धसाप्ताहिक पत्र 'उत्साह' में प्रेस अधिनियम के तहत पांच सौ रुपये, एक हजार रुपये एवं दो हजार रुपये की जमानतें देनी पड़ी। धुलेकर ने 'मातृभूमि शब्द कोश' वार्षिक का संपादन भी १९२९ से १९४२ तक किया। बुन्देलखण्ड के आदि पत्रकार के रूप में आपको हमेशा याद किया जाता रहेगा।

बुन्देलखण्ड के प्रसिद्ध क्रांतिकारी परमानंद के सम्बन्ध में लिखी गई पंक्तियों से उनकी कठिनाइयों का अंदाजा लगाया जा सकता है - ''एक युवक ने बंगाल के लाट (गवर्नर) पर बम फेंका

और खुशी-खुशी फांसी पर चढ़ गया। सन् १६१० में प्रेस एक्ट पास हुआ, जिसमें छापाखाना और अखबारों की जमानत देनी पड़ती थी। राजद्रोह के लेख छपने पर जमानत जब्त कर ली जाती थी। मैं स्वयं इस काले कानून का भुक्तभोगी बना था। 'उत्साह' हिन्दी पत्र झांसी में १६२० से निकलता था। मेरे राजद्रोही लेखों के कारण पहिले वार्निंग मिली, फिर ५०० रुपये, फिर १००० रुपये और फिर २००० रुपये जमानत के रूप में दाखिल करता गया और वे जब्त होते गये। आखिरकार धनाभाव के कारण 'उत्साह' बन्द करना पड़ा। मुझे कोई अफसोस नहीं रहा भगवान की कृपा से वकालत में मैंने काफी रुपया कमाया था और मेरे बड़े भाई रायबहादुर दामोदर राव धुलेकर जो मेरे पितातुल्य थे, की सहायता से मैं दबा नहीं, बार-बार रुपया जमा करता गया और राजद्रोही लेख छापता ही गया, जिससे समस्त बुन्देलखण्ड में असहयोग आन्दोलन को बल मिला और हजारों युवकों को प्रेरणा मिली, फलतः वे हंसी-खुशी जेल गये।''[८] आचार्य रघुनाथ राव धुलेकर के संघर्षमय पत्रकारीय जीवन की ये उम्दा मिसाल है।

कृष्ण गोपाल शर्मा बुन्देलखण्ड के हिन्दी पत्रकारिता के एक और महत्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। अपने पत्रकारीय जीवन की शुरुआत उन्होंने उरई से हिन्दी साप्ताहिक पत्र 'उत्साह' निकालकर की। इस पत्र को निकालने के पीछे उनका मुख्य उद्देश्य गांधी के असहयोग आन्दोलन को प्रचारित-प्रसारित करना था। अपने बेवाकपन और विचारोत्तेजक लेखों के कारण इसने बुन्देलखण्ड में काफी प्रसिद्धि पाई, इसने कानपुर के 'प्रताप' के समान लोकप्रियता पाई। ब्रिटिश शासन की तीखी आलोचना के फलस्वरूप उत्साह को ५०० एवं १००० रुपये की जमानतें देनी पड़ी और उनके पत्र को जब्त कर लिया गया। उन्होंने दो अन्य पत्र 'बुन्देलखण्ड केशरी' और 'श्रमजीवी' का भी कुशल संपादन किया। अपनी प्रखर लेखनी के लिये प्रसिद्ध कृष्णगोपाल शर्मा के बारे में द्वारिकेश मिश्र ने लिखा है - ''कलम के पैनेपन के लिए पं. कृष्णगोपाल शर्मा बहुत प्रसिद्ध थे और जनपद के ग्रामीण तथा निकटवर्ती रियासतों के क्षेत्र में उनके जुझारू पत्रों ने प्रभूत जन-जागरण किया।''

कृष्णानंद गुप्त का नाम बुन्देलखण्ड की पत्रकारिता जगत में बड़े आदर के साथ लिया जाता है। ३ फरवरी १६०३ में ललितपुर में जन्में कृष्णानंद गुप्त बचपन से ही 'सरस्वती' जैसी साहित्यिक पत्रिका के पाठक बने। 'प्रताप' के संपादक गणेश शंकर विद्यार्थी के संपर्क में आने के बाद उन्होंने पत्रकारिता को अपना जीवन ध्येय बनाया। उन्हें हिन्दी के अलावा उर्दू, गुजराती, बंगला, मराठी और अंग्रेजी का भी ज्ञान था। मधुकर, सुधा, माधुरी, विशाल भारत और सरस्वती में आपके अनेक विचारोत्तेजक लेख छपे। बुन्देलखण्ड के टीकमगढ़ से प्रकाशित होने वाले पत्र 'लोकवार्ता' का आपने संपादन किया। यह हिन्दी की अद्वितीय त्रैमासिक पत्रिका थी, यह बुन्देलखण्ड की लोक संस्कृति और लोककला की प्रतिनिधि पत्रिका थी, उनके द्वारा संपादित दूसरा पत्र 'संगम' था जो साप्ताहिक के रूप में छपता था। इसमें आकर्षक चित्र छपते थे। उनकी पत्रकारिता प्रतिभा के सम्बन्ध में पं. बनारसीदास चतुर्वेदी ने लिखा है कि ''जब मधुकर निकला तो उसका हार्दिक स्वागत करने वालों में कृष्णानंद जी का नाम प्रमुख था। 'विशाल भारत' की तरह मधुकर के लिये भी उन्होंने अपने सर्वोत्तम लेख भेजे। मुझे भलीभांति याद है चैतुओं पर 'विशाल भारत' में सबसे प्रथम उन्होंने लिखा था और अप्टन सिनक्लेयर पर भी। अनातोले (फ्रांस) के तो वे विशेषज्ञ हैं। कृष्णानंद जी ने जो ग्रंथ चालीस वर्ष पहले पढ़े थे, उन्हें मैं आज तक नहीं पढ़ पाया।''[६] कृष्णानंद गुप्त ने बुन्देलखण्ड की कहावतें, शब्दों और गीतों का परिश्रम पूर्वक संग्रह कर पांच वर्ष के भीतर बुन्देली कोश का प्रकाशन किया। बुन्देलखण्ड के साहित्य और संस्कृति की प्रतिनिधि पत्रिका 'लोकवार्ता' को संपादक कृष्णानंद गुप्त ने अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्रदान की। इस सम्बन्ध में बुन्देलखण्ड के उपन्यासकार डॉ. वृन्दावन लाल वर्मा ने लिखा है कि ''लोकवार्ता का प्रकाशन हिन्दी के लिये निःसंदेह एक नया पराक्रम था। फ्रांस और इंग्लैण्ड के प्राच्य विद्या विशारदों तक भी इसका नाम पहुंचा और सुदूर पूर्व में नृ-विज्ञान और लोकवार्ता के अध्ययन के लिये जो प्रसिद्ध संस्था है, गुप्त जी अपने उक्त कार्य के लिये उसके सम्मानित सदस्य बनाये गये।''[१०]

बुन्देलखण्ड का स्वाधीनता आन्दोलन और हिन्दी पत्रकारिता ने क्षेत्र की आजादी के लिए अखिल भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन में अपनी सक्रिय सहभागिता निभाई। बुन्देलखण्ड के पत्रकारों एवं संपादकों ने प्राण-प्रण से पत्रकारिता की सेवा कर यहां के जनमानस की राजनीतिक चेतना को प्रखर किया और आजादी की लड़ाई को अंतिम लक्ष्य तक पहुंचाया। बुन्देलखण्ड के विभिन्न क्षेत्रों से निकलने वाले पत्र-पत्रिकाओं के संपादकों, पत्रकारों और प्रकाशकों की लम्बी फेहरिस्त है। सबके नामों का उल्लेख विस्तार से करना संभव नहीं होगा, उनमें से कुछेक नाम जिनमें लाल बल्देव सिंह, बाबू मणिचंद कंचन, भगवान दास माहौर, पं. कालिका प्रसाद कुसमाकर, गयाप्रसाद गुप्त 'रसाल', मास्टर बल्देव प्रसाद, ज्वाला प्रसाद ज्योतिषी, प्रेम नारायण खरे, महेशदत्त दुबे, जगन्नाथ प्रसाद 'मिलिन्द', नारायण बालकृष्ण नारवरे, मारेश्वर राव चांदोकर, मथुरा प्रसाद मिश्र, बाबू ठाकुर दास जी, भाई अब्दुल गनी, सुन्दरलाल द्विवेदी, राम गोपाल गुप्त, जगदीश नारायण रूसिया आदि प्रमुख थे।

संदर्भ -

१. सर्वप्रिय, नई दिल्ली, जून १६८५, पृ. ७-८
२. बेतवावाणी, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झांसी, अगस्त-अक्टूबर, १६७८, पृ. १२
३. मामुलिया, वर्ष ४, अंक१४, पृ. ६,८
४. मार्गदर्शक, साप्ताहिक, ६ सितम्बर १६७६, पृ. ३
५. प्रहरी, जालौन, १६८६, अयोध्या प्रसाद गुप्त 'कुमुद' कॉलेज
६. प्रहरी, जालौन उरई - स्मारिका, उ.प्र. जर्नलिस्ट एसोसिएशन
७. ब्रजभारतीय, मार्गशीर्ष, सं. २०३१, डॉ. श्याम सुन्दर 'बादल', पृ.४१
८. बहुमत, झांसी-भोपाल, २८ नवंबर १६६८, पृ. ५
६. साप्ताहिक भारती, लोक संस्कृति अंक-१, नवंबर १६७०,पृ. १०
१०. अमृत पत्रिका, १८ फरवरी १६५३, इलाहाबाद

- उप आचार्य एवं क्षेत्रीय निदेशक
महात्मा गांधी अर्न्तर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र)

बुन्देली संस्मरण -

गुनवन्ती गंगाबऊ

- श्रीमती ब्रजलता मिश्र

हमाई नानी श्रीमती दुर्गा नागार्च हम चारउ बैंन भइयन कौं भौत चाउत हतीं। तिनमें सबसें लौरे हमइँ हते, सो का पूँछियेत? हमाओ कओ उन्नें कभउँ नईं टारौ। हमाए कए सें बे कभउँ काँनियाँ-काँनातें, तौ कभउँ लोकगीत सुनाउत हतीं। एक बेर उन्ने हमें जौ काँनियाँ सुनाई ती।

एक गाँव में एक बूढ़ी-पुरानी डुकरिया हती। उनकौ नाओ हतो 'गंगा'। सबइ जनें उनसें 'गंगाबऊ' कात तें। गंगाबऊ सबरे काम-काजन में हुसियार हती। उनके हाँतन में ऐसी जस हतो कै गाँव भरे में काऊकौ खांसी होय, कै बुखार होय, तौ बौ दौरी-दौरी गंगाबऊ नों आ जात्ती। गंगाबऊ बाकौं ऐसी घरेलू दवाई-दारू बतात्तीं कै बाय बौ दवाई खाउत नईं चैंन पर जात्ती। ऐसेईं बे ढुलकी बजाबे में उर गाबे में भौत हुसियार हतीं। दुपरिया में बे सो लेत्ती उर रात कैं जगत हतीं।

जा मारैं उनके पुरा भरे में कभउँ भँड़याई नई भई। इन गुनन से गंगाबऊ ने सबकौ मन जीत लओ हतो उर समूचौ गाँव बऊ कौ भौत चाउत हतो, उनकौ आओ-आदर करत्तो।

गंगाबऊ के मड़ा के कौंने-आँतर चखिया धरी ती। रातै जभइँ उनकौ मन होत तौ, बे चखिया पीसन लगत्तीं उर भजन, गारीं बनरा, दादरे, चाएं कछू जोर-जोर से गाँउन लगत्तीं। कभउँ-कभउँ तौ बे अपएं मन सेईं बनाकें गाउंन लगत्तीं।

एक बेर आदी रात कै गंगा बऊ चखिया चला रई तीं। तौनी बखरी के पछीतें बइ गांव के चार भँड़या आ गए। बे गंगाबऊ की बखरी में भँड़याई के लाँने धंसबे कौं इते-उतै देखन लगे। भाग्ग सें, बइ बेरै बऊ के सामूँ दो चौंखरे उचकत- कूँदत आकें इतै-उतै देखन लगे। उन चौंखरिन कौं देखकैं बऊ गाँउँन लगी -

''टुकुर-टुकुर का हेरियो रघबन्सी बना?''

जैसेंईं जौ गाबौ भँड़यन ने सुना, उन्नें सोची कै 'बऊ नें हमें देख लओ।'

तीँनों बे दोई चौखरे एक दूजे नौं मौं से मौं मिलाकें बतकाओ-सी करन लगे, जैसे कछू मिसिल लगा रए होंय। जौ देखकें बऊ ने गाओ -

''घुसुर-घुसुर का घोकियो रघबन्सी बना?''

बइ बेरै उतै पछीतैं ठाँड़े भँड़या आपस में खुसुर-पुसुर करकें खपरैल पै चड़बे की मिसिल लगा रए ते। उन्ने बऊ की गाबौ सुनौ सो बे समजे कै ''बऊ कउँसे हमें लखें बैठी है, सो अब हमें खपरैल पै नईं चड़ै चइये। जासें तौ अब हम सेंद लगा लेवें।'' आपुस में जौ सरोदी करकें उनने भीत खोदबौ सुरू कर दओ।

तीनों इतै मड़ा में उन चौंखरिन ने कछू खकोबौ सुरूँ कर दओ। जौ ऐरौ सुनकें बऊ ने गाओ - ''खुदुर-खुदुर का खोदियो रघबन्सी बना?''

अब तौ मँड़यन कौं जौ बात जँच गई कै बऊ हमें कउँ सें देख रई है। चखिया की डड़ा ढीली हो रऔ तौ सो बऊ ने जैसेंईं डड़ा ठाकी, तैसेंई बे दोई चौखरे गद्‌द-बद्‌द दैकें भगे। उन चौंखरिन कौं देखकें बऊ कौं हंसी आ गई और बऊ देर तक गाउत रईं - ''मार छलांगन बे भगे रघबन्सी बना।''

जौ सुनतइ भँड़यन कौं पूरौ विस्वास हो गओ कै बऊ ने हमें पक्के में देख लओ है। कउँ बे हमें चीन ना लेवैं, तासें अब तुरतइँ भग चलियें। आपुस में जौ सलाय करकें भँड़यन ने खुड़ी लगा दई उर गंगाबऊ गाउत रई :-

''मार छलाँगन बे भगे रघबन्सी बना।''

उतैसें भगे भड़यन ने सरोदौ करी कै 'गंगाबऊ ने कभउँ काऊ की बुरओ नईं करी, जितेक बन परी, बाने बर-हमेस सबई की भली करी। अकेलैं अपुन ने जौ अच्छौ नइँ करौ कै ऐसी भली डुकरिया कै घरै भँड़याई करबे गए।' सो भोर होतइँ बे चारउ भँड़या गंगाबऊ के घरै आए। बऊ के चरनन में गिरकें बे रो-रो कें माफी माँगन लगे। बऊ की समझ में कछुअइ नइँ आई। बऊ ने पूँछबे पै उन्ने बताई कै ''रातै हम चारउ जनें तुमाए इतै भँड़याई करबे कौं आए हते। अकेले हम जासें भग गए कै तुमने हमें देख लओ ती, उर आँखिन देखी हाल तुम गा-गा कें सुना रईं ती -

टुकुर-टुकुर का हेरियो रघवन्सी बना?
घुसुर-घुसुर का घोकियो रघबन्सी बना?
खुदर-खुदुर का खोदियो रघबन्सी बना?
मार छलाँगन बे भगे रघबन्सी बना?

भँड़यन ने अपनी पूरी बात सुनाई जौ सुनकें गँगाबँ हंस परीं उर बोली - ''भैया! हमने तुमें काय कौं देखी? हमाएँ तौ दो चौंखरे रातै खूबई धमा-चौकरी कर रए ते। उनमें देखकें हम बौ गा रए ते।''

तौऊ भँड़या अपनी करनी पै पानी-पानी होकें बऊ से माफी माँगत रए। गंगाबऊ-सें उन्नैं कभउँ भंड़याई ना करबे कौ बचन हारौ उर बऊ ने उनैं माफी दै कैं नोंनी बुद्धि उर दान-ध ान्य से सम्पन्न होबे की आसीसें दईं।

जा तराँ सें चौखरिन के आबे सें, गंगाबऊ के गाबे सें उनकी भँड़याई होबे सें बच गई उर उन भँड़यन ने बइ दिना सें भँड़याई छोड़ दई, सो उनकी जिन्दगी सुदर गई।

- केशवकुल, ३५२, नानक गंज,
सीपरी बाजार, झांसी

बुन्देली रासो काव्यों में १८५७ का स्वतंत्रता संग्राम

– डॉ. श्यामबिहारी श्रीवास्तव

बुन्देलखण्ड के रासो साहित्य पर शोधकार्य करते समय मुझे कुछ ऐसे भी रासो उपलब्ध हुए जिनमें १८५७ के स्वतंत्रता संग्राम की घटनाओं का विश्वसनीय वर्णन हुआ है। जिन रासो और कटक रचनाओं में १८५७ के स्वतंत्रता संग्राम का वर्णन हुआ है, उनमें प्रधान कल्याणसिंह कुड़रा रचित 'झांसी कौ रासो', मदनमोहन द्विवेदी मदनेश रचित 'लक्ष्मीबाई रासो', द्विजकिशोर रचित 'पारीछत कौ कटक', भैरौंलाल रचित 'भिलसांय कौ कटक', भग्गी दाऊजू 'श्याम' रचित 'झांसी कौ कटक' आदि मुख्य हैं। आधुनिककाल में जालौन निवासी डॉ. आनन्द ने 'झांसी की रानी' शीर्षक महत्वपूर्ण प्रबंध काव्य लिखा और झांसी के पं. द्वारिकेश मिश्र ने 'लक्ष्मीबाई चरित' महाकाव्य लिखा है। इनके अतिरिक्त सुभद्रा कुमारी चौहान की 'झांसी की रानी' कविता तो जनमानस में सहज रूप से रम गई है। बुन्देलखण्ड के स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों और क्रांतिकारियों पर अन्य कवियों और लेखकों ने समय-समय पर बहुत कुछ लिखा है जिसे शोधकार्य द्वारा एकत्रित किए जाने की आवश्यकता है।

१८५७ में अंग्रेजों के दमनकारी शासन का कहर झांसी अंचल पर ही अधिक ढाया गया। दतिया और ग्वालियर रियासतें अंग्रेजी शासन से मित्रता का भाव रखती थीं इस कारण क्रांतिकारी और स्वतंत्रता सेनानी दूसरे राज्यों से अपनी गतिविधियां संचालित करते थे। विष्णुभट्ट गोडसे ने 'मांझा प्रवास' में १८५७ की घटनाओं का आंखों देखा वर्णन किया है जिसे पढकर सहज ही अंग्रेजी अत्याचारों के विरुद्ध आक्रोश उत्पन्न हो जाता है। विनायक दामोदर सावरकर की कृति "१८५७ का स्वतंत्र्य समर" में प्रथम स्वतंत्रता संग्राम की घटनाओं का तथ्यात्मक एवं प्रेरणात्मक विवरण प्रस्तुत किया गया है। इस आलेख में केवल बुन्देलखण्ड बुन्देलखण्ड के रासो काव्यों में वर्णित घटनाओं पर ही संक्षेप में प्रकाश डाला जाएगा।

'झांसी कौ रासो' में कल्यानसिंह कुड़रा ने रानी लक्ष्मीबाई तथा अंग्रेजी सेनाओं के बीच हुए झांसी, कालपी और ग्वालियर के युद्धों का वर्णन किया है। यह रचना १८५७ के स्वतंत्रता संग्राम के मात्र बारह वर्ष बाद सन् १८६९ में लिखी गई है। इससे कवि ने ताजा स्मृतियों के आधार पर यथा तथ्य वर्णन किया होगा। ब्रिटिश शासकों ने महारानी लक्ष्मीबाई और राजा गंगाधर राव के द्वारा गोद लिए पुत्र दामोदर राव को उत्तराधिकारी न मानते हुए जब लक्ष्मीबाई के पास झांसी का राज्य छोड़ देने और किला खाली कर देने का आदेश भेजा तब वीरांगना रानी ने बारूद और पांच गोलियां जबाब में भेजकर अंग्रेजों को युद्ध करने की सूचना दे दी थी। झांसी में कई दिनों तक भीषण संग्राम हुआ था। जन धन की भारी हानि हुई थी। कालपी से तात्या टोपे और बानपुर के राजा मर्दनसिंह भी अपनी सेनाएं लेकर आ गए थे परन्तु अंग्रेजी सेनाओं के घेरे को तोड़कर वे लक्ष्मीबाई की मदद के लिए अंदर नहीं पहुंच सके थे। यदि उस समय तात्या टोपे और मर्दनसिंह की सेनाएं झांसी की सेनाओं के साथ मिल गई होती तो संभवतः झांसी उस समय लक्ष्मीबाई के हाथ से नहीं निकलती और झांसी दुर्ग की अपार सम्पदा अंग्रेजों के हाथ न लग पाती।

'झांसी कौ रासो' में कोंच तथा कालपी में अंग्रेजों तथा लक्ष्मीबाई के मध्य हुए युद्धों का संक्षिप्त वर्णन ही है। अंतिम युद्ध ग्वालियर का है जहां मुरार के निकट अंग्रेजों की विशाल सेना से युद्ध करते हुए वीरांगना लक्ष्मीबाई वीरगति को प्राप्त हुई थी। कल्याण सिंह कुड़रा ने लिखा है कि रानी लक्ष्मीबाई की वीरगति के पश्चात ऐसा वीर और संघर्षशील योद्धा दिल्ली तक में नहीं बचा था। एक छंद इस प्रकार है –

"ता दिन तैं दिल्ली दर मजलन नौ खाली भई,
और नृपनाह काहू आंख ना चढ़ाई है।
संकट सहेट दर दक्खिन अरु पूरब लौं,
देखी लाहौर तैं बुन्देलखण्ड ताई है।।
कहत कलियान बान राखी परमेसुर नैं,
बांकौ कर साकौ सुरलोक कौं सिधाई है।
सूर कौं सराहैं तौ गुनीन गुन गावें हाल,
बाई की लराई की जहान में बड़ाई है।।

मदनोहन द्विवेदी 'मदनेश' ने लक्ष्मीबाई रासो की रचना सन् १९०४ में की थी अर्थात् १८५७ के स्वतंत्रता संग्राम के सेंतालीस वर्ष पश्चात् यह रचना लिखी गई। यह कृति खंडित रूप में प्रकाशित है। डॉ. भगवानदास माहौर को केवल आठ भाग ही उपलब्ध हो सके थे। इसमें १८५७ के युद्ध की कुछ महत्वपूर्ण बातें हैं परन्तु खंडित होने के कारण लक्ष्मीबाई तथा अंग्रेजी सेना के मध्य हुए युद्धों का विवरण इसमें नहीं है। कवि ने १८५७ के स्वतंत्रता संग्राम का तात्कालिक कारण चमड़ा लगे कारतूस बतलाया है, यहीं से रासो का प्रारंभ हुआ है। लंदन से एक फरमान आया था कि जो सिपाही चमड़ा की टोपी वाले कारतूस इस्तेमाल करने से इनकार करे उसे नौकरी से निकालकर दण्डित किया जाए। इस तरह अंग्रेजी सेना के बहुत से हिन्दू मुसलमान सैनिकों ने विद्रोह कर दिया था। उन्हीं सिपाहियों में से कुछ झांसी के क्रानितकारियों से आ मिले थे। इन्होंने लक्ष्मीबाई की स्पष्ट आज्ञा के बिना ही झांसी में अनेक अंग्रेजों को मार डाला था। अंग्रेज इतने घबरा गए थे कि झांसी में ढूंढने पर भी अंग्रेज नहीं मिलते थे ऐसा वर्णन 'मदनेश' ने किया है। इसी घटना से क्रुद्ध होकर अंग्रेजों ने एक विशाल सेना बुन्देलखण्ड में भेज दी थी जिसने झांसी में तबाही मचा दी। मदनेश जी ने लक्ष्मीबाई रासो की विषयवस्तु को रोचक बनाने के लिए समाजिक और सांस्कृतिक पर्वो और त्यौहारों का अच्छा चित्रण किया है। ओरछा की रानी लिड़ई सरकार के दीवान नत्थे खां द्वारा झांसी पर सैन्य आक्रमण तथा उसके विरुद्ध लक्ष्मीबाई के द्वारा किए गए युद्धों

का इस रासों में विस्तार से वर्णन हुआ है।

युद्ध वर्णन के लिए 'कटक' नामक रचनाएं लिखने की परम्परा भी मिली है। बुन्देलखण्ड के लोक कवि द्विजकिशोर ने 'पारीछत कौ कटक' की रचना वीरगीतों के रूप में की थी। सन् १८४०-४२ में जैतपुर के राजा पारीछत बुन्देला ने अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया था। अंग्रेजी सेनाओं ने पारीछत के विद्रोह को दबाया। झड़पें हुईं और राजा को कैद कर कानपुर जेल में डाल दिया था। पारीछत की रानी फत्तमवीर देव ने अंग्रेजी शासन का विरोध जारी रखा था। रानी ने जैतपुर के अलावा और भी ठिकाने युद्ध करके अंग्रेजों से छीन लिए थे। दीवान देसपत बुन्देला तथा राव बखतबली ने पारीछत की विधवा रानी का अंग्रेजों के विरुद्ध भरपूर सहयोग किया था। देसपत बुन्देला ने तो सन् १८६२ तक अंग्रेजी शासन के विरुद्ध क्रांतिकारी गतिविधियां जारी रखीं थी।

मनकहरी के शासक रणमतसिंह ने अंग्रेजी शासन की ज्यादतियों के विरुद्ध जोरदार संघर्ष किया था परन्तु अंग्रेजों के कुछ वफादार देशी राजाओं और जागीरदारों ने इन्हें सफल नहीं होने दिया था। 'भिलसांय की कटक' में बुन्देलों और बघेलों के ऐसे ही संघर्षों का वर्णन है। रणमतसिंह बघेल तथा अजयगढ़ के दीवान केशरीसिंह के बीच हुए युद्ध का वर्णन 'भिलसांय की कटक' में है। केशरीसिंह अंग्रेज परस्त थे जबकि रणमतसिंह एक क्रान्तिकारी था। कोठी, जिला सतना के निकटवर्ती मनकहरी निवासी क्रान्तिकारी रणमतसिंह ने १८५७ के स्वतंत्रता संग्राम के समय अत्याचारी अंग्रेजों का नृशंसतापूर्वक वध किया था। अंग्रेजों ने रीवा के राजा के माध्यम से रणमत सिंह को पकड़वा कर कुछ साथियों सहित प्राण दंड दे दिया था।

विषयवस्तु की दृष्टि से 'पारीछत की कटक' तथा 'भिलसांय की कटक' की घटनाएं १८५७ के स्वतंत्रता संग्राम की उन व्यापक जड़ों से जुड़ी हुई हैं जिनकी वास्तविकता का पता चलने पर क्षोभ होता है कि सत्ता के लोभ में किस तरह कुछ देशी राजाओं ने स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों और क्रान्तिकारियों को आश्रय नहीं दिया बल्कि उन्हें पकड़वाकर ब्रिटिश शासकों को सौंप देते थे। एक जुटता के अभाव में, छोटे-छोटे स्वार्थों और रंजिशों के कारण बुन्देलखण्ड के रणबांकुरे ब्रिटिश सत्ता से न लड़कर आपस में ही लड़कर अपनी शक्ति खो रहे थे और अंग्रेजों के पांव मजबूत कर रहे थे। अधिकांश देशी रियासतों ने क्रांतिकारियों को कुचलने में ब्रिटिश सेनाओं का जमकर सहयोग किया था। तब वे 'मातृभूमि का मान', भारत माता और देशभक्ति जैसे शब्दों से संभवत: परहेज करते थे। कूटनीतिक चालाकियों में माहिर अंग्रेजों ने पद प्रतिष्ठा तथा जागीरों का लोभ दिखाकर देशी राजाओं, जागीरदारों और ताल्लुकेदारों को मोह की मदिरा पिला दी थी जिससे वे आपा भूलकर अपनों को ही मारने एवं बर्बाद करने में लगे हुए थे। पन्ना, बिजावर, चरखारी, रीवा, छतरपुर आदि रियासतों के राजा खुलकर अंग्रेजों का साथ दे रहे थे। वे क्रांतिकारियों को न तो सहायता देते थे और न अपने राज्य की सीमाओं में ठहरने दे थे। इन्हीं बातों को लेकर उनमें आपस में झड़पें होती रहती थी। इन गतिविधियों का सच्चा हवाला उस काल के लोक कवियों के गीतों मे पाया जाता है।

'झांसी की कटक' भग्गीदाऊजू 'श्याम' ने लिखा। ये झांसी के जन कवि थे और १८५७ के स्वतंत्रता संग्राम की घटनाओं के प्रत्यक्षदर्शी थे। ये देश भक्त थे। अंग्रेज भक्त गद्दारों के प्रति इन्होंने 'झांसी कौ कटक' के छंदो में कठोर शब्दों का प्रयोग किया है। इनके द्वारा १८५७ की घटनाओं का सिलसिलेवार वर्णन किया गया हो ऐसा तो पता नहीं चला पर इनके छंद और गीत जोश तथा आक्रोश पैदा करने वाले हैं।

— सेंवढ़ा, दतिया म.प्र. 卐

गारी —

नादान बलम की

— स्व. प्यारे जू

नादान बलम वारे के संग में, उमंग भरी रही अंग में
मोरी सुनों परौसन गुईयाँ, ऐसे मिले हमें जे सैयाँ।
जिन खाँ नेक सहूरी नैयाँ, बारे लायक लैवें कैयाँ।
पग जामत नहीं मदन मथन जंग में, उमंग भरी रही अंग में।।
पुटया पैछ सेजपै लाई, कैदई दैबी चलौ मिठाई
उनके तनक ना बस की बाई, रोरो मेंने रैन गमाई
पिया जानत ना रति रस के जंग में, उमंग भरी रही अंग में।।
दौरे जात मात से कावैं, रो रो मौरो हाल बतावैं
सुनके सास आग हो जावे, औधी सीधी मोसी कावे
गुण भरे बहुत बिरहुलीया बंग में, उमंग भरी रही अंग में।।
सुन लो प्यारे जू हम कहिये, ई के मारै नही निभ्ैये
कैसे हंसीये और हसईये, यैसी लगत अन्त भग जैये।
करत फदियत जा चढ़ी है अतंग में, उमंग भरी रही अंग में।।

गारी —

नादान औरत की

— स्व. प्यारे जू

मोय सरवर कौ करौ नहीं तंग ना, अबै पिया कछू रंग ना।
जोतन आय तुमारे लानै, तुमखाँ सौपो मात पिता नै,
कहे पिया जिया ना मानै, हमखाँ और हैन दो स्यानै
कच्ची कलियन में करौ नही भंगना, अबै पिया कछू रंग ना।
सोभा देत जौन विध नारी, ना कछू छतियाँ अबै हमारी।
ना भई रजो धरम की त्यारी, तासे अर्ज करत हीं भारी,
मोरे मदन बदन भूप की उमंगना, अबै पिया कछू रंग ना।
जो तुम ल्याये गमन हमारौ, दो एक साल जतन से टारौ
नाहक डारत अबै दबारौ, प्यारे मन्न में धीरज धारौ
झग झोरौ ना सहै मोरे अंग ना, अबै पिया कछू रंग ना।
विनती करौ परौ में पैयां, छोड़ौ-छोड़ौ अबै रस नैयाँ।
देखौ नरम कलैयाँ सैयाँ, मोरी अबै उमर लरकैयाँ
दिल चायै ना भायै प्रसंग ना, अबै पिया कछू रंग ना।

— सौजन्य से भगवानदास कुशवाहा 'सभापति', सरानीगेट के बाहर, छतरपुर 卐

बिटिया की पढ़ाई

– डॉ. कमलेश

आज के जमाने में बिटिया कों पढ़ावी भौत जरूरी है। काय के आज की बिटिया आगूँ चलके बड़ी होकें काऊ की घरवारी और काऊ की माँ बनहै और एक नई दो परिवारन की बगियाँ अपने अच्छे गुणँन से चतुरई की सूझ-बूझ की सुवास सें महका है। बिटिया (स्त्री) घर मालकिन और घर की निर्माता कहाउत है। दुनियाँ में हर बड़े आदमी के पाछें स्त्री को ही हात रत है। बिना जनी के आज तक ऊँची नाव, जश, मान, सन्मान, कोऊ नई पा सको।

अगर जनी हुश्यार है तो आदमी बेफिकर होके अपनो काम करत है और अपने जीवन में सब तरा की सफलता को पाउत है। जासें जो जरूरी है कि बिटिया पढ़ी-लिखी होंय चइये नई तो पूरौ परिवार बात की बात में बरबाद हो सकत है। जासें घर के बच्चन कों सुधारवे कों अच्छी रास्ता चलावे को चरित्रवान बनावे को माँ की पढ़ी लिखौ होवो भौत जरूरी है।

अपने बच्चा मोड़ी-मोड़ा जैसी संगत में रत है वई में रंग जात है अगर माता पढ़ी-लिखी हुइये तो विद्या और बुद्धि को उनपै अच्छौ असर पर है काये के बच्चन की पहली गुरु मताइ अई होत है। सबसे जादां मताई केंई संगे रत हैं। जो कऊँ अच्छी संगत न मिली तो वे बिगर जात हैं और अच्छी संगत पाई तो बड़े होके वे घर-परिवार को नाव उजागर करत हैं महान बनत हैं, सत्पुरुष बनत हैं।

जासें शिक्षा (पढ़बे-लिखबे) कौ अपने जीवन से अटूट सम्बन्ध हैं ई के बिना सभ्य-समाज की कल्पना ही नईं करी जा सकत। बिना शिक्षा के हमाई सब तराँकी तरक्की होई नईं सकत। तांसें बिटियँन की शिक्षा उतनी ही जरूरी है जितनी कै बेटँन की। पढ़ी-लिखी (शिक्षित) बिटिया ही तरक्की की मंजिल पै कदम बढ़ा सकत है और अपने गुणँन से घर को सुरग समान और आँगन को सुख की फुलवारी बना सकत है।

''शिक्षा'' दो शब्दन से मिलकें बनत है। शि+क्षा। 'शि' को अरथ होत है शीलवान 'क्षा' को मतलब होत है – क्षमावान, धीरजवान यानी पढ़ी-लिखी आदमी होय, चाँय औरत चाँय बेटा, चाँय बिटिया उनमें ऊपर बताये गुन आजात हैं। उनमें शारीरिक, मानसिक नैतिक गुनँन की बढ़ोतरी हो जात है। जोई सच्ची शिक्षा कहाउत हैं।

पढ़ी लिखी बिटिया ही अपने करतब धरम, आचरन को अच्छी तरियाँ पालन कर सकत है। बिना पढ़ी लिखी बिटिया तो वा राक्सी के समान होत है जो अपनी नासमझी से अज्ञानता से अपनेई परिवार को खा कें तहस-नहस कर देत है। प्राचीन काल में भी बिटियँन की पढ़ाई की जानकारी अपने पुराने ग्रंथन से मिलत है। जैसे गार्गी, मैत्रेयी, मदालसा, अनुसुइया, सीता, सावित्री आदि ने शिक्षित होके अपनो नाव अमर कर लयो।

मध्यकाल में भी दुर्गावती, अहिल्याबाई, लक्ष्मीबाई, जीजाबाई, जैसी वीर विदुषी नारियँन ने देश की माथौ ऊँची करौ। और आज तो बेटियाँ घर की चार दीवारी नाँकके पुरुषँन के संगे कँधा से कँधा मिलाकें जीवन संग्राम में आगूँ कदम बढ़ा रई हैं। राजनैतिक, सामाजिक, विज्ञान, चिकित्सा, पुलिस, मिलेट्री, हवाई सेना, नौ सेना सब क्षेत्रन में आगें बढ़ रई हैं। काउ कवि ने कई है कै -

सौ बेटन सें बढ़कें बिटिया, एक जवाहर लाल की।
राजनीति में निपुन हती, और हिम्मत हती कमाल की।।

ऐसेई राजनीति में केई बहिनें, बिटिया आँगू बढ़ रई है। अफसँरन में किरन बेदी, खेलँन में सानियाँ मिर्जा, अंतरिक्ष यात्रा में चावला आदि बहिनन ने अपने देश की शान बढ़ाई है।

अकेंले गाँवन में आजऊँ बिटिया अधिकांश अशिक्षित हैं तथा कठिनाई को जीवन जी रई है। उनसे हमाओ जोई कैवो है कै-

पढ़े, लिखें सब बेटियाँ, अनपढ़ रहें न कोय।
रही अँगूठा टेक तो, जगत हँसाई होय।।
पालक हैं बेई चतुर, उनकी ऊँची शान।
जिनके घर में बहू-बेटियाँ पढ़ी लिखी विद्वान।।

बिटिया (नारी) की तुलना धरती माता से करी जात है। जैसे धरती माता सब तरा के कष्ट सैंके सारे संसार को सुख पहुँचाउत है पालन पोषन करत है ऐसेंई पढ़ी-लिखी शिक्षित बिटिया अपने परिवार को पालन पोषण करत है। पढ़ी-लिखी बिटिया अपने परिवार पै विपत्ति, खराब दिना आवे के समै नौकरी करकें परिवार की माली हालत कोऊँ सुधार सकत हैं।

समाज में फैली कुरीतियँन को मेंट सकत है, लिंगभेद, भ्रूण हत्या, बाल विवाह परिवार नियोजन, ब्याओ-शादियँन की फिजूलखर्ची, अंधविश्वास, जादू, टोटका, टोना आदि की जड़ सें नाश कर सकत है।

गाँवन में कई जात है के बिटिया को तो चूल्हो-चौका करने उनको पढ़बे की का जरूरत, अरे भैया जब बिटिया पढ़ी-लिखी हुइये तो वो पाककला की सीख के चूल्हो-चौका को कभऊँ और अच्छी तराँ से करन लग है। अब तो बिटियँन की पढ़ाई में कौनऊँ खर्चा भी नहीं होत है। सिरकार ने कइयक जोजनायें चलाई हैं जिनमें निःशुल्क किताबें, साइकिलें, दई जा रई हैं। अपनी केन्द्र की सिरकार और मध्यप्रदेश की सिरकार सराहनीय कार्य कर रई है। बिटियन की पढ़ाई के लाने सब तरा की सुविधायें दे रई है। हमें इनको लाभ उठाय चइये और सब गलत फहमियँन को छोड़ कें बिटियँन को पढ़ाँय चइये।

आखिर में हमाई सब भैया-बैनन सें जोई विनती है कै -

अब तो अपनों राज अबहुँ कछु करनी करलो भैया रे।
अशिक्षा अपनों करें बिगार।
पढ़ाओ बिटियँन कों तुम यार।
पढ़े से सब कोउ करत पियार।
पढ़ गुन के गांधी लयो, अँगरेजन सें राज
पढ़ गुन के इन्द्रा बनी भारत की सरताज
बड़ी बड़ी अफसर हैं बन गई
कइयक बहुयें बिटियाँ रे। अब तो अपनों...

– आलमपुर, भिण्ड, (म.प्र.)

बुन्देलखण्ड के लुप्तप्राय पारंपरिक खेल

— कु. रामकिशोरी गुप्ता

जीवन मे खेलों का शारीरिक एवं बौद्धिक क्षमताओं के विकास तथा मनोरंजन की दृष्टि से बहुत महत्व है। नौरता, मामुलिया आदि खेलों से बालिकाओं में कलात्मक रुचि का विकास होता है। हमारे लोक जीवन में शिशुओ से लेकर बड़े-बूढ़ों तक खेलों का प्रचलन था। जैसे कौड़ी केरे कौड़ी के, थाई-थाई थपरी, अटकन-चटकन, आलो-बालो खेल शिशुओं के लिए गिल्ली-डण्डा, छिवा-छुआैअल, नागन टापू, आँख मिचौली किशोरों के लिए, अण्डा-डावली, ओद-बोद, कबड्डी युवकों के लिए चंगला और पड़ा छिकऊअल जैसे बड़े-बूढ़ों के खेल थे। गेंद के खेल तो प्राचीन हैं श्री कृष्ण के युग से ही इसका संदर्भ मिलता है। गीत के बोल हैं:-
"एक समय श्री कृष्ण कन्हैया खेलन गेंद सिधारे यमुना के किनारे।"

इसी प्रकार लड़कियों के खेलों में मामुलिया, छोटी कन्याओं के लिए नौरता, झुलमा आदि किशोरियों के लिए छक्का चपेटा का खेल तो बच्चियों से लेकर प्रौढ़ महिलाएँ तक सावन के महीने में खेलती हैं। प्रायः इन खेलों में किन्हीं उपकरणों या कीमती साधनों की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। इन खेलों की विशेषता यह थी कि किसी के मन में यह हीन भावना पैदा न हो कि मेरे पास खेलने की अमुक वस्तु नहीं है। गेंद, पुतरा-पुतरियाँ (गुड्डा-गुड़ियां) रंग, चपेटा आदि बच्चे हाथों से और स्थानीय साधनों से बना लेते थे।

इन लोक प्रचलित खेलों में से ग्रामों में अभी भी थोड़े बहुत बाकी है। किन्तु वह भी तेजी से समाप्त होते जा रहे हैं। शिशुओं के खेलों का प्रारम्भ लय-ताल के साथ गाये जाने वाले गीतों से होता है। इसमें यह आवश्यक नहीं कि गीत अर्थपूर्ण हो, आवश्यक है गीत में लय का होना। ऐसे गीतों में तुकबन्दी तथा लय होती है। ये खेल छोटे-छोटे बच्चों को बहुत भाते हैं। गीत भरे इन खेलों का तो आनन्द ही कुछ और है। ऐसे गीतों में बच्चों का स्वस्थ मनोरंजन तो होता ही है संगीत और कला के प्रति उनकी रुचि का विकास भी होता है। खेलों में शरीर के विभिन्न अंगों के संचालन से उनमें क्रियाशीलता की वृद्धि होती है, जो शारीरिक विकास में सहायक है। दुर्भाग्य कि इन पारम्परिक खेलों के प्रति हमारी मानसिक रुचि दूर होती जा रही है। बच्चों के कुछ लुप्तप्राय गीत मय खेलों का विवरण निम्न है -

१. **कौड़ी केरे कौड़ी के** - इस खेल को खिलाने वाला वयस्क जमीन अथवा पलंग पर चित्त लेट जाता है और अपने दोनों पैरों को सटाकर घुटनों को मोड़कर पैर के पंजों को ऊपर की तरफ उठाकर उन पर शिशु को बैठा लेता है। शिशु मुड़े हुए पैरों के घुटनों को कसकर पकड़ लेता है। खिलाने वाला भी बच्चे के दोनों कंधों को अपने हाथों से पकड़े रहता है। अब गीत आरंभ होता है -

कौड़ी के रे कौड़ी के, भैया पाँच पसेरी के,
उड़ गए तीतुर बस गए मोर, सरी डुकरिया ले गए चोर
चोरन के घर खेती भई, वा डुकरिया मोटी भई
मन-मन पीसे मन-मन खाय, बड़े गुरु से जूझन जाय
जूझ-जूझ सें छपन छुरी उते से निकरी मदनपुरी।
मदनपुरी से आये वीर, सौ-सौ करया बाधें तीर
एक तीर मैंने माँगो तो, दिल्ली जाय पुकारो तो
कारे हैं करयानसा, गोरे हैं गुरयानसा
भैंस को सींग पोलो, पत्ताल पानी डालो
राजा को कुँवर ब्याहन जात है
कोउ छींकियो न, कोउ पादियो न
छींकें तो नक्कू कटे, पादे तो पुन्दु कटे
डिगडिग डोला, डिगडिग डोला....।

गीत चलता रहता है और खिलाने वाला अपने पैरों को धीरे-धीरे ऊपर-नीचे की ओर हिलाकर शिशु को झुलाया जाता है। गीत की अन्तिम पंक्ति के समय वह अपने पैरों को ऊपर की तरफ उठाकर जल्दी-जल्दी शिशु को झुलाता है। वह शिशु आनंदित हो उठता हैं तथा बार-बार इस खेल को दुहराने का सांकेतिक आग्रह करता रहता है।

२. **थाई-थाई थपरी** - खेल खिलाने वाला बच्चे के एक हाथ के पंजे की सभी अंगुलियों को अपने एक हाथ से पकड़ लेता है तथा दूसरे हाथ की अंगुलियों से बच्चे के हाथ की हथेली को थपथपाते हुए गीत गाता जाता है -

थाई-थाई थपरी, गैया ब्यानी कबरी, बछड़ा भयो सेत, नाम धरो गनेश।।

गीत समाप्त होने पर बच्चे के पकड़े हुए पंजे की एक-एक अंगुली को क्रमशः पकड़ा जाता है तथा कहता है - जा बब्बा की, जा बऊ की, जा कक्का की जा काकी की। अन्त में अंगूठा को पकड़कर उसे फिरकी की तरह घुमाते हुए कहता है ऊँठा चोर मचोर डुकरिया, डूडा बैल आव डुकरिया, बासन भाड़े उठा डुकरिया। इन पंक्तियों को कहते हुए खिलाने वाला अपनी अंगुलियों को हथेली, कनखी (काँखरी) तक धीरे-धीरे चलाते हुए ले जाता है। अब अंगुलियां कनखी में पहुँचती है तो वह बच्चे को धीरे से गुदगुदाता है जिससे बच्चा खिलखिलाकर हंसने लगता है इस खेल में रोते हुए बच्चे चुप हो जाते हैं।

३. **अटकन-चटकन** - खिलाने वाला बच्चों को अर्द्ध चन्द्राकार रूप में बैठा लेता है और बच्चों से अपनी-अपनी दोनों हाथ की हथेलियों को जमीन पर रखने को कहता है फिर इन हथेलियों को उंगलियों के सहारे ऊपर उठाने (खड़ा करने) को कहता है। इस प्रकार जो आकार बनता है उसे घुल्ला कहा जाता है। खिलाने वाला निम्न गीत गाते हुए अपने हाथ की तर्जनी (उंगली) एक-एक कर सभी घुल्लों पर रखता जाता है। "अटकन-चटकन, दही चटाकन। बाग फूले, बगिया फूले, बारामास करेला फूलें। फूल-फूल बंजारी के, बाबा कैसी बारी के। बाबा लें आव आंवरे झांवरे एक कऔरी फूट गई, ता पै बऊ रूठ गई। बऊ के भयो लड़का बिछा

दो रानी पलका।" गीत का अन्तिम शब्द आने पर उंगली जिस घुल्ला पर होती है उससे प्रश्न किया जाता है जो घुल्ला कां से आव? बालक उत्तर देता है यह घुल्ला अमुक स्थान से आव। वह फिर प्रश्न पूछता है काय के लाने आव? बच्चा उत्तर देता है पानी पीवे खों आव। खिलाने वाला कहता है हम पानी नई पिआउत। बच्चा उत्तर देता है पानी नई पिआव तो हम कुत्ता उलछारें। खिलाने वाला बच्चे के घुल्लानुमा पंजे को धीरे से जमीन पर दबा देता है और कहता है बैठ घुल्ला पानी पी। बालक अपना पंजा खेल में से खींच लेता है। गीत और खेल की यह क्रिया तब तक चलती रहती है जब तक सभी बच्चों के घुल्ला पानी नहीं पी लेते।

अब शुरू होता है खेल का दूसरा भाग। सभी बच्चे अपने दोनों हाथों की हथेलियां अपने घुटनों पर रख लेते हैं। खिलाने वाला एक-एक बच्चे से पूछता है चिटिया लेव कि चिंटा। बच्चे ने यदि चिटिया कहा तो खिलाने वाला बच्चे के पंजे के ऊपर त्वचा को अपने हाथ की चुटकी को धीरे से दबाकर पंजे को घुटनों से उठाकर जमीन पर रख देता है। बच्चे के चिंटा कहने पर चुटकी को थोड़ा अधिक दबाकर पंजा जमीन पर रखा जाता है तात्पर्य है चिंटा और चिंटी के काटने में फर्क तो है ही। सभी बच्चों के पंजे जब जमीन पर आ जाते हैं तब खिलाने वाला अपने हाथ का पंजा बच्चों के पंजों के ऊपर घुमाते हुए लीपने का अभिनय करते गीत गाता है - "लीपा-पोती, चौतरिया, नजर लगा दई परवतिया।" गीत का अन्तिम शब्द परबतिया जिस बच्चे के पंजे पर आता है उससे पूछा जाता है जा छिटी की फेकें तुमाई बगिया में। बच्चा मना करता है। फिर पूछा जाता है तो बताओ कां फेकें? बच्चा कहता है बाबा जू के घूरे पें और छिटी फेंकने का अभिनव खिलाने वाले द्वारा किया जाता है। इससे बच्चों में स्वच्छता के प्रति जागरूकता उत्पन्न होती है। यह क्रिया तब तक चलती है जब तक कि सभी बच्चों का नम्बर न आ जाये।

अब खेल का तीसरा भाग प्रारंभ होता है। खिलाने वाला अपने हाथों की मुट्ठी बांधकर एक मुट्ठी को जमीन पर खड़ा करता है। मुट्ठी का अंगूठा ऊपर की तरफ उठा रहता है। दूसरे हाथ की मुट्ठी अंगूठे में फँसाकर पहली मुट्ठी पर रखी जाती है। ऊपर वाली मुट्ठी का अंगूठा भी ऊपर की ओर खड़ा रहता है इसी प्रकार सभी बच्चे अपने हाथों की मुट्ठियां बांध-बांध कर एक-दूसरे की मुट्ठी पर रखते जाते हैं। सबसे ऊपर वाली मुट्ठी का अंगूठा ऊपर की ओर खड़ा रहता है। जो सुआ कहलाता है। सभी बच्चे मिलकर कहते हैं "बब्बा बब्बा तुमाए पेड़ पे हरिया बैठो।" खिलाने वाला पूछता है "का कर रओ।" बच्चे कहते हैं "अमिया खा रओ।" खिलाने वाला कहता है "भगा दो भैया।" बच्चे हरिया के लिए गुफना फेकने का अभिनय करते हैं। सबसे ऊपर वाली मुट्ठी जिस बालक की होती है वह अपने ऊपर उठे अंगूठे को मुट्ठी के अन्दर कर लेता है। जिसका अभिप्राय यह होता है कि हरिया उड़ गया। फिर बच्चे कहते हैं "बब्बा तुमाए पेड़ में अमिया लगी तोड़ लें।" बब्बा कहता है "एक-एक तोड़ लो।" बच्चे आम तोड़ने तथा उसे चूसने का अभिनय करते हुए कहते हैं बब्बा जो आम भौत (बहुत) खट्टो है बब्बा कहता है तो एक-एक और तोड़ लेव भैया। पुनः बच्चे आम तोड़ने और चूसने का अभिनय करते हुए कहते हैं हमाई दोई मीठी। इसके बाद सभी बच्चे अपने अपने हाथ खींच लेते हैं।

खेल का चौथा भाग तीसरे भाग की मुट्ठियों से इमली का पेड़ बनाकर इसी प्रकार खेला जाता है।

४. **आलो-बालो** - इसे दो बच्चे खेलते हैं। वे एक दूसरे के दोनों कानों की लौंड़ी दोनों हाथ से धीरे से पकड़ लेते हैं और एक दूसरे के कानों की लोड़ियों को धीरे-धीरे दबाते हुए गाते हैं - "आलो बालो चना चबालो चींखरियन के कान कटा लो।"

५. **हाथी घोड़ा** - खिलाने वाला अपने पैरों के दोनों घुटनों को मोड़कर जमीन पर रख लेता है और दोनों हाथ के पंजों को जमीन पर रखकर घोड़ा, हाथी बन जाता है फिर एक-एक बच्चे की पीठ पर बिठाकर धीरे-धीरे घुटनों और पंजों के बल चलता है। अन्य सभी बच्चे गाते हैं - "हाथी घोड़ा टन्न गनेस जिनकी पूजा करें महेस।"

इस प्रकार सभी बच्चों को एक-एक, दो-दो बार हाथी घोड़ा पर बैठने का अवसर दिया जाता है। हाथी घोड़ा की सवारी से बच्चे बहुत आनंदित होते हैं। वैसे भी शहर या गांव में अश्विन कृष्ण पक्ष अष्टमी (महालक्ष्मी) तिथि से विख्यात है इस दिन हाथी की पूजा की जाती है महिलाएं हाथी देखकर अपने बच्चों को हाथी पर बैठाती हैं तथा घरों में मिट्टी के बने हाथी की पूजा करती है तथा व्रत रखती है।

६. **कित्तन-कित्तन पानी** - इस खेल में जब बच्चे एक दूसरे का हाथ पकड़कर वृत्ताकार खड़े हो जाते हैं एक बच्चे को वृत्त के केन्द्र में खड़ा कर दिया जाता है जो मछली रानी कहलाता है। अब सभी बच्चे घूमते हुए गाते हैं - 'कित्तन-कित्तन पानी, बोल मछली रानी।' बीच में खड़ा बच्चा अपने पैरों के पंजों पर हाथ रखकर पानी की सतह बताते हुए कहता है 'इत्तन-इत्तन पानी फर वन ऊपर पानी।' इसी क्रम में बच्चे पानी की सतह पूछते हैं और बीच का बच्चा अपने हाथों को क्रमशः ऊपर उठाता हुआ पानी की सतह बढ़ने का संकेत करते हुए क्रमशः बढ़ता है घूटन ऊपर पानी, करयन ऊपर पानी, छातन ऊपर पानी और अन्त में अपने सर के ऊपर हाथ रखकर कहता है डुब्बन-डुब्बन पानी सुन लो सुन लो रानी। अब मछली बना बच्चा वृत से बाहर निकलने के लिए कहता है जेल का ताला तोड़ूँगा। गोलाकार खड़े बच्चे उत्तर देते हैं ठाड़ा मूसर मारूंगा। यह कथन तब तक चलता रहता है जब तक कि मछली बना बच्चा गोलाकार खड़े बच्चों के बीच से बाहर नहीं निकल जाता। अब इस बच्चे को गोले में शामिल कर लिया जाता है। और एक अन्य बच्चा बीच में मछली बनने पहुंच जाता है। इसी प्रकार हर बच्चे को मछली बन जाने पर खेल समाप्त हो जाता है।

७. **घोड़ा है दिमान साही** - इस खेल में सब बच्चे एक दूसरे के सामने मुँह करके गोलाकार में बैठते हैं। इन्हें पीछे की ओर मुड़कर देखना मना होता है। एक बच्चा अपने हाथ में गिंदउआ लेकर बच्चों के पीछे "घोड़ा है दिमान साई, पीछे देखो मार खाई।" गाता हुआ तेजी से चक्कर लगाता है। इसी बीच वह

गिंदउआ को किसी बच्चे के पीछे इस प्रकार चतुराई से रख देता है कि उसे इसका पता न चले और वह गिंदउआ रखकर चक्कर लगाने के लिए आगे बढ़ जाता है यदि इसी बीच उस बच्चे को पता चल गया जिस बच्चे के पीछे गिंदउआ रखा है तो वह उसे उठाकर दौड़ने वाले बच्चे का पीछा करता है और गिंदउआ मारता है जब तक कि पहले दौड़ने वाला बच्चा उस खाली किये बच्चे के स्थान पर नहीं बैठ जाता। यदि जिस बच्चे के पीछे गिंदउआ डाला गया है और उसे इसका पता न चला तो चक्कर लगाने वाला बच्चा चक्कर पूरा कर जब उसके पीछे आता है तो गिंदउआ उठा कर उसकी पीठ पर मारता है तब बैठा हुआ बच्चा अपने स्थान से उठकर दौड़ते हुये चक्कर लगाता है। इस बीच उसे गिंदउआ की मार पड़ती रहती है, जब तक कि वह अपने स्थान पर वापिस बैठ नहीं जाता। इस प्रकार यह खेल चलता रहता है।

८. **आती-पाती** - खिलाने वाला कई पेड़-पौधों की पत्तियाँ तोड़कर अपने पास छुपाकर रख लेता है। बच्चों के सामने अर्द्धचन्द्राकार बैठा लेता है। फिर किसी एक पत्ती को हाथ में लेकर बच्चों को दिखाते हुए पूंछता है 'आती पाती बताओ काय की पाती।' बच्चे उस पत्ती को देखे हैं और पहचान कर उसका उत्तर देते हुए कहते हैं 'आती पाती जा है अमुक की पाती।' इस प्रकार बच्चों से संग्रहीत सभी पत्तियों की पहचान कराई जाती है। इस खेल से बच्चों की वनस्पतियों संबंधी जानकारी में वृद्धि होती है।

९. **पंगोला** - दो बच्चे आमने-सामने बैठकर अपने-अपने दाहिने हाथों से एक दूसरे की बाईं बाँह कस कर पकड़ लेते हैं फिर अपने बांये हाथ की कोहनी से मोड़कर दाहिने हाथ की कोहनी को कसकर पकड़ते हैं। इस प्रकार एक दूसरे के हाथों को पकड़ने से एक वर्ग जैसी आकृति बन जाती है इसी पर बच्चे को बैठाकर दोनों एक साथ खड़े हो जाते हैं फिर बंधे हुए हाँथों पर बैठाए बच्चों को आगे पीछे ले जाते हुए बच्चे को झुलाने का उपक्रम करते हैं तथा गीत गाते हैं -

डंगा डोली पालकी, जय कन्हैया लाला की।
डंगा डोली बहू बड़ोली, सास को डोला बहू की डोली।।

किसी दुर्घटना के समय हाथों से बना यह पंगोला घायल को अन्यत्र ले जाने में सहायक होता है।

१०. **मामुलिया** - वर्षा समाप्त हो जाती है। लता, वृक्ष नाना प्रकार के सुन्दर फूलों से लदे रहते हैं। उनकी मंद-मंद सुगंध मन को आनंदित करती है। ऐसे सुहावने समय में अश्विनी (क्वांर) मास के पहले पन्द्रह दिनों में कन्याएं 'मामुलिया' का खेल प्रारंभ करती हैं। कन्याएं बबूल की एक पतली सी शाखा तोड़कर उसके पत्ते निकाल देती है फिर कांटों में विभिन्न प्रकार एवं रंगों के फूल चुभो कर उसे सजाती है सजाते समय इस बात का भली प्रकार से ध्यान रखा जाता है कि कौन से रंग के साथ कौन सा रंग खिलता है। लड़कियों की इस कलाप्रियता और सौन्दर्य भावना को देखकर आश्चर्य होता है। मामुलिया का श्रृंगार इसलिये किया जाता है कि उसे ससुराल जाना है। सजाते समय गीत गाती हैं -

लाओ-लाओ चम्पा को फूल, सजाओ मोरी मामुलिया।
लाओ-लाओ चमेली फूल, सजाओ मोरी मामुलिया।
बहुतई सजी नोनी मोरी मामुलियाँ नोनी लगें मोरी मामुलिया।।

इस प्रकार सब फूलों के नाम लेकर गीत आगे बढ़ता जाता है। कैसा सुन्दर श्रृंगार है। मामुलिया आधुनिक लड़कियों की तरह नहीं, जो सोने-चांदी के आभूषणों के पीछे जान दे। उसे सुगंधित पुष्प प्रिय हैं। पुष्पों के श्रृंगार से साक्षात् वनदेवी, प्रतीत होती है। अब कन्याएं गोबर से चौकोर लीपकर, चौक बनाकर उस सुसज्जित खाका को मिट्टी में गाड़कर सामूहिक रूप से पूजा करती है। जब इसे विसर्जन करने हेतु किसी पोखर/नदी में ले जाया जाता है तात्पर्य है कि मामुलिया ससुराल जा रही है वे गीत गाती हुई जाती हैं-

मामुलिया के आये लिवौवा, झमकि चली मोरी मामुलिया।
जहँ राजा बाबुल के बाग, तहँ मोरी मामुलिया।
रानी गौरा देखन गई बाग, नोनी लगे मोरी मामुलिया।।

विसर्जन के समय अन्तिम पंक्ति मामुलिया के आये लिबौआ ठुमक चली मोरी मामुलिया के साथ विसर्जन कर देती है। इस खेल से कन्याओं में कला एवं सौंदर्य के प्रति रुचि उत्पन्न होती है।

११. **नौरता (सुआटा)** - अश्विनी (कवांर) मास की शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से नवमी तक यह खेल कन्याओं द्वारा विभिन्न प्रकार की रंगी कल्पनाएं बनाकर गौरा पूजन के साथ खेला जाता है। अल्पनाएं (चौक) बनाने के लिए 'दुधी', संगमरमर, चीलवट्टा, पथकुली, चावल को पीसकर छानकर विभिन्न रंगों से रंगकर रंगीन सामग्री तैयार की जाती है। अल्पनाएं बनाने के बाद 'काँय डाली जाती है। अपनी गौरा रानी की प्रशंसा दूसरे की गौरा रानी की बुराई, अष्टमी के दिन ढिरिया आदि के गीत गाये जाते हैं।

१२. **झुलमा** - यह खेल बालिकाओं के समूह द्वारा खेला जाता है। खेल के गीत की प्रत्येक पंक्ति में कृषि की क्रियाओं के प्रश्न किये गये हैं तथा उत्तर बालिकाओं द्वारा उस क्रिया का अभिनय करते हुए दिये जाते हैं। गीत - झुलमा भौजी कैसें बइये।

समूह में की बड़ी लड़की समूह से बाहर निकलकर फसल बोने का अभिनय करते हुए गाती है -बिन्नू फसल को ऐसे बइये

इसी प्रकार निम्नगीत गाया जाता है और प्रश्नों के उत्तर उसी प्रकार अभिनय करते हुए गीत गाकर दिये जाते हैं-

झुलमा भौजी कैंसे सींचिये,बिन्नू फसल कों ऐंसे सीचिए।
झुलमा भौजी कैंसे गोड़िये,बिन्नू फसल कों ऐसे गोड़िये।
झुलमा भौजी कैसें काटिये,बिन्नू फसल कों ऐसे काटिये।

इस प्रकार गीत के माध्यम से कृषि सम्बन्धी विधियों का ज्ञान बालिकाओं को गीत एवं अभिनय के माध्यम से दिया जाता रहा है। इन बालिकाओं को कल बहू बनकर अपनी ससुराल भी जाना है। ससुराल में जाकर वे कैसे भोजन बनायेंगी कैसे भोजन परोसेंगी? इसका ज्ञान भी गीत की आगे की पंक्तियों में अभिनय द्वारा दिया जाता रहा है।

गीत - झुलमा सिन्नी कैंसे बनैये, बिन्नू सिन्नी ऐसे बनैयें
झुलमा ससुर कों सिन्नी कैसें परसिये
झुलमा जेठे को सिन्नी कैसें परसिये
झुलमा देवर को सिन्नी कैसें परसिये

झुलमा बलम को सिन्नी कैसें परसिये।

१३. छक्का चपेटा – इसे खेलने के लिए मिट्टी के घनाकार के चपेटा बनाये जाते हैं जिन्हें आग में पकाकर पक्का कर और विभिन्न रंगों से रंग लिया जाता है। लाख और पत्थर से भी चपेटा बनाये जाते हैं। यह खेल सामान्यतः श्रावण मास में बालिकाओं तथा प्रौढ़ों द्वारा खेला जाता है। यह खेल स्वतंत्र अथवा जोड़ी बनाकर भी खेला जाता है। जोड़ी वाली को गुंइयां कहते हैं। चपेटों की संख्या ऊनी अर्थात ५, ७, ६, ११ आदि होती है। खेलते समय चपेटा जमीन पर फैला लिये जाते हैं एक चपेटा ऊपर की ओर फेंकते हुए नीचे से एक चपेटा उठाकर ऊपर वाले चपेटे को झेलते हैं। इस प्रकार एक बार में एक चपेटा उठाने को इक्की, दो को दुक्की, तीन को तिक्की, चार को चुक्की कहते हैं। चपेटा उठाते समय एक चपेटा का दूसरे चपेटा से छू जाना, ऊपर फेंका हुआ चपेटा हाथ में न आकर नीचे गिर जाने की स्थिति में उउसे गुल जाना या डूकी माना जाता है और बाजी दूसरे के हाथ में चली जाती है। इस खेल के अन्त में जितने चपेटों से खेला जाता है उन सब चपेटों के एक बार में एक ही हाथ से उठाना पड़ता है। इसके बाद चपेटा के विभिन्न नामों वाले भिन्न-भिन्न प्रकार खेले जाने वाले खेल खेले जाते हैं जैसे – मुँह बोले, गलफुल्ला, ओंठ कटे, मक्खी बिड़ारना, बरी तोड़ना, करैला, बहू बुलाना आदि आदि।

आज के युग में नाना प्रकार के खेल चल पड़े हैं और नाना प्रकार के कीमती उपकरण और साधन भी आ गये हैं। अनेक प्रकार के खेल खिलौने विदेशों से आने लगे हैं। कुछ इलेक्ट्रोनिक खेल भी बन गये हैं जिनमें बच्चे अधिकांश उलझे रहते हैं और समय खराब करते हैं खेलों के उन साधनों को प्राप्त करना हर एक के बस की बात नहीं है। टेलीविजन भी मनोरंजन का एक ऐसा साधन है जो गाँव-गाँव में पहुँच गया है। सम्पन्न लोग अपने निजी टेलीविजन के सामने बैठे रहते हैं और विपन्न लोग उसके दरवाजे से झांकने में लगे रहते हैं। पुराने खेलों में कबड्डी भर बचा है। वह इसलिए कि शहरी खेलों में उसे मान्यता मिल गयी है, परन्तु टी.वी. उसे भी चलन से खदेड़ रहा है। तात्पर्य यह है कि खेलों से होने वाले लाभ प्रायः गौण हो गए हैं, बाकी बचा है केवल मनोरंजन। इसीलिए लोकप्रचलित खेल गुमनामी के अंधेरे में खिसकते जा रहे हैं और सूर की यह पंक्ति भी अपना अर्थ खोती जा रही है कि – ''खेलत में को काकों गुसइयाँ''

– पुराना पोस्ट आफिस के पास, हवेली रोड, टीकमगढ़ ❋

छत्रसाल और स्वामी प्राणनाथ जी की भेंट सम्बन्धी पत्र

श्री

मंगलवार, २१ अप्रैल १७३०

श्री महाराजधिराज श्री महाराजा श्री राजा छत्रसाल जू देव के बांचवे येते श्री महाराज कोमार श्री दिमान जगतराज जू देव को आपर हम लड़ाई करके महेबा मऊ से आवत जत रहत हते। दस पांच रोज रहे तो एक दिन शिकार खेलवे खों गये डांग में एक आदमी लँगोटी लगाये बैठो हतो हमने समझी कै जो भेष बनाये हमारे मारवे को आव है हमनें ऊसै पूंछी कै तै को है कहां को ना बोलो तलवार हमने ऊ को ऊजेई बीलो कै बच्चा न मार मैं तुमारे अच्छे के लाने आवो हैं हम बैठ गये बोलो कै बच्चा तुमारो नाम छत्रसाल है हमने कही कै हाँ बोलौ कै बच्चा तै बड़ो पराक्रमी है और बड़ो परतापी भयो है हम और तै येक ही हैं ऊ जनम एक संग रहे हैं। विन्द्रवासिनी मैं बहुत दिन तपस्या करी है, उतै हमारी धूनी के नैगर चमीटा गड़ो है सात हात के नीचे जो ताको विसवास न होवे तो चमीटा उखार मंगवा हमने कही कै मौको का चमीटा को करन हैं मोरे पास न धन आये लड़कन के लाने रियासत को उपाय करत फिरत हों जो कछू न्याव लड़ाई करें मिल जै है तो अछी है फिर कही के बच्चा हम प्राननाथ हैं तोरे पास ऐसो धन हैं कै काहू के पास न कड़ है हमने कही कै महाराज मोरे पास कछू धन नहीं आये लूटमार में जो कछू मिलो सो फौज को खबाउत हों तब बोले कै तै परना को चल हम तोंको धन बताइये उनके कहे से हम परना को आये और प्राननाथ सोई आये परना में गोड़ राजा हते परना के गियोड़े आये हमने कही के महाराजा कहाँ रुपने है तब बोले परना से दषन तरफ हमको रुपने है ऊ जाघा पै आये बोले कै बच्चा हम ई जाघा पै रुपत हैं और कहीं कै जा जाघा खदरा करके कही जाये ये ही जाघा पै तुम दसरहे को बीरा उठाइयो तौरी फतै हुई है और चल मैं तोकों धन बतावों सो परना से दो कोस लौ लुवा गये बोले के यहाँ खोद सो वहाँ सुपेत ककरा मिलो गोला हमने कही कै महाराज जो का आये तब बोले यही धन है जो हीरा है परना से सात से आठ कोस लो की लम्बाई चौड़ाई में हीरा है हमने उनके पांव छुये परना में गोंड़ राजा हते उनको अपने बस में करो उनको कछू जागीर ला दई परना में दखल करो हमने कही कै महाराज हुकुम होये तो मैं मऊ को जावों कही कै मैं राजा नही होत ना मोरे पिता राजा भये हैं ना मैं हूं हों सो कही कै तोरे भाग में राज बदो है। तै कैसे राजा ना हू तोरी उमर सौ वरष के नीचे की है। पंती देख ले है तब हमने कही कै महाराज कुंवर लो तो है नहीं आये पंती नाती की को चलावे कही कै तोरे ऐसे कुंवर हू हैं कै काहू कै न भये हू हैं और एक एक बढ़कर कुंवर हू हैं व नाती पंती हू हैं संवत सतरा सौ बत्तीय की साल में महाराज प्राननाथ जू षेजरा में रुपे वा वो ही साल हम परना के राजा भये ऊ बखत पै हमने पच्चीस लाख की जाघा कमाई हती जितने हीरा मिलत गये महाराज प्राननाथ जू सब सामान बनवावत् गये उनने हुकुम दबो कै बच्चा बहुत सामान हो गयो है फिर संवत् सतरा सो पैंतीस की साल में मैं मंदिर महाराज को बनवाओ हमने विनती करी कै महाराज अेक आद तला आपके नाम को बन जाये सो कही के बच्चा तला न बने चल हम जागा बताउत हैं चौपरा बन जाये ऊ जागा पै गये सो कही कै सुदन कर हमने सुदन चौपरा को करो और कही के येते धन है खुदवो तो एक बड़ो भारी बटुआ पीतर को कड़ो ऊ मैं मुहरें कड़ी व येक हंडा लोहे को तो ऊ मैं सवा लाख रुपैया कड़े ई तरा का हाल महाराज प्राननाथ जू ने करो हतो, वैसख सुदी १५ संवत् १७८७ मुकाम महेबा।

– सौजन्य से : प्रो. नरेन्द्र जैन, सी-१, सीनेट कॉलोनी, छतरपुर ❋

बुन्देलखण्ड में प्रचलित सूक्तियाँ

– आर.एन. यादव

सूक्ति का अर्थ है सु+उक्ति, अर्थात् सुन्दर कथन। इनके पर्याय हैं सुभाषित एवं लोकोक्ति। संसार में व्यवहार कुशल होने एवं सुख-पूर्वक निर्वाह करने के लिये नीति का जानना अति आवश्यक होता है। इन नीतियों, उपदेशों का अक्षय भण्डार हमारे देश विदेश की सभी भाषाओं एवं बोलियों में पाया जाता है जिन्हें कालान्तर में सूक्तियों, लोकोक्तियों एवं सुभाषितों के नाम से जाना जाने लगा। सूक्तियों में नीति के वचन थोड़े शब्दों में "गागर में सागर" की भांति बड़े सुन्दर ढंग से व्यक्त होते हैं। इनमें उपदेश देने की छटा निराली होती है। इनकी आवश्यकता समाज के प्रायः सभी वर्गों को पड़ती है। ये मनोभावों को सजा-संवार कर सजीव बनाने एवं वक्तृत्व-कला को चमकाने में ये बड़ी सहायक होती है। सूक्तियों में शिक्षा, सदुपयोग की जितनी अमोघ शक्ति रहती है, उतनी ही आत्म-मंथन एवं अनुभूति को झंकृत करने की भी इनमें क्षमता होती है। सद्ग्रन्थों के सैकड़ों-पृष्ठ अथवा किसी सदुपदेश के घण्टे दो घण्टे के मनोहारी व्याख्यान भी उतना प्रभाव नहीं डालते जितना गंभीर प्रभाव किसी एक सूक्ति का हमारे हृदय पर पड़ता है।

संसार के सभी समृद्ध साहित्यों में मनीषियों की अमर-वाणियां सुरक्षित हैं। इनमें जीवन के सामान्य अनुभव एवं नीति-वचन व्यक्त किये गये हैं। भारतीय साहित्य तो सूक्तियों का अक्षय भण्डार है, संस्कृत, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश और आधुनिक भारतीय भाषाओं के महान कवियों, लेखकों जैसे कबीर, तुलसी, दादू, रहीम, बृन्द, दीन दयाल, गिरि, गिरधर आदि नीतिकार एवं सूक्तिकार कवियों की एक लम्बी परम्परा है।

आज भी इनकी सूक्तियां लोगों के कण्ठ पर विराजमान है। आज भी जनपदों में नागर-क्षेत्र से सुदूरवर्ती ग्रामीण अंचलों में अपढ़ अशिक्षित नर नारियों के मुख से स्वतः निःसृत होती हुई पायी जाती है। वे उनकी धार्मिक, सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों का अवलोकन कराती है एवं उनकी विभिन्न समस्याओं का समुचित समाधान करती रहती है।

बुन्देलखण्ड भारत का मध्य भाग है। उसकी हृदय स्थली है। यहां की साहित्यिक एवं सांस्कृतिक परम्परा अनुपम रही है। अतः बुन्देलखण्ड के जनपदों में सूक्तियों का विशिष्ट एवं महत्वपूर्ण स्थान है, बुन्देलखण्ड साहित्य कह असंख्य सूक्तियाँ यहां की जनता द्वारा उनका प्रयोग सुनकर अत्यन्त आनन्द की अनुभूति होती है। उनकी सरसता और सजीवता स्तुत्य होती है। उदाहरण स्वरूप कुछ बुन्देली सूक्तियां प्रस्तुत हैं।

दस-क्षीण :

चन्दन, चाँउर, तिन, तिया, सिंहलक, सन, सूत।
जे दस पतरे चाहिये, तुला, राग, रजपूत।

चन्दन, चावल, घास, स्त्री, शेर की कमर, सन, सूत, तराजू, राग और राजपूत ये पतले ही अभीष्ट होते हैं

पुरानी वस्तुएं –

बस्ती, वैद, तपेस्वरी, प्रोहित, तन्दुल, पान।
जें नौ नए न चाहिये, तेल, दिवान, कृपान।।

बस्ती, वैद्य, तपस्वी, पुरोहित, चावल, पान, तेल, मंत्री और तलवार ये पुराने ही अच्छे होते हैं।

त्याज्य-धन –

भीख, दायजी, नाठ धन, चोरी, जुआ, अगात।
इतने धन खौं परहरी, जे नाही ठहरात।।

भीख, दहेज, नाठ (पुत्र विहीन स्त्री) का धन, चोरी का धन, जुआ और बिना शारीरिक श्रम से प्राप्त किया धन ठहरता नहीं है। अतः त्याज्य है।

अविश्वसनीय –

बन्दर जोगी अगिन जल, सूजी, सुआ सुनार।
जे दस न होय आपने, कुटनी, कुटक, कलार।।

बन्दर, जोगी, अग्नि, जल, सुई, तोता, सुनार, कुट्टिनी ग्रह और कलार ये सब अविश्वसनीय होते हैं। इसी प्रकार –

वेद रोगी, तरुण जोगी, सूर पीठे घाव रे।
कीमियाँ गर भीख माँगे इन्हें जिन पतियाव रे।।

यदि वैद्य रोगी हो, तरुण अवस्था को प्राप्त व्यक्ति योगी हो, शूरवीर की पीठ में घाव हो तथा रसायन शास्त्री होकर भीख मांगे तो इनका विश्वास कदापि न करें।

सठ सनेह –

सठ-सनेह, जीरन बसन, जतन करत दिन जाय।
जैसे लच्छा पाट कौ, सुरझत उरझत जाय।।

मूर्ख व्यक्ति की तुलना जीर्ण-शीर्ण वस्त्र से की गई है जैसे जीर्ण वस्त्र को बड़ी सावधानी से पहनना पड़ता है, उसी प्रकार मूर्ख व्यक्ति से भी व्यवहार यत्नपूर्वक निभाना पड़ता है। वह रेशम की लच्छी की भांति सुलझाते सुलझाते उलझता जाता है –

प्रतिष्ठा की रक्षा –

धन दै धरती राखिओ, धरती दैंके प्रान।
प्रान जाँय जौ पत रखै, तौ दै दैयो प्रान।

धन देकर भूमि की रक्षा करनी चाहिये, यदि प्राण संकट में हो तो धरती देकर प्राणों की रक्षा करनी चाहिए और प्राणोत्सर्ग द्वारा प्रतिष्ठा (आन-बान-शान) की रक्षा होती है तो प्राणों का सहर्ष बलिदान श्रेयष्कर होता है।

दस छिपाये न छिपे –

इश्क, मुश्क, खांसी, खुशी, खूबी, मदिरा, पान।
जे दस दाबैं न दबैं, पाप पुन्य अरु स्यान।।

प्रेम, खुशबू, खांसी, खुशी, गुण, शराब, पान, पाप, पुण्य और चतुराई ये कितना छिपाये या दबाने से नहीं दबते। अपना प्रभाव दिखला देते हैं।

नो नये -

कस्तूरी, कदली, तुरी, कपड़ा, कनक, कमान।
ये सब नवतम चाहिए, वाम धाम अरु दान।

कस्तूरी, केला, घोड़ा, वस्त्र, आटा, धनुष, दान, घर और स्त्री ये नवीन ही उत्तम होने चाहिए।

इसी प्रकार स्पष्ट एवं सरल सीधे अर्थ वाली निम्न सूक्तियां ये कितनी प्रभावशाली हैं -

केहरि-मूँछ, भुजंग-सिर, पतिव्रता की देह।
सूर-कटारी विप्रन्धन, सिर कट्टै सो लेय।।

खेती-पाती, बीनती, अरु घोड़े की तंग।
अपने हाथ समारियौ, जो चाहो पिय-रंग।।

पण्डित, वेद, मसालची, इनकी उलटी रीत।
औरन गैल बतायें के आपुन कूदें भीत।।

पान पुरानो, घी नयौ, अरु कुलवंती नार।
जें तीनउं तब पाइये, जब राजी करतार।।

जो तुम चाहो देह सुख, तज दो बातें चार।
चोरी, जुआ, जमानतें और पराई नार।।

काडमूस के कडुवा देय, फूटे घर खों तारो।
सारे संग बहिनी पढ़वे तीनउं की मीं कारो।

पैली विपत बड़ो होय नाब, दूजी विपत सड़क को गाँव।
तीजी विपत धनउं ते हीन, सब विपतन में विपता तीन।।

विप्र, वैद, नाऊ, नृपति, स्वान, सौत, मंजार (बिल्ली)।
जहँ जहँ ये दोउ जुरें, तँह तँह बाढ़ै रार।।

बिना बसीले चाकरी, बिना मूँछ को ज्वान।
जे तीनउँ फीके लगे, ज्यों कत्था बिन पान।।

विप्र, परोसी, अजा धन, बिटियन को दरबार।
ऐते पे धन न घटे, पीपर राखो द्वार।।

जुर, जातक अरु पाहुनों, चौथो माँगन हार।
लाघन तीन कराये दे, फेर न आवे द्वार।।

परहथ बन्ज, संदेसन खेती, कड़वारे के दाम।
साजन सवगत जिन करो, घर हटकत है वाम।।

स्वारत-रत, कामी-पुरुष, लोभी मंगनो जोय।
इनकें दया न ऊपजे राम करे सो होय।।

तिली, तमाखू, आम रस, सूजी, सुआ, सुनार।
बिन दावे मानें नही, जरिया, जाट, गँवार।।

कागद, केला, पान, अरु, दासी, दुर्जन, दाम।
जे नीं दाबे ही भले, रहुआ महुआ आम।।

वित्त हरै, विनती करे, बने दास को दास।
जासों कबहुँ न कीजिये, बनिक पुत्र विश्वास।।

उजरे उजरे सब भले, उजरे भले न केस।
नारी नवे, न रिपु डरे, न आदर करै नरेस।।

- एल १/४१, सेक्टर 'बी',
अलीगंज, लखनऊ (उ.प्र.)卐

जौ जल जीवन जाँनों

- शंकर दयाल खरे 'शंकर'

जौ जल जीवन जाँनों भैया, ईखाँ इमरत मानों।
जल खौं, जो बरबाद करौ ती, फिर नइँ परै ठिकानों।।

जल सें सपरा-खोरी होंबै, ढोरन खाँ सपराँनै।
खाना-पीना, धोवे-धावे, सबखाँ पानी चाँनें।
पानी सें पतरौ का होवै, काँली कातीं नानों। जौ जल...।।

एक चोट खैबे नइँ मिलवै, कछू दिना कट जैहैं।
पानी बिना प्राँन तन-भीतर, कीनउँ बिध नइँ रैहैं।
जेठँन नें नइँ कभउँ बताओ, पानी मोल बिकानों। जौ जल...।।

साधन सूक गए सब जल के, मन भओ भौत उदास।
कैसें कटहैं जेठमास जे, करिए कीकी आस।
दिन-दिन पानी घटतइ जा रओ, रीतत जात खजानों। जौ जल...।।

खेती-बारी, सबजी-भाजी, कैसें हुइऐ राम?
बिंन पानी सब कछू सूँन है, परत राम सें काम।
पानी कौ सोउ काल परत है, पैलाँ नइँ सुनानों। जौ जल...।।

लरकाबारे बिंना पते की, दिन भर जल भँमकात।
कितनउँ रोकौ, मानत नैंयाँ, सुनतइ नैंयाँ बात।
जल देवता भौत पुरानें, जल की मँहमा जाँनौं। जौ जल...।।

जल खौं जतन-जतन सें खरचौ, रतन सरीकौ राखौ।
वेद-पुरानन मँइया गाई, गुनौं, ग्यान-रस चाखौ।
पाँच तन्त में एक तत्त जौ, तुम ईखौं पैंचानौं। जौ जल...।।

पानी-हवा-धूप खाँ जानौं, ईसुर कौ बरदान।
जे तीनउँ पालत है तन में, हर प्राँनी के प्राँन।
लाख टके की- बात पते की, मानौं चाए न मानौं। जौ जल...।।

गाँठ बाँद लेव बात हमाई, साँसी-साँसी काँनें।
जीली जीखाँ जग में राँनें, पग-पग पानी चाँनें।
बूँद-बूँद सें घट भरबे कौ, जौ आ गओ जमानौं। जौ जल...।।

मँइनन-मँइनन तुआ तुअत ते, ऐसे रए बसकारे।
कैउ रोज की झिरें लगत तीं, कड़ नइँ पाए द्वारे।
पैलाँ पग-पग पै पानी रओ, काँ गओ समय पुरानौ? जौ जल...।।

पानी-हवा सुद्द ते पैलाँ, सुद्दइ सोच-बिचार।
अब आबादी, रोग बड़ गए, हो रए अत्याचार।
तागतबर, निरोग रए पैलाँ, कभउँ न मूँड़ पिरानौं। जौ जल...।।

अपनइँ पाँव कुलरिया मारी, जंगल काटे सारे।
एई सें पानी खाँ फिर रए, देखौ मारे-मारे।
बुरए काम कौ, बुरव नतीजा, सबकौ जाँनौं-माँनौं। जौ जल...।।

- दूल्हा बाबा मार्ग, समीप अवस्थी बंगला,
नौगांव, छतरपुर (म.प्र.) 卐

हते बड़े 'मन' वारे शुक्ल जू

- कल्याण दास साहू 'पोषक'

"सोंनों जानिए कसें, मानुस जानिए बसें।" ई कानात कौ मतलब अपुन सब जानें जानत-समझत हैं कै - सोनें की परख कसौटी पै कसें सें होतइ, और आदमी की परख येंगर बैठकें, बतकाव करकें होत है। हल्के बारे होंय चाय बड़े-बूढ़े होंय घरी दो घरी उनके ढिंगा बैठो तो सब समज में आ जात। आदमी के गुन-अवगुन ऊपरै उतरा कड़त। गुनी लोगन की रीत-बूज सबइ जगाँ है, गुनी हमेशाँ पुजत रत। देस खों कछु दैकें ऐसी नामना छोड़ जातइ कै 'वे' सदाँ के लाने अमर हो जातइ, और हम सब जनें उनके रिनी हो जाउत।

ई हिसाब सें श्रीयुत श्रीनिवास शुक्ल जू 'सोरा आने खरे' उतरत हैं। उनके भीतरै सदगुनन कौ समुन्दर उमड़त भऔ हमने मैसूस करी है। हमतौ अपनी किस्मत चोखीं जानत कै, हमें एक बेर उनके चरनन की धूरा माथें से लगाबे कौ मौका मिलौ। ऊ जनम में जरूर हमने कछु पुन्न करे हुइयें, जो ऐसी महान हस्ती के दरसन कौ औसर प्राप्त भऔ। हमाई खुस किस्मती कै लो चाय 'विनके' बड़प्पन की मैमा कै लो, जो 'हमाव' और 'विनकौ' घरी भर कौ सत्संग भऔ।

जबै की वौ हवाली हमें बिसरी नंइयाँ। उयैं ज्यों की त्यौं लिखबे की कोशिस करी जारयी। कोऊ पूछै कै कब की बात कर रए? तौ भइया जा बात छः-सात साल पुरानी हुइयै।

छतरपुर के बसटैण्ड में हम रिक्सा पै बैठे चले जा रएते, और गैल-गैल सोचत जा रए ते, कै हमें उनके दरस-परस हो पाने कै नइं हो पाने? मनई मन भगवान सें विन्ती करत जा रए ते कै 'वे' घरे मिल जायँ तौ हमाऔ उतै लौं जावौ सुफल हो जाय। येई चिन्ता-फिकर में, सोचा-विचारी में लगे हते कै-इतने में रिक्सा वारे की आवाज कॉनन में सुनाई परी "उतरौ भाईसाव शुक्लाना मुहल्ला आ गओ। देखौ उतै सामें वा लकड़या की तख्ती दिखा रई, वो बोड दिखा रऔ ऊ पै कछु लिखौ है, वौई है शुक्ला जू कौ मकान।"

हमनें कइ भइया हमें श्रीनिवास जू शुक्ल सें मिलनें, जौंन के कवि हैं, साहित्यकार हैं।

रिक्सावारी - हओ बेइ शुक्ला जू जौन वकालात करत।

हम - हओ बेई...

रिक्सावारी - 'वे' औइ घर में रउत। तुम पौंच जैओ कै हम उतइं तक पौंचा आवें।

हम - रन दो भइया, तुम काय खों कष्ट करत, तुम सवारी ढूँढ़ौ हमतौ अब पौंच जैं।

हमें अच्छी तराँ सें धियाँन है, कि ऊ दिना सोरा तारीक हती, दुपइया में तीन-चार वजे की टैम हुइये। गरमियन कौ मौसम, उतरत जेठ (जून) की मइंना, सन दो हजार एक हती। छतरपुर में 'हमाव' पैली बेर जावौ भऔ तो। अखबारन में जरूर कवि गोष्ठी की खबरें पढ़त रए, कवियन की, साहित्यकारन की नाव पढ़त रए, सुनत रए। मुलाकात काऊ सें नईं भइती। सो हमाए मन में जा लगन लगीती कै हमें शुक्लजू के दरसन करइने हैं। जा बात मन में ठान लइती।

येइ ललक सें हमने डरात-डरात दरवज्जे की साँकर बजाई। तनक देर में एक जनन ने किबार खोले। लामी, इकारी सरीर उनकौ, बगबगे उन्ना पैरें हते, खादी कौ कुरता हुइयै और खादी अई की तैमद लपेड़े, हमें बैठका में लुवा गए और सोपा पै बिठार दओ।

अबै तक हम नइं चीन्ह पाय कै - 'जे' बेई हैं जिनसें मिलबे के लाने इतै लौं भगत आए।

वे तौ एक तश्तरी में पानी के भरे गिलास लैकें हमाए सामें आ गए बोले - पानी पियौ भौत गरमी है।

प्यास तौ हमें लगी हती, काय कै गरौ सूख गओ तौ, सो हमने झट्ट-पट्ट गुट्ट-गुट्ट पानी पियौ, जिऊ कों ठण्डक मिली। वे बोले - ऐसी गरमी में काँ दौरत फिर रए?

हमने कइ - हमें शुक्ल जूं सें मिलने हैं, तौ वे बोले - "समझ लो जी सें तुम मिलबे आए, तुमाय सामें ठांड़ें" और जोर से हँसन लगे। हम भौत सरमिन्दा भए, फौरन उनके पाँव परे और गलती के लाने माफी मांगी।

वे बोले अरे-अरे जौ का कर रए, तुमाई ई में का गलती।

अब सुनाव! कैसे भूल परे?

हम ऊसइ अचक से गय कै अब का कएँ?

सकुचत-सकुचत मौं में धीरी आवाज निकरी "अपुन के दरसनन की अबलाखा हती सो चले आए।"

उनके मौं में असीस निकरी, आँखन में सनेओ दिखानौ।

बोले - बेटा! कितै सें अबाई भयी?

हमनें अपनों नाव और पतौ-ठिकानौ बताव।

बोले-काँ है जौ पिथवीपुर?

हमने कई - टीकमगढ़ जिला में है। हमाए इतै सें ओरछा इतेकई दूर है, जितनौं इतै सें नौगांव।

बोले - अच्छा भौत अच्छा।

फिर बोले - कुछ हाल-चाल सुनाव। सब ठीक-ठाक है कै नई। इतनी दूर सें ऐसी गरमी में भगत आए। तुम सें मिलकें भौत हाल-फूल भयी अब आवे कौ असली मकसद तौ तुमें बताउने परहै।

हमाय मौं से दबी सी आवाज निकरी - "एक ठउआ बुन्देली कबतन की किताब 'पोषक-चेतना' छपी है, सो ऊखों भेंट करबे के मिस अपुन कौ आसीरवाद लैवे खों आए। तुरतइं बैग में से किताब काढ़ कैं उनके हाँतन में सौंप दयी।

"बड़े प्रसन्न भए, हमाई पींठ ठोकन लगे, बिलात देर लौं किताब के पन्ना पलटत रए, बीच-बीच में एक-एक, दो-दो दड़ीचें पढ़त

रए और मनईमन मुस्क्यात रए। फिर बोले बेटा! "उम्दा बुन्देली लिखत है, आँगे-चलकें खूब तरक्की करहौं". सरसुती मइया तुमाई हर मंसा पूरी करवै, हमाइ भगवान से जेई विनती है। अच्छी साधना करौ, खूब फूलौ-फरौ।"

कछु बातें उनने घर-गिरस्ती की पूँछी, सो हमने जुआव दओ कै "हम सरकारी स्कूल में मास्टर हैं, सन नब्बे सें कछु न कछु लिखबे की कोशिस करत रत। सन चौंसठ कौ हमाव जनम है। ई के बाद 'उनने' ठण्डयाई पियाई, मो मीठौ कराव और बोले - "आयँ गय इतै हो जायँ गय।" छतरपुर में और किते-किते हो आए हो।

हमने कई - व्यास जू, गुप्त जू, बरसैंयां जू, चौबे कॉलोनी में गये ते। परमार साब मिल नइं पाये, सो उनके लाने नाव लिखकें किताब चौबे जू के इतै धर आए।

बोले - ठीक करी। एक दो किताब और दै दो हम पुस्तकालय में पौंचा दैहैं।

तनक देर लौं और बतकाव होत रऔ। फिर हमने उनसें चलबे की अग्याँ मांगी, तौ वे बोले - बैठौ तनक और। हम रुक गए। उनने जल्दी सें अलमारी में से एक किताब 'अक्षरों की आँच' काढ़ कैं हमें दई। ऊ पै लिख दओ "बुन्देली के कुशल कवि प्रिय श्री कल्याण दास साहू 'पोषक' को सस्नेह भेंट - श्री निवास शुक्ल दिनांक १६-६-२००१. किताब और असीस पाकैं हम 'फूले नईं समानें'। हमने सोच लयी कै ई पुस्तक खों प्रानन की नाँई ठबाई रख हैं।

फिर हम उनके घर सें विदा होकैं चले तौ वे हमें घर सें बाहर लौं छोड़बे चले आए, और रिक्सा पै बैठा गए। हमाई मूँड़ पै हांत फेर कैं खूब बिलात आसीरवाद दओ।

हम अपनी किस्मत खों सराहत घर कोद खों चले आ रए ते, और शुक्ल जू की महान छवि की मनईमन प्रसंसा करत आ रए ते कै "इतनी बड़ी हस्ती, जिनैं घमण्ड तौ बिल्कुल नइयाँ, एक अनचिनार खों अपनत्व दओ, छाती सें लगा कैं बड़प्पन बढ़ाऔ।"

जा बात हम फौरन ताड़ गए कै - "नई पौद खों आँगे बढ़ावे की उनकी खासियत है। नई पीढ़ी आँगे बढ़त हुइये, तरक्की करत हुइयै तौ उनै भौत खुसी होत हुइयै।"

जब लौं उनके येंगर बैठे रए तब लौं हमें भौत आनन्द आव, उठबे की इक्छई नइं हो रइती। का करें मोटर की टैम हो गवती। सो हमें उनसें विदा मांगने परी।

हम भौत जनन से मिले-जुरे लेकिन हमाए दिल में जैसी गैरी छाप शुक्ल जू ने छोरी है, ऊसी दुरलभ है। ऐसे सरल सुभाव के आदमी करोड़न में एकाद होत है। उनके मौं में रसान और बानी में ऐसी आकरसन हती कै पूँछौं मत।" "पुराने चाँउर सैलात हैं" जा बात बिल्कुल सइ है। काय कैं - अस्सी के लगभग उनकी उमर हती लेकिन उनमें उत्साय ऐसी हती कै देखतनइ बनत तो। भलमुन्स्यात उनके रोम-रोम में भिदी हती। हिरदय तौ प्रेम-भाव सें लबालब भरौ हती। येई सें 'ऊपर वारन' की किरपा सोउ उनके ऊपर पूरी हती, कोंनऊँ बात की कमी नइं हती, अच्छे भरे-पूरे हते, सबइ तराँ से खुसहाल हते।

एक दिनां अखबार में जब समाचार पढ़ौ कै - उनकौ निधन हो गऔ तौ भौत दुख भऔ। आँखन में अँसुआ भर आए। फिर उनकी याद कौ सिलसिला चल पड़ौ, तौ लेख लिखबे के बाद थमौ। जा हमाइ खुसनसीबी है कै, हमें उनखों ई लेख के द्वारा सिरधा-सुमन समरपित करबे कौ मौका मिलौ।

गलतियन खों क्षमा करत भए, थोरे लिखे खों भौत समजवे की किरपा होय, जेई पाठकन सें दोइ हाँत जोर कैं विन्तवारी है।

- शरदकुंज, किले के पास, पृथ्वीपुर, टीकमगढ़ म.प्र.

पैंलां जे गिनवा कें धर रय

— शंकर सिंह बुन्देला

कौन नाव इनको हम धरिये, दहेज के लाने ब्याव जे कर रय।
और सब बातें बाद की बातें, पैंलां जे गिनवा कें धर रय।।

गुंजायश होबै तो बोलो, पैंलां अपनी जेब टटोलो,
और क्याऊं देख लो नइती, इतै सें टारे काय नईं टर रये।
और सब बातें ....।।
पचास हजार सें कम नईं जानो, दहेज सोई चाने मनमानो,
पैसा मांगत बड़ी अकड़ सें, सीदें-सीदें बात नईं कर रय।
और सब बातें ....।।
घर में बैठी बिटिया रो रई, ईश्वर ने कैसी विपदा दई,
बिटिया भय में दोष का मोरो, उनके चरनन दद्दा डररय।
और सब बातें ....।।
लरका बारे नई मानत हैं, फ्रिज, टीवी, कूलर मांगत हैं।
मांग देख के बाप-मताई, ई धरती सें मूढ़ पटकरय।
और सब बातें ....।।
लरका कौ जे मोल करारय, बिटिया बारन हाँ जे खारय,
हँसरय देखो लरका बारे, दुख में बिटिया बारे मर रय।
और सब बातें ....।।
दहेज की बढ़ गई मांग आज है, पढ़ो-लिखो कैसो समाज है,
नईं रई मानवता कौनउँ में, दहेज सें अपने घर हाँ भर रय।
और सब बातें ....।।

- ग्रा.पो. देवरदा, वि.खं. बल्देवगढ़
जिला टीकमगढ़ (म.प्र.)

निवेदन

बुन्देलखण्ड के लेखकों, कवियों और लोककलाकारों से अनुरोध है कि वे बुन्देलखण्ड के किसी भी अनछुये पहलू को उद्घाटित करते हुए शोधपरक आलेख या रचना लिखें और वर्ष में कभी भी निम्न पते पर बुन्देली बसंत में प्रकाशन हेतु रचना भेज सकते हैं -

डॉ. बहादुर सिंह परमार
एम.आई.जी.-७, न्यू हाउसिंग बोर्ड कॉलोनी, छतरपुर (म.प्र.)

गरीबी का मारा कवि : घनश्याम दास नौगरैया (कक्का कवि जबलपुरी)

— डॉ. गंगा प्रसाद बरसैंया

श्री घनश्याम दास नौगरैया का जन्म छतरपुर (म.प्र.) जिले की नौगांव छावनी के बिलहरी गांव में संवत् १६७३ (सन् १६१६) को हुआ था। उनके पिता का नाम रामलाल और प्रपिता का नाम मोहनलाल था। गहोई वैश्य परिवार में जन्मे श्री घनश्याम दास जी ने अपना परिचय इस प्रकार दिया है -

वीर बुन्देला राज्य छत्रपुर सब जग जानो।
है छोटो परगना छावनी नाम बखानो।
पहल पहल नित रहै राज्य के सरदारों की।
लागै अति रमणीक सजावट बजारों की।
जन्मभूमि सुन्दर सुखद सुजन वृन्द कवि श्याम की।
मंदिर शोभित भवन पास शुभ मूरति सीताराम की।

जन्म स्थान के साथ ही अपने वंश का परिचय देते हुए लिखते हैं-

वैश्य वंश अवतंश सुयश क्षिति पै विस्तारे।
श्रीयुत मोहनलाल नौगरैया उजियारे।
गुणनिधि बुद्धि विशाल तनय तिनके सुख सागर।
रामलाल जी भये नाम निज कियो उजागर।
तिनको सुत मतिमंद मैं नाम दास घनश्याम है।
उदर पालना हेतु नर्मदा तीर बसहुँ निशि याम है।

अपनी जन्मतिथि की जानकारी देते हुए एक छंद में उन्होंने लिखा-

प्यारे परिचय देउँ निज सुनहु सुजन दे ध्यान।
शंभु नेत्र मुनि अंक शशि विक्रम संवत जान।
विक्रम संवत जान शालिवाहन शक मानो।
बस गुण दिग्गज भूमि चतुर पंडित पहचानो।
कातिक छठ तम भोम वासरे गुणिन उचारे।
परिघ योग आद्रा नक्षत्र भोजन्म प्यारे।

शंभुनेत्र=३, मुनि=७, अंक=६, शशि =१ 'वामांगो अंकः गति' के अनुसार उनका जन्म संवत् १६७३ (सन् १६१६) कार्तिक कृष्ण षष्ठी मंगलवार के दिन आर्द्रा नक्षत्र और परिघ योग में हुआ था। आज यदि वे होते तो लगभग ६१ वर्ष के होते।

गरीबी और अभाव से त्रस्त होकर उन्हें अपनी जन्मभूमि छोड़कर जबलपुर जाना पड़ा। शिक्षा-दीक्षा भी अधिक न हो पाई। ऊपर से श्वाँस रोग ने उन्हें जर्जर बना दिया। बाद में स्थिति यहाँ तक खराब हुई कि उन्हें अपने सजातीय की मिठाई की दुकान में अनेक वर्ष वर्तन तक मांजने पड़े। वे कभी कविता के जोर मारने पर दिये के उजाले में कागज के टुकड़ों या अखबारों में छन्द लिखते और कभी पारिवारिक दारिद्र्य से व्यथित होकर अपने भाग्य को कोसते लेकिन अपनी अंतिम श्वांस तक लिखना नहीं छोड़ा, प्रकाशन भले ही न हो पाया हो। पारिवारिक दायित्व बड़ा था। कोई दूसरा सहारा या सहयोग नहीं। फिर हंसना-हंसाना, विनोद करना उनका स्वभाव था। यह स्वभाव पूरी जीवंतता के साथ उनकी रचनाओं में उतरा है। व्यंग्य ऐसा कि संबंधित व्यक्ति तिलमिलाकर रह जाये और हास्य-विनोद ऐसा कि रचनायें पढ़कर घंटों खिलखिलाते रहे। वे साहित्य क्षेत्र में और अपने आसपास के परिवेश में कक्का कवि के नाम से जाने जाते थे। अपने जबलपुर प्रवास के बारे में उन्होंने यह छंद तब लिखा था जब उनकी आयु मात्र छब्बीस वर्ष की थी। जाहिर है कि वे जीवन की प्रारंभिक अवस्था से ही कविता लिखने लगे थे। उन्हीं दिनों उन्हें अपनी मातृभूमि छोड़ना पड़ा था। जबलपुर को ठिकाना बनाने के बाद वे लिखते हैं -

नगर सुथान जबलपूर जेहि नाम सब,
जानत जहान नर्मदा जी को किनारो है।
सुन्दर बजार चारु चौहटे चमकदार,
लागै रमणीक मन सबही को प्यारो है।
शोभित तड़ाग कूप बावली सु चारो ओर,
रहे जमघट कवि कोविद का भारो है।
कहत कवि श्याम सुनो सज्जन तमाम तँह,
आठो याम मो गरीब को गुजारो है।

कहाँ नौगांव के पास स्थित छोटा गांव बिलहरी और कहां उस क्षेत्र का प्रमुख जिला नगर जबलपुर। कहा जाता है कि किसी समय जबलपुर में ७०-७२ तालाब थे। अब तो सर्वत्र बाजार और ऊँचे-ऊँचे भवन दिखाई पड़ते हैं। कई मुहल्लों के नाम अभी भी तालाबों के नाम पर हैं, पर तालाबों का नामोनिशान तक नहीं है। नौगरिया जी का यह छंद ६०-६५ वर्ष पुराना है। वे हास्य-व्यंग्य में कक्का कविराय और अन्य छंदों में श्याम नाम का प्रायः प्रयोग करते थे।

अपनी तरुणाई में नौगरैया जी निरन्तर लिखते थे। स्थानीय पत्र-पत्रिकाओं के साथ ही देश की अनेक तत्कालीन पत्रिकाओं में उनकी कवितायें प्रायः प्रकाशित होती थी। झांसी से निकलने वाले 'साप्ताहिक भारती' के वे प्रमुख लेखक थे। हर अंक में उनकी रचनायें छपती थीं। होली विशेषांक उनकी व्यंग्य विनोद परक रचनाओं से भरा रहता था। भारती के सम्पादक श्री सीताराम धूसर उन्हें बहुत मानते थे। इसी प्रकार 'सुकवि' तथा 'नोक झोंक' मासिक पत्रिकाओं के भी वे नियमित लेखक थे। समस्यापूर्ति में भी वे दक्ष थे। किसी भी अवसर के लिए कविता लिखने में वे आशुकवि थे। श्री सीताराम धूसर ने सन् १६४६ में नख-शिख शीर्षक से उनकी एक छोटी सी पुस्तक अपने 'भारती प्रेस' झांसी से प्रकाशित की थी। इस पुस्तक की रचना संवत् १६६६ (सन् १६४२) में हुई थी जब उनकी आयु मात्र २६ वर्ष थी। इससे उनकी प्रतिभा और रचनागति का अनुमान लगाया जा सकता है। इस पुस्तक के रचनाकाल के बारे में उन्होंने लिखा -

अंक खंड ग्रह शशि सुभग विक्रम संवत जान।
द्वितीय जेठ तम त्रयोदशी, नशशिख श्याम बखान।

अंक = ९, खंड = ९, ग्रह = ९, शशि = १।

उल्टी गणना के हिसाब से संवत् १९९९ (सन् १९४२) हुआ अर्थात् संवत् १९९९ (सन् १९४२ ई.) में द्वितीय ज्येष्ठ की कृष्णपक्ष की त्रयोदशी को इस कृति की पूर्ति हुई। इस कृति में उन्होंने प्रारंभ में सरस्वती, गणेश, राम, हनुमान, शंकर जी व गुरु की वंदना की है। अंत में राम-कीर्तन संबंधी कुछ छंद हैं। कवि ने राम और सीता दोनों का नख-शिख चित्रण किया है। सरस्वती वंदना का एक छंद देखिए -

चरन नखन चन्द्रमा की दरशा दे माँ,
वाणी ले सितार तार बानी में मिला दे माँ।
नागरी की साधना की भावना जगा दे भव्य,
मेरा शब्द रत्न कोष अक्षय बना दे माँ।
ज्ञान-निधि सार दे बिसार दे समस्त दोष,
भाल पै पसार कर कंज मुसक्या दे माँ।
अब हंसवाहिनी बिराज दाहिनी हमेश,
बुद्धि वरदायिनी प्रकाश प्रगटा दे माँ।

नख-शिख वर्णन के भी कुछ छंद यहां दिये जा रहे हैं। जो उनकी भावना व काव्य-कौशल का कुछ परिचय देते हैं। भगवान राम के चरण नख, पद, पींडरी, जांघ, कटि, नाभि, उदर, त्रिबली, बाहु, हृदय, ग्रीवा, श्रवण, अलक, कपोल, रसना, दन्तपंक्ति, अधर, नासिका, नयनबिन्दु, नयनलालिमा, वरुणी, पलक, भृकुटी, भाल, केशवेणि, आनन, अंगजामा का तथा सीता के नखभरण, बिछिया, पगमान, पायल, पायजेब, तेहर, बेवर, पैजना, घांघरा, फुंदना, कटिकिंकिणी, अंगुरीनख, मुद्रिका, हथफूल, कड़ा पहुनी, बाजूबंद, झबियाफूंद, कमलहार, गजमुक्ताहार, छपलरिया, गुजाहार, मुक्ताहार, अन्यहार, बेसर, तरौना, बेंदा, वेणी तथा आनन का वर्णन श्री श्याम जी ने क़िया है। श्रीराम के आनन का चित्रण देखिये -

प्राची प्रभाकर को यह तेज, कि प्राची छपाकर की शितलाई।
कंज खिलो किधौं मानसरोवर, नंदन कानन की छवि छाई।
कै कवि श्याम जू काम कला, किधौं शिव स्वरूप की सुन्दरताई।
आनन दीनदयाल को है अथवा निधि दीनन की सुखदाई।

संदेह अलंकार की श्रृंखला के साथ राम के आनन का मनोहारी वर्णन कवि ने किया है। इसी प्रकार जानकी जी के तरौना और बेंदा के चित्रण में कवि ने जिस प्रकार की उत्प्रेक्षाओं का प्रयोग कर अनूठी कल्पना का परिचय दिया है वह उनकी प्रतिभा का परिचायक है -

श्रवण तरौंना झलमलत, तेहि ऊपर पट झीन।
मानहु गंगा नीर द्वै, उछरत बूड़त मीन।
हेम खचित मानिक जटित, बेंदा दिपत सुभाल।
मानहु शशि दूजो उगो, अनुपम ज्योति विशाल।

जैसा मैंने पूर्व में कहा है कि श्री नौगरैया की रचनायें देश की अनेक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती थीं - विशेषकर हास्य-व्यंग्य की पत्र-पत्रिकाओं में। हास्य-व्यंग के साथ ही वे पैरोड़ियाँ बहुत अच्छी लिखते थे। कृशकाय शरीर दमे से बुरी तरह पीड़ित, साधनहीनता और दरिद्रता की तीखीं मार। फिर भी लेखनी नें विराम नहीं लिया। कभी-कभी उन्हें पुराने अखबारों के पन्नों पर लिखना पड़ा। शायद लोगों को विश्वसनीय न लगे, पर मैं स्वयं इसका प्रत्यक्षदर्शी हूँ। इतनी कठिनाइयों के बावजूद उन्होंने कभी मर्यादाओं-आदर्शों का उल्लंघन नहीं किया। कोई अनुचित समझौता नहीं किया। तत्कालीन 'नोंक-झोंक' पत्रिका के सम्पादक ने उन पर टिप्पणी करते हुए लिखा था "कक्का नाम है पर बूढ़े नहीं है। छत्रसाल के बुन्देलखण्ड में साठा भी पाठा होता है और सिर पर मौर रखने की हिम्मत रखता है फिर आप तो साक्षात घनश्याम 'मूँछवाले' के रूप में छोटी उम्र के कक्का हैं। पढ़े हैं या नहीं, पर गुने जरूर हैं। कलम की नोंक तेज है और नोंक झोंक के पाठकों पर नुकीली चोट करते हैं। लिखने की लत है, रात में छिपाकर लिखते हैं। सरस्वती प्रसन्न है, लक्ष्मी का कोई जंजाल नहीं। अनेक कवितायें, कुंडलियाँ एवं दो बच्चे संसार को आपकी देन हैं। बाद में यह संख्या शायद आधा दर्जन से भी अधिक हो गई। कुण्डलियों की मार तीखी है। कभी-कभी मौज में आकर खरा-कर्रा छींटा भी कस डालते हैं। हां, अश्लीलता तब भी बचा जाते हैं। होली पर तो आप वह रंग जमाते हैं कि कदाचित ही कोई बचे। अधिक क्या लिखें - 'नोंक-झोंक' से आपका संबंध है और वह भी अटूट। आपकी पत्नी नोक-झोंक को सौत मानती है। श्याम के हृदय से राधा का प्रेम हटे तो हटे कैसे।"

श्याम कवि ने हास्य व्यंग-विनोद का क्षेत्र प्रमुख रूप से चुना किन्तु जीवन और समाज की समस्याओं पर भी बराबर कलम चलाई। पति-पत्नी, संवाद ननद-भौजाई संवाद के माध्यम से भी व्यंग्यात्मक शैली में पारिवारिक व सामाजिक समस्याओं को उठाया। छोटी-छोटी बातों को लेकर भी उन्होंने गहरी बात कही। उनकी बड़ी इच्छा थी कि मास्टर बनकर जीवन जियें किन्तु पढ़ाई के अभाव में उनकी इच्छा पूरी न हुई। उन दिनों शिक्षक का जीवन आदर्श और सम्मान का जीवन माना जाता था। मास्टर बन जाते तो हलवाइयों के बासन न मांजने पड़ते। मास्टर की खुशकिस्मती का चित्रण करते हुए वे लिखते हैं -

अगर मैं मास्टर होता।
लगा टोपी, पहिन खद्दर की परदनिया, सफा कुरता,
गले में डाल सेला, बेंत ले, चप्पल पहिन चलता,
जिधर से निकलता, वंदना दंडवत सब करते,
मैं कहता खुश रहो प्यारे तो कितना मोद मन भरते,
हमारे बोल का अनमोल संग्रह ढेर भर होता।
अगर मैं मास्टर होता।

इन पंक्तियों में तत्कालीन अध्यापक की वेषभूषा ही नहीं सामाजिक स्थिति और प्रतिष्ठा का भी बोध होता है। अब तो शिक्षकों की अत्यन्त दयनीय स्थिति है। सरकार उन्हें मजदूरों की तरह रोजनदारी पर रखकर काम ले रही है।

विदेशी शासन के समय कविगण जोश-खरोश की भाषा में अपनी शक्तिशाली लेखनी से देशवासियों को स्वतंत्रता आन्दोलन

के लिए ललकार रहे थे। साहित्य में अपरिमित शक्ति होती है। बशर्ते साहित्यकार ईमानदार हो। कक्का कवि ने उन दिनों अपने दायित्व का यथाशक्ति निर्वाह किया। उन्होंने लिखा -

जाग कवि जग को जगा दे।
दासता तम दूर कर स्वतंत्रता का रवि उगा दे।
लिख अरे इतिहास के पृष्ठों में तू अपनी कहानी।
लिख बहादुर शाह का किस्सा व झांसी की निशानी।।
आदि।

हिन्दु-मुसलमान दोनों आपस में लड़ रहे थे। उन दोनों को लड़ाकर अंग्रेज शासक सफलतापूर्वक शासन करना चाहते थे। 'फूट डालो राज करो' की उनकी नीति थी। स्वार्थान्ध और धर्मान्ध दोनों कौमें उनकी चालाकी समझ नहीं पा रही थीं। आपस में मारपीट जारी थी। उस स्थिति का चित्रण करते हुए कवि श्री घनश्याम दास नौगरैया ने लिखा -

भाई-भाई लड़ रहे, घर-घर फैली फूट।
अपना स्वारथ सिद्ध कर, रहे विदेशी लूट।
रहे विदेशी लूट, अरे अब शर्म करो रे।
बढ़ो नवयुवक वीर, न पीछे कदम धरो रे।
कहें श्याम कविराय, इसी में आज भलाई ।
करो देश आजाद, लड़ो न भाई-भाई।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस भुलाये गये कवि ने सभी तरफ लेखनी चलाई और उन नये कवियों से कहीं ज्यादा श्रेष्ठ और सार्थक रचनायें दीं जो मंचों पर केवल गला फाड़ते या चुटकुले सुनाते हैं। वे पुरानी पीढ़ी के कवि थे। आजीवन लिखते रहे किन्तु इस स्वार्थी संसार में उन्हें कभी सम्मान नहीं दिया क्योंकि सम्मान की ठेकेदारनी लक्ष्मी ने उसे कभी नहीं दुलराया। सरस्वती ने जोर मारा, पर वह भी कुछ पत्र-पत्रिकाओं और किताबों के पन्नों में बंद होकर रह गई। उठापटक से दूर रहने वाले तथा गरीबी से जूझने वाले इस कवि पर कभी शासन ने भी कृपा नहीं की जबकि तमाम जुगाड़ अपात्र लोग शासन की सहायता सम्मान राशि का आये दिन दुरुपयोग कर रहे हैं।

लगभग ६० वर्ष की आयु में दिवंगत हुए इस कवि की न तो हजारों रचनाओं का कोई अता-पता है और न उन कुछ पुस्तकों का जो उनके जीवनकाल में मित्रों की कृपा से छप सकी थीं। स्वयं उनके पुत्रों-परिजनों को भी कोई जानकारी नहीं है। मैं जब जबलपुर में पढ़ रहा था तब मुझे उनकी उस अंधेरी कोठरी में दो-चार बार जाने का अवसर मिला। जिसमें श्वांस का मरीज यह कवि जीवन जीने के लिए अभिशप्त था। उनकी टूटी लोहे की सन्दूक में उनकी सर्जना-सम्पदा थी। अब न सर्जक है, न सम्पदा और और न वह सन्दूक। कोई ऐसी कहानी भी नहीं बन सकी जिसे लोग याद कर सकें। उनके जन्मस्थान बिलहरी में भी उनके बारे में जानने वाला कोई नहीं है।

- १२, एम.आई.जी.,
चौबे कॉलोनी, छतरपुर (म.प्र.) 卐

बुन्देली कविता -

कुर्सी

-डॉ. डी.आर. वर्मा

कोउ कोउ खाँ शक्कर सी लगतई, लगत कोउये गुर सी।
जानों बड़ी बिजत्तर बेला, जा बदमासन कुर्सी।।
भारत में भारत करवा दओ, भइया जेई कुर्सी नें।
देवासुर संग्राम करवा दओ, भइया जेई कुर्सी नें।
कइ इक सत्यानाश करा दये, भइया जेई कुरसी नें।
जरा मूड़ सें खा लये इक इक, भइया जेई कुर्सी नें।
कोउ कोउ खाँ जा कुर्सी फल रई, सोने कैसे खुर सी।
जानों बड़ी बिजत्तर वेला, जा बदमासन कुर्सी।

कर कर अत्त जेई कुर्सी नें, गलियारे फाड़ारे।
कइ इक कर दये लूले लंगड़े, कइ इक हैं माड़ारे।।
कई इक पोंचा दये प्रागन, कई इक अब लौ रो रये।
कई इक कूलें उर चिल्लावें, अंदियारौ कोउ ढो रये।।
जा है बजर छिनार कुरसिया, कैउ करै कैउ छोड़े।
विश्व मोहनी जा बन आई, मुनि लौ ई खाँ दौड़े।।
कोउ कोउ खाँ इमरत सी हो रई, कोउयै भई सत्तुर सी।
जानों बड़ी बिजत्तर बेला, जा बदमासन कुर्सी।

गाँव गाँव से दिल्ली तक लौ, सब कुर्सी खां लर रये।
जैसे मिलै इयै ड़ड़या लो, लर मिर रोजई मर रये।।
कोटन भई कुर्सी की कीमत, जा नौंनी बन आई।
संसद में लौ टूट परी जा, इयै शरम ना आई।।
सब खां लगत प्यारी भारी, टंगी टंगी सोउ फिर रई।
ई में भरौ मोहनी जादू, जा गुंडन सें घिर रई।।
दै रओ उतै मरगटा कूका, तोउ, डड़यायें कुर्सी।
जानों बड़ी बिजत्तर बेला, जा बदमासन कुर्सी।।

कुर्सी की सब कला देख कें, कैउ जिया ललचा रये।
जो कोउ बैठें सोऊ चिपकै, हाई कोट लौ जा रये।
कितने वीर सीज गये भइया, ई कुर्सी के लाने।
कितने दीवाने बन फिर रये, इतै उतै सहयाने।।
कुर्सी में तौ मजा भौत है, भाव एंड़ सें बड़ गये।
कुर्सी कुर्सी कात कैउ के केंडा कब के कड़ गये।।
ईनें कोउयै लाल करा दओ, कोउये चड़ रई जुर सी।
जानों बड़ी बिजत्तर बेला, जा बदमासन कुर्सी।।

कैदो किते नहीं फैलाई, ईनें किर किचयाऊ।
जां तां जंग मचो कुर्सी कौ, लर रये शर्मा दाऊ।
उठा पटक हो रई है सब कऊं कुर्सी तक मुसका रई।
कई एकन की रीती भर रई, भरी कऊँ लुड़का रई।
हाय हाय री कुर्सी तें तौ बर्रोटन दिखलाराई।।
हार भई 'बेचैन' कोउ खां, कोउ खां हो रई दुर सी।
जानों बड़ी बिजत्तर बेला, जा बदमासन कुर्सी।।४।।

- ग्रा. पो. स्यावरी, वाया मऊरानीपुर,
जिला झांसी (उ.प्र.) 卐

दहेज कौ दस्तूर

– आनन्द कंद गुप्ता

दहेज पिरथा आज हमाये समाज में दस्तूर न रैकें समाज को सड़ा-सड़ा के मार दैवो वारी कोढ़ रोग जैसी बन गई है। दहेज रूपी जी राच्छस आये दिनाँ न जानें कितनी कन्यँन के सपनिन को चूर चूर करत भओ न जाने कितनी नईं बहुअँन के रकत को पियत भओ और न जानें कितने वापन कों पीढ़ियँन तक करज के गोड़िन तरें रौंदत भऔ कठोर हँसी हँसरऔ है।

कैवे को मतलब जो है कै दहेज आज भारत की एक बड़ी विकट समस्या बन गओ है अगर जी बंद नहीं भऔ तो समाज कों भारी नुकसान उठावने पर है। और अपनों समाज बरबाद हो जैहै। बिआओ एक पवित्र सम्बन्ध है। एक तरा सें दो मन और दो कुलँन को मिलन और जुड़वी है।

पुराने जमाने में दहेज कन्यादान के रूप में स्वीकारी जात्ती। लड़का वारे लड़किनी (कन्या) को ही सबसे बड़ी सम्पत ठहराउत हते। आज के जमाने में जाको रूप दिनँन-दिनँन बिगरतई जा रऔ है।

पुराने जमाने में कन्या को बाप लरका वारिन कों अपनी हैसियत के अनुसार खुशी-खुशी जेवर, वासन, कपड़ा आदि गिरस्ती के उपयोग की चीजें दान स्वरूप देत्ती जासें वे अपनी गिरस्ती की गाड़ी अच्छी तरियाँ चला सकें काऊ के मौं चिता न बनें।

आज जा प्रथा में कई बुराई घुस आई हैं और जानें जबँरन माँग ठहरोंनी की रूप धारन कर लओ है। एक तरा से व्यापार जैसो बन गयो है। गरीब, गुरवा मताई बाप जे हालात देखकें दिन रात सूकत जात हैं कै जा समय में मोड़ी के हात कैसे पीरे करें। कन्या के गुण योग्यता न देखकें बस पइसा को प्राथमिकता दई जा रई है।

जैसें तैसे जोर तँगोर के कर्ज लेकें बिटिया की बियाओ करवे के बाद भी जौ आशा नई करी जा सकत कि हमाई बिटिया सुखी रै है। काये कै दहेज के मँगनन कों चाँय जितेक देओ तोऊ उनकों खुश नईं करे जा सकत हैं। जाकी पन्नाम जौ निकरत है कै ससुरार में सास, जिठानी, ननदें रोज ताने देती हैं कै जाके बाप ने कछू नईं दओ इन रोज रोज के तानिन सें तंग आकें केई बिटियाँ, बहुयें जहर खाकें अपने प्राँन दे देती हैं।

केऊ जगाँ उनके संगे मार-पीट करी जात है मट्टी को तैल डार के जरा दई जाती हैं। रोज हम अखवाँरन में जे खबरें पढ़त हैं तोऊ हमारे ऊपर कछू असर नईं होत है। कितनी लज्जा की बात है। हमाये हिरदे कितने कठोर हो गये हैं कि हम इनसें कछू नहीं सीख पारये हैं।

इन हालातन कों देखकें केऊ जनें कन्या को गर्भ में मरवा डारत, कैई पैदा होतनई गरौ दबा कें तमाखू की पियाँ देकें मार डारत हैं। जाकी पन्नाम जौ निकर रऔ है कै अपने प्रदेश में लिंग अनुपात रोजईं घटत चली जारऔ है। एक हजार आदमियँन पै सिरफ नौ सै सत्ताइस (९२७) औरतें हैं। अगर जोई स्थिति बनी रई तौ एक दिनाँ ऐसी आहै कै घर-घर केई मोड़ा कुँवारे रै जैहें।

जा घिनौनी ठहरौनी पिरथा को बंद करवे के लाने हमाई अपनी राष्ट्रीय सरकार ने कठोर कानून बनाओ है। अकेले शासन के संगे-संगे समाज के मुखियँन कों भी सब समाजन में ऐसे नियम बनाँय चइये कै जो दहेज लें हैं दें हैं। उनको हुक्का-पानी बंद कर दऔ जै है कोऊ भी उनके कारज में सामिल नईं हूहै। तब जा पिरथा पै अंकुश लग पै हैं

कन्या के मताई बापन को भी अच्छे घर-घर के चक्कर में अपनी हैसियत से आंगे नईं जांय चइये।

आज हम इन्जीनियर, डॉक्टर, आईएएस, आईपीएस को अपनी कन्या को ब्याहन चाहत हैं जा में भी दहेज कों बल मिलत है।

कन्या कों वास्तव में वहाँ दयें चइये जाँ बाकी भूख होय, प्यार मिले, सम्मान मिले कई गई है कै –

लायक ही सों कीजिए – बैर, ब्याह और प्रीत।

आखिर में इन पंक्तियन से सब भैया-बैनन से जोई कैबो है के –

"जा दहेज जा लेंन-देंन सें, भलौ न छूहै कबहूँ।
जाके चक्कर में कितनी, ललनायें रोरईं अजहूँ।
मेट सकौ जौ बदा,
ददा, जश हू है सांचउं भारी।
सब बैनंन से सब भैंयन सें जोई अरज हमारी।।

– शा. कन्या उ.मा. विद्यालय पो. भाण्डेर,
जिला दतिया (म.प्र.)

सूचना

बुन्देली विकास संस्थान बसारी प्रतिवर्ष बुन्देलखण्ड अंचल के इतिहास को लिपिबद्ध करने वाले या उसके महत्वपूर्ण पहलुओं को उद्घाटित करने वाले इतिहासकारों को 'दीवान प्रतिपाल सिंह बुन्देला स्मृति सम्मान' प्रदत्त करता है। इसी तरह बुन्देली साहित्य, संस्कृति तथा समीक्षा के क्षेत्र में अनुकरणीय कार्य करने वाले विद्वानों को 'राव बहादुर सिंह बुन्देला स्मृति सम्मान' प्रदत्त करता है। बुन्देलखण्ड की लोककलाओं की साधना करने वाले कला साधकों को 'डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त स्मृति सम्मान' प्रदत्त करता है। उक्त तीनों सम्मानों में ११००/- नगद राशि, सम्मान पत्र तथा शाल, श्रीफल प्रदत्त करता है।

बुन्देलखण्ड अंचल के सभी सुधीजनों, इतिहासकारों, साहित्यकारों व आलोचकों से निवेदन है कि उनकी दृष्टि में यदि कोई पात्र आता है तो उसका नाम बायोडाटा सहित पुरस्कार हेतु निम्न पते पर प्रेषित कर सकते हैं –

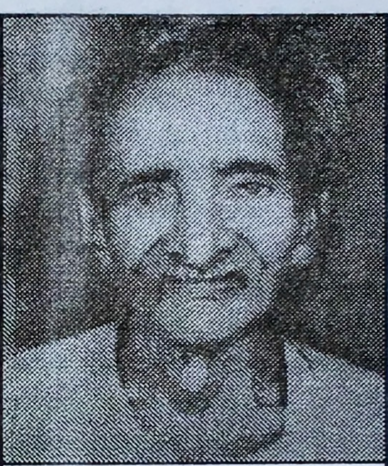
डॉ. बहादुर सिंह परमार

एम.आई.जी.-७, न्यू हाउसिंग बोर्ड कॉलोनी, छतरपुर (म.प्र.)

लोक साहित्य के वैज्ञानिक अध्येयता : डॉ. कृष्णानन्द गुप्त

– अशोक चतुर्वेदी

साहित्य के समग्र मूल्यांकन के लिये आवश्यक है कि उस युग का सम्यक् ज्ञान दर्शन हो। लोक साहित्य सर्व साधारण का परम्परागत होता है। उसके सन्दर्भ में प्रत्येक ग्राम और जनपद एक खुली हुई पुस्तक है, तथा वहाँ का प्रत्येक निवासी उस पुस्तक का एक-एक बहुमूल्य पृष्ठ है। भारत-हृदय बुन्देलखण्ड का गौरव सर्वत्र देदीप्यमान रहा है। युग सृष्टा आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की कर्मस्थली यही है। धनपतराय जी ने नवाब राय से मुंशी प्रेमचन्द नाम इसी धरा नाम पर धारण किया था और हिन्दी पत्रकारिता के भीष्म पितामह पं. बनारसीदास चतुर्वेदी का तो बुन्देलखण्ड चिरकाल तक ऋणी रहेगा, बुन्देली धराधाम के प्रभाव से प्रभावित होकर उन्होंने कलकत्ता में विशाल भारत का सम्पादन करने के स्थान पर बुन्देलखण्ड में रहना स्वीकार कर बुन्देलखण्ड की सेवा की, बुन्देलखण्ड से लेकर संसद तक चतुर्वेदी जी की आवाज गूंजी है कि ''हमने बुन्देलखण्ड का नमक खाया है'' बुन्देलखण्ड के प्रति चतुर्वेदी जी का यह भाव ही हमें उनका ऋणी बनाता है। उन्होंने टीकमगढ़ से 'मधुकर' निकालकर हिन्दी की जो सेवा की है उसे भुलाया नहीं जा सकता। सन् १९४० के दशक में ओरछा नरेश महाराजा वीरसिंह जू देव- बनारसीदास चतुर्वेदी और कृष्णानंद गुप्त हिन्दी साहित्य जगत में त्रिमूर्ति के रूप में जाने जाते थे।



जन्म : ३ फरवरी १९०३
निधन : २७ अक्टूबर १९९०

नृशास्त्र और लोक साहित्य के वैज्ञानिक अध्येयता कृष्णानन्द गुप्त जी ने महाराजा ओरछा (टीकमगढ़) के संरक्षण में लोकवार्ता परिषद् का गठन किया और सन् १९४४ ई. में उनके तत्वावधान में 'लोकवार्त्ता' त्रैमासिक पत्रिका प्रकाशन की कार्य योजना को प्रभावी बनाया जून माह में उसका प्रथम अंक प्रकाशित हुआ। अंग्रेजी के 'फोकलोर' शब्द के पर्याय के रूप में कृष्णानन्द जी ने लोकवार्ता शब्द की सृष्टि करते हुये कहा था - ''लोकवार्ता एक सजीव शास्त्र है उसका अध्ययन हमें मानव के निकट ले जाता है और जन साहित्य तथा जन में फैले हुये रीति-रिवाजों और संस्कारों का अध्ययन करना उसका उद्देश्य है। लोकवार्ता की अध यन सामग्री पुरातत्व की सामग्री की भांति ही मूल्यवान है, परन्तु दुर्भाग्यवश वह अधिक ध्वंसशील है। मिट्टी के पुराने बर्तन तो जिन्हें पुरातत्ववेत्ता इतना महत्वपूर्ण मानता है, पृथ्वी के गर्भ में दीर्घकाल तक सुरक्षित रह सकते हैं और कभी भी बाहर निकाले जा सकते हैं परन्तु लोकवार्ता की सामग्री तो अधिकतर वृद्धजनों की स्मृति में संरक्षित है, संसार से उनके उठ जाने पर वह भी सदा के लिये उनके संग चली जाती है। अतएव उसे शीघ्रातिशीघ्र लिपिबद्ध करने की आवश्यकता है। लोकवार्ता की अनन्त सामग्री हमारे चारों ओर बिखरी पड़ी है।'' उनके इस कथन से यह परिलक्षित होता है कि वे लोकवार्ताओं का अधिक व्यापक और वैज्ञानिक दृष्टिकोण पाठकों के समक्ष रखना चाहते हैं। कृष्णानन्द जी की लोकवार्ता से प्रभावित होकर रायबहादुर महामहोपाध्याय गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने कहा था - ''लोकवार्ता जैसी पत्रिका निकाल कर आप बुन्देलखण्ड की ही नहीं अपितु हिन्दी साहित्य की भी बड़ी सेवा कर रहे हैं। हिन्दी में ऐसा कोई पत्र अब तक नहीं था, जिससे जनता के रहन-सहन उत्सवों, संस्कारों आदि के विषय में समुचित अध्ययन किया जा सकता।'' इससे यह सिद्ध होता है कि कृष्णानन्द जी पहले व्यक्ति थे जिन्होंने हिन्दी साहित्य में लोक साहित्य के वैज्ञानिक अध्ययन की नींव 'लोकवार्ता' के माध्यम से रखी थी।

किसी भी विषय के सम्पूर्ण ज्ञान की गहराई तक पहुंचने की ललक कृष्णानन्द जी में विद्यमान थी। वे संस्कृत, बंगला, गुजराती, मराठी भाषाओं के ज्ञाता थे। अंग्रेजी भाषा साहित्य के तो वे सुधी ज्ञाता थे। हिन्दी और उर्दू उनके पठन-पाठन की भाषा थी, बुन्देली भाषा के रत्न तो वे थे ही। सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थकारों को पढ़ने के कारण उनकी समीक्षा शक्ति बहुत तीव्र हो गई थी, भाषा अथवा भाव की कोई त्रुटि उनकी दृष्टि से बच नहीं पाती थी। उन्होंने लोक विज्ञान एवं लोकवार्ता शास्त्र विषयक सामग्री की शोध पद्धति को सुझाया ''लोकवार्ता संग्रह और लोकनिर्माण या लोक सेवा के कार्य परस्पर पूरक हैं और दोनों साथ-साथ ही चलने चाहिये। प्रत्येक साहित्य का कर्तव्य है कि वह अपने जीवन को एकांगी होने से बचाये और अपने मस्तिष्क तथा हृदय दोनों को समुचित विकास के लिये प्रयत्नशील रहे। कथा-कहानियां, गीतों, कहावतों, पहेलियों और विविध प्रकार के मानवी रीति-रिवाजों तथा संस्कारों के रूप में लोकवार्ता शास्त्र के अध्ययन की प्रचुर सामग्री हमारे चारों ओर मौजूद है उसके संग्रह के लिये दूर जाने की आवश्यकता नहीं, सभी इस काम को कर सकते हैं।''

पद्मभूषण डॉ. वृन्दावन लाल वर्मा के अनुसार - ''हिन्दी के लिये लोकवार्ता एक नया पराक्रम है, इसका श्रेय ओरछा राज्य और ओरछेश को है, उनको हार्दिक बंधाई। श्री कृष्णानन्द जी को नृशास्त्र से प्रगाढ़ स्नेह है, वह लोकवार्ताओं के बहुत उपयुक्त सम्पादक हैं। मुझको जरा भी सन्देह नहीं कि उनके द्वारा हिन्दी में इस विषय के अध्ययन की नींव पड़ेगी। मधु मक्खियाँ शहद को

इकट्ठा करेगी परन्तु वह शहद किन-किन फूलों से कब-कब आया और उसमें क्या-क्या गुण हैं, यह बात प्रयोगशाला में काम करने वाला श्रमी ही बतला सकेगा, मुझे आशा है लोकवार्ता इसी प्रकार की प्रयोगशाला का उपयोग और अवसर प्रदान करेगी।''

लोकवार्ता में कृष्णानन्द जी के वैज्ञानिक दृष्टिकोण से प्रभावित होकर पं. रामनरेश त्रिपाठी के अनुसार ''साहित्य की यथार्थ सेवा लोकवार्ता से शुरू हुई मानता हूँ। वर्षों से अनुवाद ही अनुवाद हो रहा है, साहित्य क्षेत्र में कोई नया अंकुर तो निकला ही नहीं सब अनुवाद पर अनुवाद लादते चले आये, साथ में अनुवाद की आलोचना और प्रत्यालोचना चली। बीसवीं सदी का अंग्रेजी राज का कमजोर दिमाग कहाँ तक बोझ उठाये? पढ़ते-पढ़ते जी ऊब जाता है, और पढ़ने वाला जहाँ का तहाँ रह भी जाता है। बुद्धि के इस भँवर में छोटे बड़े सभी गोता खा रहे हैं। लोकवार्ता के संचालकों को कोटिशः धन्यवाद है कि उन्होंने बुद्धि के भँवर से निकलने का एक नया मार्ग पकड़ लिया।''

लोकवार्ता के माध्यम से डॉ. कृष्णानंद गुप्त ने जो चिन्तन दिया उसके कुछ उदाहरण दे रहा हूँ। जैसे - बुन्देलखण्ड में कारेबाबा- खैरा देव - नागदेव आर गुसाईं - बाबू की पूजा होती है यह कुल देवता की पूजा कही जाती है। अपने पूर्वजों को पूजा करते देख पुत्र-पौत्र आदि के द्वारा वंशानुक्रम में यह पूजा उत्तराधिकार रूप में सनातन काल से परम श्रद्धापूर्वक की जाती रही है, और वर्तमान में भी हो रही है। जिसके जो इष्ट देव हैं वह उनकी पूजा करता है। बाबू की पूजा के सम्बन्ध में कृष्णानन्द जी का मत है - ''बुन्देलखण्ड में प्रायः सर्वत्र और जहाँ-जहाँ तक मुझे ज्ञात है, आस-पास के निकटस्थ जिलों में भी बाबू के नाम से एक पूजा प्रचलित है, जो वर्ष में दो बार माघ और भाद्रपद शुक्ल पक्ष में दोज को होती है यह दोनों दोजें गुसाईं-बाबू की दोज के नाम से प्रसिद्ध है। स्थान तथा जाति भेद के अनुसार पूजा की विधि-समय और नाम में थोड़ा बहुत अन्तर अवश्य पाया जाता है। हमीरपुर की ओर कहीं-कहीं यह पूजा गुसाईं की पूजा के नाम से प्रचलित है। फर्रुखाबाद-मैनपुरी-इटावा आदि की तरफ इसे ''बूढ़े बाबू'' की पूजा कहते हैं। जो लोग बाबू की पूजा नहीं मानते उनके यहाँ ठीक इसी प्रकार की पूजा विजया दशमी (दशहरे) के पूर्व नवरात्र में अष्टमी को होती है और उसे ''आठें की पूजा'' कहते हैं। कहीं-कहीं यह मैर या कुलदेव की पूजा भी कहलाती है। किसी-किसी परिवारों में भाद्रमाह के तीसरे शनिवार की भी पूजा होती है। परन्तु पूजा का मूलरूप और उद्देश्य सब जगह एक है।

पितृ पूजा मानव जाति का सर्वप्रथम धर्म रही है। बाबू की पूजा उसी का अवशेष है। उसमें आदिम-जातियों के धार्मिक विश्वास भी सम्मिलित हैं, जिनका पूर्वजों की पूजा से प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष सम्बन्ध रहा है और जो बहुत महत्वपूर्ण है। पूजा में कुटुम्ब के बाहर के लोगों का प्रवेश निषिद्ध है, कुल के भीतर सब भाईचारे का बर्ताव बरतते, और अपने को किसी एक ही पूर्वज की सन्तान मानते थे। वह एक ऐसा युग था जब कि मनुष्य का बालकों जैसा मन प्रकृति के प्रत्येक चेतन पदार्थ के साथ एक प्रकार की उत्कट आत्मीयता अनुभव करता था। उसके लिये अपने तथा अन्य जीव जन्तुओं और लता-वृक्षों में कोई अन्तर नहीं था। वह उन सबको अपने जैसा ही मानता था। प्राचीन कथाओं में पशु-पक्षी मनुष्य से बात करते और उनके सगे सम्बन्धी बनते हैं। इस प्रकार एक विलक्षण प्रथा का विकास होता है, जिसे टोटम की प्रथा कहते हैं। यह टोटम क्या है? थोड़े में बताना कठिन है, इस समय तो इतना ही समझ लेना पर्याप्त है कि इस प्रथा के अनुसार प्राकृत पुरुष अपने कुल का परिचय अधिकतर किसी जीव-जन्तु या लता-पुष्प के नाम से देता था और उसे ही अपना पूर्वज मानता और पूजता भी था। कुल अथवा पूर्वज का परिचय देने के लिए व्यवहृत इस चिन्ह को ही अंग्रेजी में टोटम कहते हैं। टोटम की यह संस्कृति किसी समय संसार के सभी देशों में प्रचलित रही है, भारत वर्ष में उसके अनेक उदाहरण मिलते हैं। आज भी अनेक जातियाँ जीव-जन्तुओं और लता वृक्षों के नाम से अपने कुल का परिचय देतीं हैं। टोटम केवल पूर्वज ही नहीं कुल का रक्षक देवता भी होता है। अतएव उसे सभी - भय और सम्मान की दृष्टि से देखते हैं। जो जिसका टोटम है वह उसे खाने-पीने, मारने या छूने से परहेज करता है। यहाँ तक कि कहीं तो टोटम को देखने की मनाही होती है। ऐसी दशा में उसकी पूजा एकान्त में होती है, और दूसरे टोटम के लोग उसे न देख सकते हों तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। बाबू की पूजा में इसी टोटम का लक्षण मौजूद है। पूर्वजों की पूजा के साथ-साथ वह एक टोटम की अज्ञात कुलदेव की पूजा भी है। आज हम भले ही इसके नाम से बुन्देलखण्ड के घर-घर में पुजने वाले कुलदेवों के नाम भूल जायें, परन्तु वह है तो हमारे आदिमकालीन धार्मिक विश्वासों का एक चिन्ह ही।''

''पूजा के समय कुछ जातियों में विशेष प्रकार की शाक-भाजी का बनना भी टोटम की पूजा का स्मारक है, प्रागैतिहासिक काल में शाक भाजियों की संख्या कम थी, इसलिये उनका बहुत महत्व था। जब किसी एक जाति के लोगों को किसी नये साग का पता लगता होगा तब स्वाभाविक रूप से दूसरी जाति के लोगों से उसे गुप्त रखने का प्रयत्न किया जाता होगा। कुछ विद्वानों का मत है कि वह साग स्वयं टोटम बनकर पूजने लगता होगा, वह कुछ हो। इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि टोटम की पूजा के अवसर पर उसका व्यवहार अवश्य होता होगा। अलग-अलग कुलों में अलग-अलग साग-भाजियों व्यवहृत होती होंगी और आज भी जब कि उनकी कमी नहीं है हम वैसा ही करते जा रहे हैं।''

''पूजा में आटे के दीयट (जोत) भी विचार योग्य है - पूजा के बाद जोत के आटे की रोटी बनाई जाती है, यह विश्वास किया जाता है कि पूजा की रोटी में देवता की शक्ति आ जाती है अतएव जो कोई उसे खायेगा उसमें वैसी ही शक्ति सन्निष्ट हो जायेगी।''

नृशास्त्री कृष्णानन्द जी ने लोक विश्वास, लोक मान्यताओं के विभिन्न विषयों पर वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रगट किया है - अक्षय तृतीया (अकती) हिन्दू समाज का प्रमुख त्यौहार है इस दिन त्रेता युग का प्रारम्भ माना जाता है। यह वैशाख शुक्ल तीज को होती है इसका नाम अक्षय तृतीया या अखती (अकती) होने से यह

माना गया है कि इस दिन जो कार्य किया जाता है वह अक्षय होता है, अर्थात् उसका नाश नहीं हाता है इसलिये इस दिन समस्त शुभकार्य सम्पादन किये जाते हैं।

हमारे कृषि प्रधान देश भारत वर्ष में कृषक गण अपना कृषि कार्य इसी दिन से प्रारंभ करते हैं। बैलों के बाँधने के लिये रस्सी जिसको बुन्देलखण्ड में "नाना-पगैया" कहते हैं, इसी दिन से बनाना प्रारंभ करते हैं, और अपनी श्रद्धा के अनुसार इस दिन कोई नवीन पदार्थ भोजनों में अवश्य बनाते हैं। मिट्टी के चार घैला पानी से भरकर उन पर पकवान रखकर पूजन करते हैं, तथा एक आभूषण खंगीरिया (गले में पहनने का आभूषण) रखते हैं और उसको पूजकर अपने साल भर का सगुन मनाते हैं, तथा "कुहरीं, कौंरीं (पानी में उबल हुये गेहूँ) बनाकर आपस में बांट कर खाते हैं। पूजा के समय दरवाजे पर बैलों को दरवाजे की ओर मुंह करके खड़ा करते हैं और उनका पूजन कर अठवाई खिलाते हैं उसके पश्चात् उन्हें हल में जोतकर इस प्रकार खड़ा करते हैं कि उनका मुँह घर की ओर हो। जब पूजन कर लेते हैं तो बड़ी श्रद्धा से हाथ जोड़कर प्रार्थना करते हैं कि "हे भगवान्! साउ (साव-साहूकार) और सरकार सें उरन करियो, और हमें साल भर के खैवे खां देव" इतना कहकर नाना-पगैया में गांठ लगाते और सूखे खेत में बखरनी करते हैं। इसी दिन से किसान खेतों में काम करना प्रारम्भ करते हैं। चार घटो में जल भरकर पूजन करने से अभिप्राय यह होता है कि वर्षा ऋतु के चारों मास आषाढ़, श्रावण, भादों, क्वाँर (अश्विन) मान लिये जाते हैं, उन पर गीला कपड़ा डाल दिया जाता है जिस घट का पानी टपक जाता है, उसी मास में पानी कम बरसने का अनुमान लगाया जाता है। किसी-किसी क्षेत्र में इन चारों घटों में चना अथवा देवल डालकर वर्षा का समय, ज्ञात करने की परम्परा है।

इस दिन पतंगें विशेष रूप से उड़ाई जाती हैं और बालिकायें पुतरियों (पुतलियों) से खेलती हैं संध्या के समय श्रृंगार करके गाती बजाती अपनी सखी सहेलियों के साथ एक वट वृक्ष के नीचे जातीं और उसका पूजन करतीं हैं। घर से देवल तथा तेल की पूड़ी के टुकड़े और वटवृक्ष के पत्ते अथवा जामुन या आम के पत्ते मिलकर लाती हैं, और सबको बांटती हैं, यह एक प्रकार का सगुन समझा जाता है। इस प्रकार अखती (अकती) गीत गातीं हुई घर से जातीं और आतीं हैं। इस अवसर पर जो गीत गाये जाते हैं उनमें से एक -

अकती खेलन कैसें जाऊँरी, बरा तरें मेले लिवौआ।।
पैलऊँ लिवौआ नउआ जो आओ, नउआ के संग नईं जाऊँरी।
बरा तरें मेले लिवौआ।।
दूजी लिवौआ मोरी ससुरा जो आओ, ससुरा के संग नईं जाऊँरी।
बरा तरें मेले लिवौआ।।
तीजी लिवौआ मोरो जेठा जो आओ, जेठा के संग नईं जाऊँरी।
बरा तरें मेले लिबौआ।।
चौथे लिबौआ मोरे राजा जो आये, राजा के संग चली जाऊँरी।
बरा तरें मेले लिबौआ।।

भावार्थ - लड़की को वट (बरा-बरगद) के नीचे अकती खेलने जाना है, पर कैसे जायें, ससुराल से लिवौआ आये हैं, जो वहां ठहरे हैं, पहले नाई लिवाने आता है लड़की उसके संग नहीं जाती है फिर उसे ससुर-जेठ भी लिवाने आते हैं, वह उनके साथ भी नहीं जाती, तब स्वयं उसके प्राणाधार-प्रियतम उसे लिवाने आते हैं, उनके साथ वह चली जाती है।

नृशास्त्र के वैज्ञानिक अध्येता डॉ. कृष्णानन्द गुप्त जी श्री बालकृष्ण देव तैलंग के उपरोक्त लेख पर अपनी सम्पादकीय टिप्पणी लिखते हैं - "हिन्दू धर्म एक बहुत व्यापक धर्म है उसमें बहुत से रीतिरिवाज और बहुत सी पूजायें हैं, अक्षय तृतीया भी उनमें से एक है। वह मुख्यतः कृषि एवं वृक्ष पूजा का त्यौहार जान पड़ता है। बाद में अन्य कार्यों के लिये भी वह एक दिन शुभ दिन बन गया। भारत में अति प्राचीन काल से वृक्ष पूजा प्रचलित रही है, मोहैं जोदड़ो, हड़प्पा तथा सिन्धु प्रान्त के अनेक स्थानों में प्राप्त मुद्राओं पर पीपल के वृक्ष की पत्तियों का चित्रण मिलता है। वृक्षों में देवी-देवताओं की आत्माओं का अस्तित्व माना जाता है, यहीं से उनकी पूजा की प्रथा प्रारम्भ होती है।"

अक्षय तृतीया के पावन पर्व की बेला में पतंग उड़ाने की परम्परा के सम्बन्ध में डॉ. कृष्णानन्द जी का मत है, पतंगों के खेल की उत्पत्ति कब और किस प्रकार हुई यह एक अनुसंधान का विषय हैं पूर्व के प्रायः सभी देशों में पतंग उड़ाई जाती हैं, कोरिया, चीन, जापान, मलाया आदि देशों का तो यह एक राष्ट्रीय खेल है। भारतवर्ष की भांति चीन में पतंग उड़ाने के लिये एक विशेष दिन नियत है, वह है वर्ष के नवें महीने का नवां दिन। न्यूजीलैण्ड के 'मवारियों' में भी पतंगों का खेल प्रचलित है। उनके यहां यह एक धार्मिक कृत्य है। पतंग उड़ाते समय वे एक गीत गाते हैं, जो 'पतंग का गीत' कहलाता है। इसलिये कुछ विद्वानों का मत है कि आदिम जातियों के किसी धार्मिक विश्वास से पतंग उड़ाने के खेल का सम्बन्ध है।

बुन्देलखण्ड में शायद ही कोई ऐसा गांव हो जहां होली के अवसर पर ईसुरी की फागें न गाई जाती हों, और उन फागों के रचयिता का स्मरण श्रद्धा और सम्मान के साथ न किया जाता हो। कृष्णानन्द जी के सम्पादन में लोककवि ईसुरी की रचनाओं (फागों) का सर्वप्रथम शोधपूर्ण, सुन्दर-सुमुद्रित संस्करण प्रकाशित हुआ ईसुरी का जन्म स्थान बघौरा समझा जाता था, सन् १९४४ ई. में कृष्णानन्द जी ने शोध करके सर्वप्रथम घोषणा की कि "ईसुरी का जन्म मऊरानीपुर (झांसी) के निकट ग्राम मेंड़की में हुआ था। उसका पूरा नाम "ईश्वरी प्रसाद" था। वह जिजौतिया ब्राह्मण थे, मेंड़की में अब भी उनका घर है। (कृष्णानन्द जी ने कई बार मेंढकी की यात्रा की थी) वहाँ के निवासी "ईसुरी बब्वा" के नाम से अपने गाँव के इस कवि का स्मरण करते हैं। ईसुरी का बचपन अपने मामा के यहाँ लुहर गाँव (कौनियाँ हरपालपुर) में बीता और जीवन का शेष अंश बघौरा में। वहाँ वह अंत समय तक रज्जबअली नाम के जमींदार के यहाँ तहसील वसूली का काम करते थे वेतन पाँच रुपया मासिक और खाना कपड़ा। इन रज्जब

अली की विधवा पत्नी आबादी बेगम अब भी मौजूद हैं। (सन् १९४४ ई. में कृष्णानन्द जी इनसे स्वयं मिले थे) बहुत वृद्ध हैं, नौगाँव छतरपुर में रहतीं हैं।

बुन्देलखण्ड का प्रत्येक निवासी ईसुरी के काव्य से उतना ही आनन्द और रस प्राप्त करता है - जितना हम सूर-बिहारी या पद्माकर की रचनाओं से, उनके विषय में एक दोहा प्रचलित है-

रामायण तुलसी कही, तानसेन ज्यों राग।
सोई या कालिकाल में, कही ईसुरी फाग।।

विदेशी लोक साहित्यविदों की पसंद बन चुकी इस पत्रिका से "वैरियर एल्विन" जैसे विद्वान भी प्रभावित हुए थे लोकवार्ता में उनके पत्र प्रकाशित हैं। नवरात्र में माता के भजन, जगदेव की कीर्ति गाथा पँवारा, कारसदेव की पूजा और गोटें, देवी-देवताओं की बैठकें, लोक विश्वास, गड़रियों में विवाह प्रथा, सौंर जाति, कुचवँदियों में अग्नि परीक्षा, अखती (अक्षय तृतीया) नीरता, मामुलिया आदि बुन्देली लोक संस्कृति से सम्बन्धित समग्र साहित्य का मूल रूप और उसका वैज्ञानिक विवेचन लोकवार्ता में प्रकाशित होता रहा है।

पुरातात्विक शोध सामग्री के आधार पर मड़खेरा (टीकमगढ़) के देवी मन्दिर को सूर्य मन्दिर होने की सर्वप्रथम घोषणा कृष्णानन्द जी ने ही की थी। सन् १९६० ई. में बिहार राष्ट्र भाषा परिषद पटना द्वारा आपकी कृति "बुन्देली भाषा और साहित्य" का प्रकाशन हुआ आप की कृति "बुन्देली कहावत कोश" का प्रकाशन उत्तरप्रदेश सूचना विभाग द्वारा किया गया। नेशनल बुक ट्रस्ट दिल्ली से "हिन्दुस्तानी कहावत कोश" का प्रकाशन हुआ। सन् १९४८ ई. में वे विन्ध्यप्रदेश के सूचना विभाग में सम्पादक रहे। "शेलकस" उपन्यास का अनुवाद करके इन्होंने रूसी लेखक गोर्की से हिन्दी लेखकों को परिचित कराया। लोक साहित्य की अनमोल धरोहर उनका "बुन्देली शब्द कोश" अब भी अपने प्रकाशन की प्रतीक्षा में है। लोक साहित्य सम्बन्धी उनके अनेक लेख विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में बिखरे हुये हैं उन्हें संकलित करने की आवश्यकता है।

डॉ. कृष्णानन्द गुप्त जी ने साहित्य और लोक संस्कृति की जो सेवा की है वह निःसन्देह अभिनन्दनीय है परन्तु आज का प्रचार युग अपने सेवकों को कहाँ याद रख पाता है। सरस प्राण व्यक्ति कूटनीति से सदा दूर रहते हैं। वे एकान्तप्रिय थे दन्द-फन्द और तथा-कथित की राजनीति से दूर रहते थे। अपने प्रथम आंचलिक उपन्यास "केन" में आपने कालिंजराधिपति 'गंड' और 'धंग' के ऐतिहासिक सन्दर्भ से लेकर 'कर्णवती' नदी का 'केन' नामकरण सम्बन्धी आख्यान मार्मिक, रोचक, मनमोहक और लोकध ारणाओं के अनुरूप बुन्देली परिवेश में - परिवेष्ठित किया है। इस उपन्यास में राष्ट्र के प्रति समर्पण की भावना का बीजारोपण किया गया है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि डॉ. कृष्णानन्द गुप्त लोक साहित्य के वैज्ञानिक अध्येता थे।

सौभाग्य से इन पंक्तियों के लेखक को बाल्यकाल से डॉ. कृष्णानन्द जी का सम्पर्क प्राप्त हुआ है, वे मेरे नाना जी के पास आया करते थे। और मैं उनकी साहित्यिक चर्चा सुना करता था, उनके स्नेह को प्राप्त कर मैं भी अक्सर उनके घर जाता था। साहित्य जगत में किसी भी विषय की चर्चा करने पर वे विधिपूर्वक मुझे समझाया करते थे अनेक विषयों में उनकी गहरी पैठ थी। नृशास्त्र और कथा साहित्य के मर्मज्ञ तो वे थे ही। इतिहास, पुरातत्व, मनोविज्ञान आदि पर भी वे धाराप्रवाह बोलते थे। नभमण्डल में नक्षत्रों, तारामण्डलों की स्थिति ज्ञान को प्रयोग रूप में देखने समझने की उन्हें विशेष रुचि थी। गरौठा में रात्रि के समय घण्टों नभमण्डल में तारे देखते हुये हमने उन्हें देखा है। डॉ. कृष्णानन्द गुप्त जी बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झांसी में "बुन्देली परिषद" के अध्यक्ष भी रहे हैं। उन दिनों इस परिषद में सचिव - डॉ. भगवानदास गुप्त झांसी, उपसचिव - डॉ. सियारामशरण शर्मा झांसी, उपाध्यक्ष - डॉ. यतीन्द्र तिवारी - विभागाध्यक्ष हिन्दी विभाग, पं. जे.एल.एन. डिग्री कालेज बांदा।

अपना नाम प्रकाशित करने की लालसा उन्हें कभी नहीं रही वे "सत्य शोधक" एक ईसुरी भक्त', 'अरुण कुमार', 'सव्यसाँची' आदि नामों से प्रताप, सुधा, विशाल भारत, मधुकर लोकवार्ता आदि पत्र पत्रिकाओं में लिखते रहे। साहित्य मन्दिर के निर्माण में उसके शिखर की चमक-दमक बनना इन्हें स्वीकार नहीं रहा, वे तो नींव का वह पत्थर बनने की चाह रखते थे जिससे साहित्य मन्दिर का आधार चिरकाल तक सुदृढ़ बना रहे।

३ फरवरी सन् १९०३ ई. को जन्में गरौठा (झांसी) के पैतृक निवासी श्रद्धेय डॉ. कृष्णानन्द जी साहित्य यात्रा करते हुये २७ अक्टूबर १९९० ई. को स्वर्गधाम पधारे। लोक साहित्य के वैज्ञानिक अध्येयता डॉ. कृष्णानन्द गुप्त जी ने साहित्य जगत की जो सेवा की है उसके लिये वे सदैव स्मरण किये जायेंगे।

– लोक संस्कृति शोध संस्थानम्, गरौठा झांसी, उ.प्र. 卐

बुन्देली गजल

– गुप्तेश्वर द्वारिका गुप्त

उफन परीं संकाएं सबरीं, सांसऊं मन की आँच लगें
आस बदरिया थिगरन बारी, ऊमें कैसें टांच लगें
अटकर पेंड़ी कछू नें जिनखों, बे बन बैठे हैं परखैया
इन परखैयन की नजरन में, सबरे हीरा कांच लगें
तुम मंदर में जाव देख लो, जो कऊं झूटी लगै कये की
दरसन पाही नें ईसुर के, बिना घूँस उर लांच लगें
बे कनबैरी दै कें बैठे, उनें ती कन्नें अपने मन की
तुम जो कैंसउ कहत रओ पै, उनें ना गडुआ-ग्वांच लगें
घर घर दसा कात नई बन रई, ऐंसे ऐंसे मुन्स लुगाई
ठांनत न्यांव जियै सुरजावे, पंच्याटी दस पांच लगें
कुठिया में गुर फोरत बेई, जिनकी बातें भल-मन-सई की
देखौ परखौ मिठ-बोलन खों, सांसी कहें किमांच लगें।

– म.प्र.वि.मं. कॉलोनी, जबलपुर (म.प्र.) 卐

बुन्देली लोक साहित्य में संयुक्त परिवार

— डॉ. लखन लाल खरे

बुन्देलखण्ड में संयुक्त परिवारो की परम्परा रही है। संयुक्त परिवार की स्थापना के मूल में श्रम और सम्पत्ति के विभाजन को रोकने तथा पारिवारिक सदस्यो की सामूहिक सुरक्षा के भाव तो हैं ही; परम्परागत आदर्शों और सांस्कृतिक चेतना की धारा को अविरल प्रवहमान बनाये रखना भी इसका एक अप्रत्यक्ष कारण रहा है। यह अन्य बात है कि प्रत्येक क्षेत्र में मनुष्य की बढ़ती जा रही असीमित इच्छाओं और आवश्यकताों ने संयुक्त परिवार के परम्परागत रूप को तोड़ दिया है, उसे विकृत कर दिया है। डॉ. बीरेन्द्र निर्झर बुन्देलखण्ड की संयुक्त परिवार प्रणाली को उद्घाटित करते हुए लिखते हैं - "बुन्देली परिवार संयुक्त परिवार प्रणाली का आदर्श उदाहरण है, जहां माता-पिता, पुत्र-पुत्री, भाई-बहिन, सास-बहू, पति-पत्नी, ननद और भावज, सभी आनन्द के साथ मिलकर निवास करते हैं। परिवार की व्यवस्था का भार परिवार के सबसे बड़े पुरुष सदस्य पर होता है इसे गृहपति या कर्ता कहा जाता है। संयुक्त परिवर की संस्था में कर्ता सर्वाधिक महत्वपूर्ण व्यक्ति होता है। उसकी स्थिति सर्वोच्च होती है तथा अधिकार असीम। वह भी सम्पूर्ण पारिवारिक चक्र का संचालन तथा समस्त सम्पत्ति का व्यवस्थापक होता है। वह परिवार की धुरी है और सभी सदस्य उसके आश्रित।" संयुक्त परिवार के सम्बन्धों के सम्बोधन के लिए बुन्देली के अपने शब्द हैं। माता-पिता के लिए ओरी-ओरा, मताई और बाई-दद्दा, भाई-बहिन के लिए भइया-बेन, ननद-भाभी के लिए नन्द या ननदी-भौजाई, चाचा-चाची के लिए कक्का-काकी तथा-दादा दादी के लिए बब्बा-बऊ जैसे गुरीरे शब्दों का प्रचलन है। घर के मुखिया को बड़े या बड्डे कहकर संबोधित किया जाता है। इन शब्दों का अस्तित्व यह दर्शाता है कि बुन्देलखण्ड में संयुक्त परिवार की सफल अवधारणा प्राचीन समय से रही है।

संयुक्त परिवार का उपरवर्णित रूप बुन्देली लोककाव्य और लोकगाथाओं में प्रतिबिम्बित होता है। बुन्देली संस्कृति की यह विशेषता है कि जहां जो भी मांगलिक कार्य होते हैं, नेग-दस्तूर होते हैं अथवा रीति-रिवाजों की सम्पूर्ति होती है, उनमें परिवार और कुटुम्ब की सहभागिता होती है। बिना परिवर की सहभागिता के इन कार्यो का पूर्ण होना अच्छा नहीं समझा जाता। भाई को पुत्र प्राप्ति के समाचार से बहिन को सर्वाधिक प्रसन्नता होती है। वह खुशी से फूली नहीं समाती और भेंट लेकर गाते हुए भाई के घर पहुँचती है -

बधाव लई ननदी, लालन के दुआरें।
कां से आई पीपर, कहां से आई सोंठ,
कां सें आई ननदी, लाल के दुआरें।
महुबे से आई पीपर, सागर से आई सोंठ,
झांसी से आई ननदी, लालन के दुआरें।

अब खास स्थलों से ही पीपर, सोंठ और ननद के आने में क्या ऐतिहासिक सम्बन्ध हैं, यह पृथक शोध का विषय है।

बुन्देलखण्ड में पुत्र जन्म के पश्चात् बधाई और चंगेर (पालना) बहिन ही लाती है। बहिन की इस अतिशय प्रसन्नता का कारण दोनों में अटूट स्नेहबंधन तो है ही, वहिन की यह सोच भी हो सकती है कि मेरे पिता का वंश डूबेगा नहीं, आगे बढ़ेगा।

पुत्र जन्म के पश्चात् चरुए का नेंग होता है। संयुक्त परिवार में बड़ी-बूढ़ियों के अनुभवी और कुशल निर्देशन में यह रीति खुशी-खुशी सम्पादित की जाती है। इसमें समस्त पारिवारिक सदस्यों का सहयोग परिलक्षित होता है -

तुम तो अटारी चढ़ जइयो, बहानो पिया हम कर लेहें।
सासू जी आबें चरुआ धराबें,
चरुआ धराई नेग माँगे, बहानो पिया हम कर लेहैं।
हम भी तुमारे सासू नाती तुमारी
लरका तुमारी घरे नइयां, तिजोरी में तारी डरो है।
जिठनी जी आवें चरुआ धराबें। चरुआ धराई नेग....
देवरानी जी आवें चरुआ धराबें। चरुआ धराई नेग....
ननदी जी आवें चरुआ धराबें। चरुआ धराई नेग....

उपर्युक्त गीत स्पष्ट रूप से संयुक्त परिवार को ध्वनित कर रहा है। कुआँ पूजन में भावज की गगरी उतारने का अधिकार देवर को ही है, पर प्रसूता के साथ उसकी देवरानी- जिठानी आदि सब सहयोग करते हैं-

चलो देवरनियाँ, चलो जिठनियाँ, हिलमिल पनियाँ चलिये लाल।
ऐले कुआ को तुम भर ल्याओ, पैले खों हम जैहें लाल।।

इन देवरानियों-जिठानियों मे वे भी परिगणित हैं, जो चचेरी हैं। बुन्देलखण्ड के संयुक्त परिवारों की यह मौलिक विशेषता है कि चचेरे सम्बन्ध भी सगे संबंधों की भांति मान्य हैं। इस जनपद के लोकगीतों में 'काका-काकी', 'भतीजे-भतीजी' जैसे शब्दों का उल्लेख तो हुआ है, पर 'चचेरे' या 'ककयावते' भाई-बहिनों का प्रयोग संभवतः कहीं प्राप्त नहीं होता। बुन्देलखण्ड की संयुक्त परिवार प्रणाली में सम्बन्धों की निजता, गहनता और पारस्परिक विश्वास की दृढ़ता का यह महत्वपूर्ण प्रमाण है।

स्त्री सम्बन्धों की भांति पुरुष सम्बन्धों के बारे में भी यह बात कही जा सकती है - श्वसुर, जेठ देवर, किसी में भी अलगाव का भाव नहीं।

ऊपर बदरा घुमड़ाँय, गोरी धना पनियाँ खों निकरी।
जाय जो कैयो उन राजा ससुर सें,
अँगना में कुइया खुदाँय, तुमारी बहू पनियाँ खों निकरी।
जाय जो कइयौ उन राजा जेठा सें,
चंदन पाटें डरांय, तुमरी बहू पनियाँ खों निकरी।
जाय जो कइयौ उन राजा देवर सें,
रेशम डोरी डराँय, तुमारी बहू पनियाँ खों निकरी।
जाय जो कइयो उन राजा पिया सें,
सोने के घेला बनवाँय, तुमारी धना पनियाँ खों निकरी।

और प्रस्तुत बनरा गीत तो स्पष्ट रूप से यह व्यंजित कर रहा है कि बुन्देलखण्ड में एक-दो नहीं, तीन-चार पीढ़ियाँ बड़े प्रेम से एक छत के नीचे निवास करती थीं -

मोरे राम लखन से बनरा, जाने को बिलमा लये री।
मोरो पूनो कैसी चंदा, सब जग खों उजयारो री।
उनके आजुल ने बिलमा लये, आजी कंठ लगा लये री।
उनके दादा ने बिलमा लये, दादी कण्ठ लगा लये री।
उनके काका ने बिलमा लये, काकी कण्ठ लगा लये री।
उनके बाबुल ने बिलमा लये, मैया कण्ठ लगा लये री।

संयुक्त परिवार में रक्त सम्बन्धियों का एक छत के नीचे आना और एक तवे की रोटी खाना तो ठीक है, पर यह वह प्रदेश है, जहाँ परिवारों मे काम करने वाले नाई, ढीमर, कुम्हार, माली-तेली आदि से भी पारिवारिक सम्बन्ध स्थापित किये जाते थे। तमाम मांगलिक कार्यों में इनकी उपस्थिति अनिवार्य मानी जाती थी और इनके श्रम सहयोग को भरपूर मान-सम्मान दिया जाता था। विवाह के अवसर पर तेल चढ़ने के समय का यह दृश्य :

चड़ गओ तेल फुलेल चटक रई पाखुरियाँ।
लंका से सोनो मंगाव, गढ़ाओ नोंनी पाखुरियाँ।
सुनरा खों देव बुलाय, गढ़े वो नोनी पाखुरियाँ।
तेलिन लाई तेल फुलेल, मालिन लाई पाखुरियां।। [२]

ह्रासोन्मुख सम्बन्धों के मध्य ठेठ ग्रामों में यह प्रथा परिलक्षित हो जाती है, पर गिन रही है अंतिम सांसें। इतने पर भी यहां नाई, बढ़ई, ढीमर, सोनी, माली, तेली आदि को भी आदरसूचक 'ठाकुर' शब्द से सम्बोधित किया जाता है और आत्मीय सम्बन्धों - कक्का, दद्दा, भैया आदि के सम्बोधन से सम्मानित किया जाता है। ऐसा हो भी क्यों न? इस प्रान्त की संस्कृति में तो गालियाँ भी आदर सहित ही जाती हैं - सास के 'जू', सारे 'जू'...।

यह एक आश्चर्यजनक सत्य है कि जहाँ बुन्देली लोककाव्य में संयुक्त परिवार की अवधारणा को पुष्ट करने के दृष्टान्त हैं (यहाँ अपवाद भी हैं) वहीं परम्परागत कथासाहित्य में जो मिथक गढ़े गये हैं, उनमें संयुक्त परिवार के साथ-साथ इसके विखण्डन के बीज भी उपस्थित हैं। वर्तमान समय के एकाकी परिवार की परिकल्पना और इसके दुष्प्रभाव बुन्देली लोककथाओं में सुरक्षित हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि बुन्देलखण्ड के काव्य काल तक संयुक्त परिवार सहज स्थिति में था, पर भूमि पर बढ़ते भार और आय के संकुचित होते जा रहे आधार ने संस्था में दरार पैदा कर दी। इसकी अनुगूँज बुन्देली लोकगाथाओं में सुनाई देती है। सास-बहू के झगड़े, भाइयों में वैमनस्य, चाचा-भतीजों में तकरार- ये तमाम प्रसंग जो लोक गाथाओं और लोककथाओं में हैं, संयुक्त परिवार के बिखराव के चरम बिन्दु हैं।

बुन्देलखण्ड में लोककथाएँ दो प्रकार से कही सुनी जाती हैं (थीं) - परिवार की बूढ़ी पुरानी कोई दादी-नानी अथवा माँ अपने नाती-पोतों-पुत्रों को रात में सोते समय 'किसा' सुनाती थी, घर के भीतर। घर के बाहर चौपालों पर ग्रामवासी एकत्र होते थे, परस्पर चर्चाएँ करते थे और किसा-कहानियों द्वारा मनोरंजन करते थे। मेरे मतानुसार, घर के भीतर जो 'किसाएँ' सुनाई जाती थीं, उनके मिथकों और पात्रों की घटनाओं में कहीं-न-कहीं 'सुनानेवाली' का भोगा हुआ यथार्थ और अनुभूति अवश्य रहती थी, जो संयुक्त परिवार की मर्यादाओं के पालन में देहरी के बाहर न जा पाने की विवशतावश 'किसाओं' के माध्यम से अभिव्यक्त हो जाया करती थी। यह वह अनकही अभिव्यक्ति होती थी, जिसमें तत्कालीन पारिवारिक मर्यादाओं के सलीब की चुभन टँकी होती थी। बाल-चेतना में रोपित किसाओं की यह पौध कालान्तर में चौपालों में लहलहाने लगती थी। इसके अतिरिक्त ग्राम अथवा आसपास घटित विशेष घटनाओं की 'दबी जुबान' में चर्चा न कर उनका प्रकटीकरण किसाओं के माध्यम से होता होगा। इन लोककथाओं में संयुक्त परिवार की विशेषताओं और न्यूनताओं का यथार्थ चित्रण है।

उपर्युक्त प्रकार की लोककथाओं के अतिरिक्त तीसरे प्रकार की ऐसी लोककथाएं हैं, जो आस्थामूहक हैं और जो किसी-न-किसी पर्व-त्यौहार या व्रत से जुड़ी हैं। इनमें भी बुन्देलखण्ड के संयुक्त परिवार और उसमें समय के प्रभाव से हो रहे परिवर्तनों की झलक है।

विज्ञान और टैक्नॉलॉजी के इस अत्याधुनिक युग में भी बुन्देलखण्ड के अनेक अंचलों में ऐसे संयुक्त परिवार हैं जिनकी सदस्य संख्या ६०-७० के बीच है। ये सदस्य आधुनिकता का सम्यक् निर्वाह करते हुए भी बुन्देलखण्ड की संयुक्त परिवार की परम्परा को जी रहे हैं, पर आज ऐसे दृष्टान्त अपवाद स्वरूप हैं। संयुक्त परिवार के विघटन का चित्रण आधुनिक बुन्देली साहित्य में स्पष्ट परिलक्षित हो रहा है। 'दो नोई घर खोई' (दो तवे हुए और घर नष्ट हुआ), 'खान लगे दूदभात, बिसर गये माई-बाप', 'अपनो दाम खोटो तो परखइया खां का दोस' तथा 'घर के कुरवा से आँख फूटत' जैसी अनेक बुन्देली कहावतों में बुन्देलखण्ड की संयुक्त परिवार प्रणाली के गुण-दोष, एकल परिवार के कारण माँ-बाप तथा वृद्धों की उपेक्षा और उपन्यास विशेषताएँ-न्यूनताएँ आभासित होती हैं।

समय की चौतरफा मार ने बुन्देलखण्ड की संयुक्त परिवार प्रणाली को ध्वस्तप्राण कर दिया है। डॉ. परशुराम शुक्ल 'विरही' इसके कारणों को उद्घाटित करते हुए लिखते हैं - 'नौकरी और उसके कारण मूल निवास स्थान से दूर रहना, औद्योगीकरण, नगरीकरण, पाश्चात्य संस्कृति और शिक्षा का प्रभाव, नारी-शिक्षा, आन्तरिक कलह, व्यक्तिवादी विचारधारा, स्वतंत्र व्यवहार की प्रवृत्ति, नवीन सामाजिक मूल्यों और हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियमों के कारण संयुक्त परिवार तेजी से विघटित हो रहे हैं और उनका स्थान एकाकी परिवार ले रहे हैं।'[३]

पीड़ा यह नहीं है कि बुन्देलखण्ड में संयुक्त परिवार प्रणाली खण्ड-खण्ड हो गयी है। काँटे सी कसक तो यह है कि इसके विखण्डन से बुन्देलखण्ड के रीति-रिवाज, संस्कृति और संस्कारों का अधोपतन हुआ है।

संदर्भ -

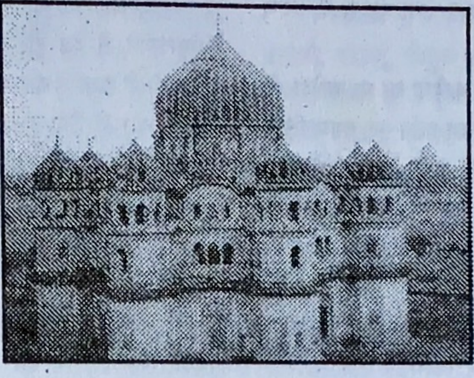
१. बुन्देलखण्ड की साहित्यिक धरोहर, सम्पा. डॉ. बहादुर सिंह परमार, पृ. २२ (श्री वीरेन्द्र निर्झर का आलेख - बुन्देली कहावतों में परिवार व्यवस्था)
२. श्रीमती माधुरी शिवकुमार शर्मा, जगतपुर, कोलारस के सौजन्य से
३. बुन्देलखण्ड की संस्कृति : डॉ. परशुराम शुक्ल विरही, पृ. १६

- शासकीय एस.एम.एस. महाविद्यालय, कोलारस (शिवपुरी)

मऊसहानिया स्थित कमलावती स्मारक

– संजय कुमार जोशी

महारानी कमलावती के बचपन का नाम देवकुँवर था। यह बेरछा के राजा देवसिंह की पुत्री थी। इनका विवाह महाराजा छत्रसाल के साथ बचपन में ही पिता चंपतराय ने तय कर दिया था परन्तु पिता चंपतराय और माता सारंधा अपने ही विश्वासघातियों द्वारा वीरगति को प्राप्त हुई और यह विवाह उनके सामने सम्पन्न न हो सका, छत्रसाल ने बड़े होने पर यह विवाह महावली पटेल के सहयोग से सम्पन्न हुआ। पं. कृष्णकवि ने इन दोनों की जोड़ी की सुन्दरता का वर्णन किया – "यह दम्पत्ति उसी तरह शोभामान थे जैसे ऊषाकाल का संयोग पाकर प्रभाकर उद्दीप्त सुशोभित होते हैं।' महारानी कमलावती ने हर परिस्थितियों में महाराजा छत्रसाल का सहयोग दिया और उनका उत्साह बढ़ाया। लगभग सन् १६८० ई. में उनका स्वर्गवास हो गया।



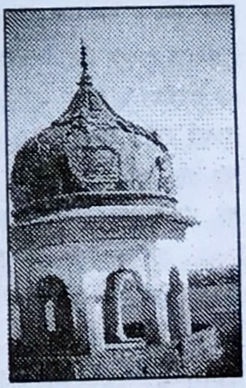
महाराजा छत्रसाल ने अपनी प्रियरानी की याद में कमलावती स्मरक का निर्माण करवाया। यह ग्राम मऊसहानियां में स्थित हरी भरी पहाड़ियों से घिरा हुआ एक रमणीक स्थल है। इसकी शोभा देखते ही बनती है। धुबेला तालाब के किनारे एवं धुबेला संग्रहालय के दक्षिण में स्थित यह स्मारक अनेक कलाकृतियों से सुशोभित है। स्मारक के बीचों-बीच महारानी कमलावती की समाधि स्थिति है। बुन्देला शैली में निर्मित यह अष्टकोणीय इमारत गुम्मदों, पालकियों एवं दीवारों में उभरी हुई डिजाइनों से युक्त है।

स्मारक के मुख्यद्वार के शीर्ष पर चतुर्भुजी श्री गणेश की प्रतिमा उकेरी गयी जिसका शरीर जीर्णशीर्ण है, मात्र भुजाएं सुरक्षित है। इन भुजाओं में फरसा, वेद, पुष्प, लड्डू लिये आसनमुद्रा में है। इसके आस-पास की रंगीन फूल पत्तियों की चित्रकारी द्वार को और सुन्दरता प्रदान करती है। स्मारक में सबसे अधिक आकर्षक कंगूरे विभिन्न चित्रकारी पालकी, मण्डप है। मुख्य दीवार की छत के चारों तरफ छज्जों के नीचे की तरफ विभिन्न आकृतियों के कंगूरे निर्मित है, जिनमें उल्टी एवं सीधी कमलपुष्प अन्नास के फल की तरह की आकृति के अलावा, उल्लू, विभिन्न मुद्राओं में बंदर आदि शोभित है। कुछ कंगूरों में पक्षियों की चित्रकारी की गई है। जिसमें नृत्य करती मयूर देखते ही बनती है। छज्जे को भी फूल पत्तियों की डिजायन से सजाया गया है। कंगूरों के नीचे लड़ीदार सूक्ष्म पुष्पों की सुन्दर नक्कासी है। दीवारों में की गई चित्रकारी में गमलों में लगे विभिन्न काले, नीले, लाल, पीले पुष्प एवं पत्तियों के चित्रों के साथ-साथ खजूर के वृक्षों के चित्र स्मारक में प्राकृतिक वातावरण को निर्मित करते हैं। प्राकृतिक चित्रों के अलावा कुछ अन्य चित्र भी चित्रित किये गये, इनमें घुड़सवार सैनिक, घोड़े पर सवार राजसी पुरुष भाले से शेर का शिकार करते हुए, कुछ युद्ध से संबंधित चित्र चित्रित हैं।

गर्भमण्डप की परिक्रम की दीवार पर एक सुन्दर रानी का चित्रण है। गर्भगृह में महारानी कमलावती की समाधि नवनिर्मित सादा है। संभवतः यह भी महाराजा छत्रसाल की समाधि की तरह अष्टकोणीय, ईट, चूने, रेत से निर्मित संगमरमर की तरह दिखती थी। गर्भगृह की छत्ताकार चोटी के बीच में रंगीन चक्र जिसमें रंगीन काँच की झूमर लगाई गयी थी। इन झूमरों की स्थिति मण्डप के मध्य चार रोशनदानों के आमने-सामने पड़ती थी जिसमें सूर्य की रोशनी पड़ने से एक आलौकिक प्रकाश गर्भगृह को प्रकाशित करता होगा। वर्तमान में यह झूमर रहित है, इसके छत पर गुम्बद की बाह्य दीवारों में मेहरावदार दरबाजों की आकृतियों में कलश नक्काशी युक्त खम्भे बने हुए हैं। द्वार आकृतियों में बेलबूटरों के अलावा मस्तक पर लचकदार पत्तियों एवं पुष्पों की नक्काशी मनमोहक है। इसके कंगूरे शार्दूल, मयूर, हाथी, तोता, बंदर से शोभित हैं।

परिक्रमा की छत से १० सीढ़ियां मुख्य दीवार की तृतीय खण्ड तक जाती है। जिसके चारों तरफ पालकी तथा मीनार अंतिम खण्ड हैं। इनके आवरण पर चमकीली रंगीन टाल्सें लगाई गई जो कुछ ही शेष हैं। इन अंतिम पालकी तथा मीनारों के गुम्बदों के भीतर भी विभिन्न प्रकार की चित्रकारी की गई है जिसमें सैनिक अभियान, फूल पत्तियों आदि के चित्र चित्रित किये गये।

महाराजा छत्रसाल द्वारा निर्मित रानी कमलावती का स्मरक स्थापत्य कला की दृष्टि से बुन्देला शैली का उत्कृष्ट नमूना है। वास्तव में स्मारक का सौन्दर्य देखते ही बनता है। इसके आस-पास की हरी-भरी पहाड़ियाँ उसकी मनोहरता को बढ़ाने में विशेष योग देती है। इन हरी-भरी पहाड़ियों के बाद स्मारक पर जब आंखें ठहरती है तो मन रानी कमलावती की करुण स्मृति में डूब जाता है। बुन्देला शैली से निर्मित इस स्मारक पर हल्के कमल रंग की चूने की छाप, गुम्बद पर नीले, हरे रंग की चमकीली टाल्स स्वर्ण रश्मियों से खिल उठती है एवं इसे एक नया रूप प्रदान करती है।



– एम.ए. इतिहास, महाराजा कॉलेज छतरपुर

कतक्यारी

– विंध्यकोकिल भैयालाल व्यास

भगवान कृष्ण की कला-सौन्दर्य, श्रृंगार, भक्तिभावना और साधना का, लीलारूप का, गीत का, भजन गायन का, त्याग का, परोपकार का, कला सृजन का, चिन्तन-मनन और सामूहिक उपासना संस्कारयुत पूजन का पाठ का जाप कथा महात्म के श्रवण का सुन्दर मास है कार्तिक।

विष्णु भगवान के बाल लीलारूप कन्हैया का या यशोदा की साधना की सिद्धि का, वात्सल्य रस के प्रत्यक्ष दर्शन का, आध्यात्मिक आनन्द का यह मास कार्तिक स्नान करने वाली, व्रत रखने वाली माताओं बहिनों के गोपी रूप का पुण्य पर्व है। कार्तिक नहाने वाली कार्तिक बाली से और सहज कतक्यारी बुन्देलखण्डी का यह वैभव है आत्मदर्शन है।

'भई न बिरज की मोर सखीरी मैं तो भई न बिरज की मोर'
कहना रहती कहना चुनती कहना करती किलोल। सखी ...
गोकुल रहती वृन्दावन चुनती मधुरा करती किलोल। सखी...
उड़-उड़ पंख गिरत धरनी पै, बीनत ब्रज के लोग,
उन पंखन की मुकुट बनत है बांधत जुगल किशोर। सखी...
चन्द्रसखी भज बालकृष्ण छवि छलिया नन्दकिशोर। सखी...

इस भजन को बड़ी मार्मिकता से मधुरवाणी से निकला सुनके लेखक की अस्सी वर्ष पहिले के कार्तिक के भजनों के सुनने की ललक जागी, उठा कि कतक्यारियों के दर्शन करें पर अब कतक्यारी कहां कार्तिक का यह भजन देश की ख्याति प्राप्त लोकगायिका रस भरी बोलों की विभुता सुश्री उर्मिला प्राण्डेय का रिकार्ड बज रहा था। सुश्री पाण्डेय के हजारों कैसेट एच.एम.व्ही. जैसी कैसेट संस्थान से निकल के पूरे देश में बुन्देली बोलों की सुषमा बिखेर रहे जान के प्रसन्नता हुई। बुन्देलखण्ड में ब्रजलीला का चित्र सामने आ गया। हां पर कतक्यारियों के समूह के दर्शन न हो सके। आज की बेटियां इन व्रतों को साध के अपनी भजनों की भाव भरी धरोहर की रक्षा कर सकें। व्रत लै तो मीडिया में प्रसारित वासना की कलुषता से हमारी संतति बच जाये। संस्कारयुत बने।

ब्रज का बुन्देलखण्ड का अटूट भावनात्मक सम्बन्ध है। कहा जाता है जहां तक करील वहां तक ब्रज मण्डल का प्रभाव है। ''कोटिन हू कल धौत के धाम करील की कुंजन ऊपर वारी'' क्षेत्र की प्रमाणिकता है। ये करील डबरा तक वहुतायत से तथा आगे आकर दतिया में बहुत कुछ तथा बुन्देलखण्ड के शेष क्षेत्र में भी यत्र-तत्र मिल जाता है और ब्रज-बुन्देली का, भक्ति और वैभव का, प्रकृति के सहकार का स्पष्ट सम्बन्ध दर्शाता है।

बुन्देली बोली ब्रज भाषा की भांति कोमल है, कठोर शब्दों का विलोप होकर उच्चारण में सहजता यहां की विशेषता है। 'क्या कहना है' को 'का कैने' की रीति बुन्देली की विनम्र नीति है।

बुन्देलखण्ड अधिकांश देशी राज्यों का रजवाड़ों का क्षेत्र रहा है। यहां के राजा-महाराजा एकाध अपवाद छोड़के ब्रज के वैष्णव भक्त रहे हैं, आज भी हैं। राधा-कृष्ण की युगल मूर्ति यहां की आराध्य है। इनकी पूजाविधि कथा संगीत भजन यहां की सांसों में सधी रागनियां हैं।

बुन्देलखण्ड के रजवाड़े प्रायः सभी ब्रज के वैष्णव भक्त हैं। वृन्दावन से देव मूर्तियां राज्यों में उनके अधिष्ठाताओं सहित यहां बसी है तथा वृन्दावन में प्रायः हर राज्य की कुंजे हैं जिनमें पूजा प्रतिष्ठा के लिए बुन्देलखण्ड के पुजारी गये हैं। दतिया वाली कुंजे, समथर कुंज, चरखारी कुंज, पन्ना और बिजावर कुंज तो बहुत प्रतिष्ठित कुजों में हैं। ब्रज के यात्री उनमें जाके आश्रय पाते हैं। इस प्रकार सैकड़ों वर्षों से दोनों क्षेत्र एक हैं। एक दूसरे तीर्थों की निष्ठा के नियामक।

दतिया के गोविन्द जी, विजयगोविन्द, छोटे गोविन्द, नंद किशोर, लाड़लीशरण, छाटी सरकार के मन्दिर सभी भगवान कृष्ण के पूजाधाम हैं। सैवड़ा के नंदनदन जू का भव्य मंदिर तो प्रतिष्ठा में अद्वितीय है। सभी भोग राज व्यवस्थायें राज्य की आज भी अर्थो में यथावत है। बिजावर के विहारी जी, पन्ना के जुगल किशोर, जिनकी मुरलिया में करोड़ों के हीरे जड़े हैं गाये जाते हैं। यहां का बलदाऊ जी का मंदिर तो वृन्दावन के दाऊ जी के मन्दिरों से भी अधिक भव्य और पूज्यों में गिना जाता है। ये सभी इष्ट महाराजाओं द्वारा पधराये गये हैं। छतपुर का मूल इष्ट विहारी जी का मन्दिर है। चरखारी का जुगल किशोर का मन्दिर तो वहां का प्राण है। राज्य की सारी गति विधियाँ इसी इष्ट के अनुरूप रही है। कार्तिक पूर्णिमा से लगता एक मास का मेला इन प्रभु का मुख्य दर्शन केन्द्र है।

ओरछा रानी गनेश दे के लाये रामराजा के कारण रामभक्ति का केन्द्र है, पर महाराजा मधुकर शाह की भगवान कृष्ण की आराधना मानसिक पूजा अपने आप में श्रेष्ठ है। अकबर के दरबार में घटी घटना, भक्ति की परीक्षा में खरे उतरे महाराजा मधुकर शाह का निम्बार्क सम्प्रदाय के सफेद चन्दन का तिलक नाक के कोने तक लगाया जाता है, जिसे मधुकरशाही टीका कहते हैं। रामराजा ओरछा में विराजे राज्य का आराध्य पूज्य मन्दिर आज भी टीकमगढ़ के किले में है जहां विधिवत ब्रज की लीलाओं के भांति पूजा प्रतिष्ठा के साथ उत्सव समैया झूला आदि उसी प्रकार सम्पन्न होते हैं। कृष्ण भक्ति में रमी रानियां भी यहां की सिद्धियां हैं। इनके भजन जन-जन के मन में बसे हैं। चन्द्रसखी, रूपकुंवर, कमलकुंअर के मुख से निकले भजन यहाँ की मूल भावनाएं हैं।

सुनते आये हैं कि बुन्देलखण्ड के राज घराने के एक राज कुमार किशोर अवस्था में ब्रजरज के भक्त होकर वैष्णव जन की साधना में सराबोर सब त्याग के चले गये थे। कहीं कहीं अजयगढ़ के एक राजकुमार का यह प्रसंग बताया जाता है।

ओरछा के संत हरिराम व्यास की एक शाखा वृन्दावन की भक्ति सम्प्रदाय में गिनी गई है। भक्ति भाव में रसिकता से सभी भगवत रसिक की वाणी भगवत रसिक रसिक की वाणी रसिक बिना कोई समुझि सकै ना" प्रसिद्ध है, ये भक्त संत छतरपुर की माटी की देन है। इनका इष्ट मंदिर फूला देवी के आसपास आज भी खण्डहर स्थिति में है और ठाकुर जी पुजारी जी के घर विराजमान है।

व्यास वाणी का 'समाज संगीत' और पुष्टि सम्प्रदाय के सूरदास अन्यान्य के भजन हवेली संगीत के नाम से भक्ति सम्प्रदाय में प्रसिद्ध है, इन संतो के ये भजन भगवान की लीलाओं के समैयों के समय उनके अनुरूप गाये जाकर लीला को उजागर करते हैं। इस प्रकार ब्रज और बुन्देलखण्ड के ये संत एक दूसरे के पूरक हैं।

इन पंक्तियों के लेखक ने अपने महाकाव्य 'रस-वृन्दावन' के प्रकाशन हेतु जब ब्रज साहित्य अकादमी, वृन्दावन से सम्पर्क किया तब अकादमी के अध्यक्ष परम विद्वान संत श्री १००८ श्री पाद बाबा के दर्शन हुए। जयपुर कोठी के विशाल बगीचे में घने वृक्ष के तले एक छोटी कुटिया के आगे शिला पर विराजे कृशकाय पर तेजस्वी संत के दर्शनों ने प्रभावित किया। मेरे काव्य पर श्रीपाद जी ने अपने सचित्र श्री गोविन्द शर्मा (पूर्व प्राचार्य और हिन्दी विभागाध्यक्ष) को ग्रन्थ को देखने को और माँ राधे के चरित्र के चित्रण को परखने का आदेश दिया कि अकादमी से प्रकाशन की संभावना परखी जाय।

जब तक ये अवलोकन पूरा होता कि श्रीपाद बाबा ब्रह्मलीन हो गये। देखा, विशेष रूप से परखा कि श्रीपाद जी के सामने रजवाड़ों से भेंट की ढेरों सामग्री पड़ी है। इसे वे हम जैसे सैकड़ों जिज्ञाषुओं यात्रियों भक्तों को बाँट रहे हैं, स्वयं कुछ नहीं।

दुर्बल, अस्वस्थ पर सक्रिय डाड़ी पर बाल सरपट' चर्चा के बीच मेरे विचारक और सहज प्रभावित न होने वाले बुद्धिवादी ने देखा कि बाबा के ऊपर पेड़ पर सैकड़ों पक्षी आकर जोर से शोर करने लगे। बातचीत में बाधा पड़ते देख श्रीपाद जी ने मुस्कुराते हुए पक्षियों की ओर देखा कि पक्षी एकदम मौन हो गये। इसे चमत्कार कहें या उनके तापस नेत्रों का आकर्षण, मोहन जो हो अलौकिक अनुभव रहा वह। आज भी यह दृश्य घटना आंखों में झूम जाती है। इसे प्रकृति की पूजा की देन कहें या श्री पाद महाराज की पुण्य प्रभा की कृपा जो हो सत्य है।

इन्हीं चर्चाओं के दौरान हम लोगों का छतरपुर से आना सुनके बाबा ने बुन्देलखण्ड के रजवाड़ों की राजाओं के पारिवारिक जीवन की बातें, हालचाल पूछे, तब लगा कि हो न हो ये ही राजकुमार हैं जो बचपन में वैभव छोड़ के ब्रजरज में रमने आ गये थे। और यही कारण है कि इनकी राजघराने से उत्पत्ति जानके वृन्दावन के जयपुर भवन में बाबा को निवास मिला और उसी अनुपात से प्रायः भेंटें प्राप्त होती आई।

इस प्रकार बुन्देलखण्ड और ब्रजमण्डल के सामंजस्य दोनों क्षेत्रों के मानस में रचे पचे हैं। दोनों क्षेत्रों के उत्सव समैया सांझ, कार्तिक झूला फाग जैसे सभी उत्सव समैया एक जैसे हैं। एक रूपता लिये हैं, जलविहार हो या गोपाष्टमी दोनों क्षेत्रों में ठाकुर जी की सवारियां एक पद्धति से भ्रमण करती और लीलायें सम्पन्न करती हैं। लीला पुरुष की लीलायें माँ राधे की आल्हादनी शक्ति की समर्पित साधनायें आनंद सबको आत्मविभोर करते हैं। वृन्दावन में जहां बुन्देलखण्ड की कुजों के वैभव तीर्थ की श्री वृद्धि में सहायक हैं वहीं बुन्देलखण्ड भी ब्रजमय दिखता है।

कार्तिक के लगते ही समूचे ब्रजमण्डल के तीर्थों नन्दगांव, बरसाने, दाऊजू, गोकुल अन्यान्य अनेकों स्थानों जहां जहां कन्हैया जू बाल लीलायें हुई हैं पूजा-पाठ अनुष्ठान, गीत-भजनों, रास-लीलाओं यात्राओं झांकियो के दर्शन होने लगते हैं। लीला के अनुरूप श्रृंगार होते हैं वही बुन्देलखण्ड के मन्दिरों में यही प्रक्रिया आपनी सीमाओं में रहके भावनात्मक रीति से सम्पन्न होती है, भक्ति भरे उन क्षणों का जन मानस भरपूर आनन्द लेता है।

कार्तिक स्नान की प्रथम उपासना ग्रन्थि कतक्यारियों की धोती लुंगड़े में विधिवत मंत्रों द्वारा अभिसिक्त करके बांधी जाती है, जिसे व्रत की गाँठ लगना कहते हैं। ये गाँठ व्रत की समाप्ति पर खुलती है उसमें बंधी मुद्रायें कार्तिक महात्म को पूरे महीने सुनाने वाले पण्डितों को सौंपी जाती है।

इस व्रत की विशेषता, सामाजिकता, सामूहिकता और एकत्व की संस्कृति को सुरुचिपूर्ण ढंग से साकार करना है। एक व्रत एक निष्ठा, एक से वस्त्र, एक सोच, एक से गायन, भजन, सुरताल, लयबद्धता पूरे मास आनन्दित करती रहती है।

नगरों के विभिन्न जलाशयों, झरनों, ताल, तलैया, पोखरों के किनारे तटों पर अपनी-अपनी सुविधा से कतक्यारियों के समूह भगवान कृष्ण के सिंहासन की स्थापना करके प्रथम पखवाड़े में अपने अपने चयनित स्थलों पर विधिवत पूजा करती हैं। हर लीला के लोक भजन सतत संगति करते चलते हैं। स्वर लहरियां वातावरण को संगीत रस सम्पन्न करती चलती हैं। इन अनुष्ठानों में भक्ति मार्ग के अनुरूप पूजा के विधानों को लोक जीवन की सहजता से पालन करते पूर्णता को आभास-सा होता रहता है।

बुन्देलखण्ड की माँ बहिनों के पहनावे विभिन्न क्षेत्रों में कुछ अलग होते हुये भी प्रायः एक से होते हैं। उत्सवों, त्यौहारों में घर से बाहर जाते लहंगा-लुगड़ा, चोली और पिछौरा ओड़ना, एक सा होने से इन उपसिकाओं के समूहों के एक लिवास की एकरूपता, भावना भरे गीतों की गायकी, गलेबाजी की मार्मिक स्वर साधना ऐसा वातावरण उत्पन्न करती है कि कार्तिक पूरे महीने नगर का जीवन भक्ति रस में डूब जाता है। गीतों की गरिमा और भावना कृष्ण की अनन्या माँ राधे का रूप लेकर पारमात्मा से एकत्व का विश्वास पैदा कर देता है। हर गृही जिसकी गृहणी ने कार्तिक नहाया है अपनी पत्नी के व्रत की सफलता के लिए पूरा सहयोग करता है। पड़ोसिनें भले जिन्होंने कार्तिक व्रत न रखा हो, समय देकर व्रती पड़ोसिनों के पूजन गायन में पूरे मनोयोग से संग देती हैं।

प्रातः से दोपहर तक पूजन, भजन आराधन, फिर गृहकार्य पारणा और साम की आरती तक की सभी क्रियायें कलात्मक

साधनात्मक होकर साधिका के जीवन को अमरत्व का स्थापित करती हैं, भारत वर्ष की आध्यात्मिक उपलब्धियों के दर्शन कराती सबको आनन्दित करती हैं।

जहां कहीं बूढ़ी महिलायें अपनी व्यस्तता, साधनों की सीमाओं सुविधा रहित होती है, वे कार्तिक स्नान घर पर करती रहके अपने अन्य दायित्वों का निर्वहन करती रहती, पूजन की विधा एकाकी होने पर भी पूरी रीति नीति से निभायी जाती है। लेखक की बाई (मां) अपने वैधव्य की विपदा झेलती, संतति को पालती रहके, प्रायः हर कार्तिक को नहाती थी। प्रातः अपने घर की पानी की रेती में जमुना जी की टंकी डालके जमुना स्नान की भावना से बुड़की लेकर पूजन की प्रक्रिया प्रारंभ करके पूरे दिन सप्ताह पखवाड़े और मास तक व्रत का निष्ठा से निर्वाह करती रही है। उनके दिन भर के पूजा के कार्यकलाप कार्तिक के लोक-भजनों के आदि से अन्त तक लीला के रूप में कन्हैया के दर्शनों का आनंद देकर संस्कारों से शोभित करते रहे हैं। पुरा पड़ौसी की वयोवृद्ध महिलायें भी उनका सहयोग करने आ जातीं, पूरा घर कृष्णमय हो जाता देखा है। लेखक का बालपन, बालमन इन्हीं भजन कीर्तनों, चकिया पीसने के गायनों में रमता अभावों में जीता, रोता पर लोक संस्कारित होता रहा है। संघर्षो की कठोरता और लोक संगीत की मधुरता कोमलता आगे बढ़ने में सहायता देती रही है।

आज चिन्तन जब जितना प्रखर होता है विचार जितना पैना होता लगता है। एकान्त में अतीत को परखने का जब प्रयास होता है तो बाई के चरणों में लोटे रहने का मन बन जाता है।

बात चल रही है कार्तिक के व्रत की। इसकी सामूहिक साधना और घरों में वयोवृद्ध महिलाओं की एकाकी साधना के लघु और विराट रूपों को देखकर भक्ति भावना की पूर्णता के दर्शन होते रहे हैं।

कार्तिक के प्रथम पखवाड़े में अपनी-अपनी टोलियों के जलाशयों पर सिंहासन स्थापित करके पूजन होते, कार्तिक महात्म को पंडितों द्वारा सुना जाता और दूसरे पखवाड़े में भगवान के मानवीय लीला के दर्शन, उनका अन्तर्ध्यान हो जाना, कतक्यारियों के विरहणी-राधा रूप लिये दल के दल अपने कन्हैया को खोजने निकलते-गाते भजन करते जब ये दल निकलते तो सारा नगर राधा नागरि के स्तवन में लग जाता -

''राधा तुम बड़भागनी कौन तपस्या कीन।
तीन लोक चौदह भुवन सो तुम्हरे आधीन।
मेरे मन मन्दिर बसो राधा नागरि खोय।
जा तन की झांई परै स्याम हरित हुति होय।।

राधारानी के विरहणी रूप प्रत्येक कतक्यारी के मन में रम जाते गीत फूट पड़ते। लेखक ने बचपन में इन सामूहिक समरसता के भरपूर दर्शन किये हैं। छतरपुर समेत प्रत्येक नगर, कस्बे, ग्राम में कार्तिक स्नान के ऐसे महती अवसर आध्यात्मिकता से हमें सराबोर करते आये हैं लोकाराधन लोकजीवन के लोकगीतों के भजन कीर्तन के अलग ही आनन्द है। काश! आज की पीढ़ी इन लोक रंजक रमणीय संस्कारिता संगीत में रमी होती, समझी होती, आज भी समझ जाए तो आज के प्रचार तंत्रों द्वारा परोसी जाने वाली भोगवासना की विकृतियों से हमें मुक्ति मिल कर हमारी लोक संस्कृति की समृद्धि हमारी ऐतिहासिक धरोहर बनी रह सकती है।

लोक जीवन की प्रेरक है प्रकृति, उसकी प्रत्येक गतिविधि, सागर की गहराई, हिमालय की ऊँचाई हमारे जीवन का ऊँचा और गंभीर करने का उपादान है। नदियों की कलकल झरनों का प्रवाह पक्षियों का कलरव, तितली की बहुरंगीनियां, भवंर की गूँज, ताड़िता की तड़कन-धड़कन, इन्द्रधनुषी वर्षा की छरायें, हमारे मानस के भीतर हिलोरे देकर जो बोल उगलती हैं वे बन जाते हैं हमारे लोक मंत्र। वैदिक काल से आज तक यही साधन हमारे लोक संगीत के सार तत्व हैं जो सहज होकर सम्पूर्णता देते आ रहे हैं। सरलता में चिन्तन के चातुर्य अनुभव के अद्भुत उद्गार लोकरंजन के साथ हमारे मध्य प्राणों के समान हैं। लोक संगीत शास्त्रीय स्वरों के मूल हैं तो शास्त्रीय संगीत इनकी सर्वज्ञता है।

ब्रजराज लोकचिन्तन के नायक नवलकिशोर भगवान कृष्ण कन्हैया ने लोकसंस्कृति के सभी पक्षों के सर्वहारा रूप में प्रवल किया। माखनचोरी, रास, गोचारण, गोपालन, गोरक्षा से लेकर संगठन बल के आधार पर कंस जैसी कुटिलता को काटने वाले योद्धा कृष्ण, द्वारिकाधीश, सुदामा के चरण पलोटने वाले कृष्ण सभी इन लीलाओं नें कृष्ण को सोड़स कलाओं का पूर्णावतार निरूपित किया है।

ब्रज से सटा बुन्देली क्षेत्र इन कन्हैया की लोक साधनाओं का समैयों का, उत्सवों का, व्रत-पर्वो की पावन प्रतिष्ठा लिये लोकरंजन का कुशल कलाकार है।

बुन्देलखण्ड की कार्तिक साधना अपने लाला कृष्ण के बालपन से युवा तक की लीलाओं पर समर्पित होकर तादात्म तक पहुंचने की उपासना है।

प्रातःकाल स्नान करके सिंहासन पर स्थापित देव जागरण से लेकर सायंकाल तक के सभी अनोपान कार्तिक के लोकभजनों में भरे हैं -

''उठौ मोरे हरि जू भये भुनसारे, सो गउवन के बंद खोलौ दुवारे।
उठके मोहन प्यारे गैया दौउ, राधा रुकमिन दोहिनियां ल्याई।
सौने के गडुआ गंगाजल पानी, दातौन करौ मोरे अन्तरयामी।
नत हड़ नीम सुगंध उपासनौ करौ स्नान मोरे अन्तरयामी।
पीरी अंगौछी पीताम्बर धोती, सपर खोर कै तिलक संवारौ।
चन्दन अछत माथे दीनी, धरम सिला पै पैठी जसोदा।
अपने कन्हैया कौ रचती कलेवा।।

oooo

इस आरती में सभी प्रकार के व्यंजनों का वर्णन करते पूजन शयन तक कार्तिक स्नानों की प्रथम उपासना दोपहर तक पूरी होती है, शेष समय कथावार्ता फलाहार और भजनों की मन भावनी श्रृंखला जनमत को मोहित करती है।

उपासना के साधनों की कमियों को अपने सरल बोलों से इस प्रकार पूरी करती है कि विधान का कोई अंश अधूरा न रह

पाये।

सब प्रकार के पूजन के बाद भी अर्पण समर्पण में कुछ अधूरा रह गया हैं तो उसमें इन कतक्यारियों : गोपियों का दोष नहीं, प्रक्रिया की न्यूनता ही है -

कहा लै चड़ाऊँ राम, मैं तो तेरो यश गाऊँ राम।
गंगा के नीर वारी मछरी विटारें बेई ना अनूठे राम बेई न अनूठे।।
मैं कहा ले चड़ाऊँ राम तेरी जटा गाँऊँ राम
साठी के चांऊर चिरैया विटारें बेई ना अनूठे राम बेईन अनूठे।।
वारी के फूल वारे भंवरा बिटारै बेई न अनूठे राम...।।
गउआ के दूध वारे वछरा विटारे बेईना अनूठे राम बेइ न अनूठे।
मिठया के पेड़ा बिलइयां बिटारे, बेई न अनूठे राम। बेई न अनूठे।
पूरी पपरिया लरका बिटिया बिटारें बेईन अनूठे राम बेई न अनूठे।
मैं तो कहा लै चढ़ाऊँ राम तेरो जस गाऊँ

कोई भी वस्तु शुद्ध नहीं है, झूठी है, तो आपको क्या अर्पित किया राम जाय। बस मात्र उपाय है कि आप का यशोगान हम करें, गाकर आराधना के अधूरेपन को पूरा करती हैं कार्तिक की उपासिकायें कतक्यारियां।

अपनी पूर्णता के भरोसे वे कन्हैया से कामनायें करती हैं, मांगती हैं, विधिवत गृहस्थ जीवन के अनिवार्य अंग इसमें समाये हैं -

जोई जोई मांगे सोई सोई दइयो
नातर मथुरा के पथरा करियो।
राजा जनक से बाबुल दीजौ
रानी सुनैना सी माता दीजौ।
राजा दसरथ से ससुरा दीजौ
सो कोसल्या सी सासू दीजौ।
राम लखन से भइया दीजौ
सो सीता सी भौजाई दीजौ
रानी सुहद्रा सी ननदी दीजौ
इतनै जो देव तौ मानुस करियो
नातर मथुरा के पथरा करियो।
जो मोरे हरि जू की आरति गावें
बस बैकुंठ अमर पद पावैं।।

इन्हीं कामनाओं के साथ व्रत की साधना पूर्ण होती है। अंचवन पान के वीरा के वर्णनों से कार्तिक के भजनों की पूर्णता प्रदर्शित होती है। यह सब होने के बाद भी भक्त की ललक तो यथावत है -

हमारे मन बस गये जुगल किशोर
मोर-मुकुट पीताम्बर सोहै, मुरली अधर मरोर।। हमारे..
प्यासे नयन रहत दरसन बिन जैसे चन्द्र चकोर।हमारे..
झांकी दृगन विलोकत सजनी, कोटि कारा छवि चोर।हमारे..
वाम अंग राजत महारानी लखत प्रिया मुख ओर।हमारे.
रानी बल्देव जू कहत कर जोरै, चितवहु कृपा की कोर।हमारे.
हमारे मन बस गये जुगल किशोर...।।

राधा भाव लिये कतक्यारियाँ अपनी उपासना बेला में प्रत्येक क्षण कन्हैया जू की विभिन्न लीलाओं की छवियों का स्मरण करती गा उठती हैं। अपने लाड़ले से विलग नहीं होना चाहती हैं, सो जाते-जाते कह जाती हैं -

आ जाऊँगी बड़े भोर मैं दइया लैके आ जाऊँगी बड़े भोर।
ना मानौ कुड़री धर राखो हीरा जड़े हैं करोर।। मैं दइया....।।
ना मानौ मटकी धर राखौ सब गऊअन की मोल।। मैं दइया...।।
ना मानौ चुनरी धर राखौ, कड़े हैं पपइया मोर।। मैं दइया....।।
चन्द सखि भज बाल कृष्ण छवि छलिया जुगल किशोर।।
मैं दइया जैके आ जाऊंगी बड़े भोर।।

गोपियाँ बनी साधिकाओं को सभी अमल तो बिसर जाते हैं पर राम नाम का अमल भुलाये नहीं भूलता -

और अमल में तौ दाम लगत है, सो राम अमल में न लागत पाई।
०० ००
चन्द्रसखी भज बालकृष्ण छवि, हरि चरनन में ध्यान लगाई।।

केवल गोपियों की राधा की बात नहीं ब्रज के कन्हैया से कृष्ण बने आराध्य की भी यही दशा है -

ऊधौ मोय ब्रज विसरत नइयां।
सोनै रूपे की बनी द्वारिका पै गोकुल सी छवि नइयां।। ऊधौ...
जो सुख चाहिये मात- जसोदा सो सुख औरन नइयां।। ऊधौ...

कदम्ब की छैंया, और गोकुल की गैया, भगवान कृष्ण को भुलाये नहीं भूलती। भ्रमर गीत गाथा का ये लोकरूप बुन्देली में लोकप्रिय है। कार्तिक के भजनों की ये भावना हृदय ग्राहिता सभी को मोहित किये रहती है। जिस समय कतक्यारियां ऐसे गीतों के गाते नगर परिक्रमा करती हैं तो जिज्ञासु मनों को उपासिकाओं के दर्शन करने और उनके सुरीले कण्ठों से निकले भजनों की ललक उठती है। दौनों ओर के आकर्षण, प्रेम प्रदर्शन, लीला लालित्य में बुन्देली आत्मा रमी है। सारा क्षेत्र ब्रजमय हो जाता है, हर लीला में कृष्ण की झांकी उभर आती है।

बजत गुमान भरी मुरलिया, बजत गुमान भरी।
काहे की बा बनी मुरलिया, काहे के तार गसी बा मुरलिया।
सोने की बा बनी मुरलिया, रूपे के तार गसी बा मुरलिया।
कौन नगर में बजी मुरलिया, कौने झनक परी बा मुरलिया।
गोकुल नगर में बजी मुरलिया, पन्ना में झनक परी मुरलिया।
अपनै महल से चलै राधिका, संग में पांच सखी। मुरलिया।
भई बावरी फिरै गलियन में, लखै न काहू हरी मुरलिया।।

कन्हैया के मुख पर विराजी स्वर विखेरती मुरली गोपियां की। ईर्ष्या की पात्र होकर उस की धुन सुनने को आतुर रहती हैं गोपियां, कारण कि मुरली की धुन सुनके कन्हैया जू के दर्शनों की लालसा जो पूरी होती है -

फिर बाजी फिर बाजी हरी की मुरलिया,
सो जा मुरली ने मन हर लीनौ।
मन हर लीनों सकल सुख छीनौ
सो जा मुरली ने मन हर लीनौ।

मुरली कैसी ही क्यों न हो पर अपने सुरों से रस भर देती है। बजती रहे मग्न करती रहे। यही तो भक्ति की पूर्णता है। राधा रूप में मग्न गोपी, नंद यशोदा के पास पहुँच के कन्हैया जू को

उसकी गैया को दुहने के भेज देने का आग्रह करती है। किसी भी रीति से हो गोपियों को तो कन्हैया जू का सानिध्य ही सब कुछ है-

नैक पठै दो गिरधारी जू की मैया वनवारी जू की मैया।
सबरे सखा माता दुह-दुह हारे
सो हार गये बलदाऊ जू से भैया
बड़ी तैं ग्वालिन अनौंखी तोरी गैया,
सोई अबई तो आओ मोरी वन सैं कन्हैया
सुगर ग्वालिन हठ कर बैठी सो
इनईं के हाथ लगत मोरी गैया
नन्द हंसे जसुदा मुस्क्यानी सो
जाओ लाला नेक दुह आओ जाकी गैया

नन्द यशोदा भी जानते हैं मानते हैं कि कन्हैया कौन है और इनके दर्शन के लिए कैसे कैसे बहाने बनाके गोपियां अपने घर ले जाती हैं, अपने लाला की इस मोहिनी में भग्न होकर नंद यशोदा सब भूल जाते हैं।

एक ओर तो गोपी अपनी गाय को दुहन को कन्हैया को बुला लाती है और दूसरी ओर तुनक कर कह उठती है -

अब ना दुआऊं तुमसै गैंया, सांबरे अब न दुआँऊ तुमसैं गैंया।
गैया दोवत इत उत चितवत सो बिजक जात मोरी गैया।। सावरे...।
०० ०० ००

इत उत चितवत का मर्म है दोनों के नयनों का मिलन आप का अपना सर्वस्व समर्पण। गोपी मन से चाहती है कि कन्हैया उसको ही निहारते रहें, वह बुला भी इसीलिए लाई है। पर उलहना अपने आप में एक माध्यम है दोनों के एक मय होने की। कतक्यारियों की ये उपासना बुन्देली की भक्ति रसमयी पुण्य जीवनी है।

तुलसी के विरवा वृन्दा से वृन्दावन की शोभा हैं, तुलसी भगवान के मस्तक पर विराजती है। गोपियां को यही ईर्ष्या का विषय है वे कार्तिक में तुलसी के विरवा की पूजा करती हैं -

नमो नमो तुलसा महारानी नमो नमो
धन वृन्दावन तुलसी के विरवा
सो जिते कन्हैया प्यारे खेलत घुटइयां
०० ००

हमारे तौ राधा रुकमिन लाड़ली अर तुलसा प्राण अधार।

तुलसी की महिमा कृष्ण की पटरानियों से अधिक कहके प्रकृति के पूजन की तुलसी के विरवा के मानवीकरण की विशेषता है। कार्तिक के प्रथम पखवाड़े तक इसी क्रम की विभिन्न जलाशयों घाटों पूजा होकर दूसरे पखवाड़े में भगवान के अंर्तध्यान होने की मानलीला के सन्दर्भ से उपजी रीति के अनुरूप अपने कन्हैया को खोजने, मान-मनौवल के लिए विरहिन राधा के रूप में गोपियों की आस्था लिए कतक्यारियाँ पृथक-पृथक घाटों में भगवान को खोजतीं, भजन गाती, ग्राम कस्बों, नगरों में ईश्वरीय महिमा के भजनों से ऐसे भाव भरे वातावरण प्रस्तुत करती है कि इन टोलियों के निकलते ही उस क्षेत्र के वासी बाल युवा-बूढ़े नर-नारी घरों से निकल के इन भगतियों उपसिकाओं के हाथ जोड़ के अपना पुण्य मानते हैं।

"हमें छोड़ कां जाओ ब्रजवासी। हमें....।
जो तुम हमें छोड़ कऊँ जैहौं तो
तज डारौं प्रान गरै डारी फासी। हमें...।

कतक्यारी भजन गाती, भगवान को खोजती नगर में जौ बोती 'गंगा जू मे जों बये' के पुण्य लूटती, अन्य टोलियों के मार्ग दिखातीं, पूरे वातावरण को कन्हैया जू की लीलामय बना देती है-

वेई न मिले जिनके हम दासी।
मोर मुकुट हरि के अधिक विराजै
सो कलगी बीच बसाई हरि कासी। वेई न.......।।"

इस प्रकार पूरे एक सप्ताह भ्रमण करती अपनी पूजा के क्रम को चलित रूप देकर विभिन्न जलाशयों पर ख़ोजती कन्हैया जू को प्राप्त कर लेती है। फिर उसी प्रकार पूजा के क्रम अपने स्थापित सिंहासनों पर चलते हैं। अंतिम सप्ताह में आराधन पूजन के बाद अपने-अपने घरों पर कतक्यारियों के जोड़े राधा दामोदर के रूप में पूजे जाते हैं। उन्हें भोजन कराये जाते हैं, इनमें नाते, रिश्तों तथा पड़ोस के भी जोड़े न्योते जाते यथा सामर्थ्य सामूहिक भोजनों का यह आनन्द व्रत की पूर्णता के वैभव का द्योतक बन जाता।

कार्तिक स्नान के अंतिम दिन अपने भगवान को पकवानों के घर बनाये जाते, बेसन की पूड़ी-पुआ की पांखें-म्यारें चिरइयां बेड़ेरे और कुरइयां, खपरा बनते, घर रूप लेता उसमें कन्हैया जू विराजते, दीपक जलता पूजा आरती के बाद महीने भर तक कार्तिक-महात्य सुनाने वाले पंडितों की घर-घर कतक्यारियां पूजा करती दक्षिणा देती, इस घर बने पक्वाना को भेंट करती तथा स्नान के पहिले दिन बधवाई व्रत की गांठ को खोलती, उसमें बंधे रुपइया पैसा सोना चांदी जो भी हो पंडित को भेंट करदी जाती, इस प्रकार इस मास के व्रत का सफल समारोपण होता।

दूसरे दिन प्रकृतिदत्त सहज मेवा बेर-मकारों सिघाड़े आदि का चबेना भगवान को अर्पित किया जाता और व्रतधारियों के पारने होते।

इस प्रकार "लैगओ चीर मुरारी में कैसी करौ......" चीरहरण की लीला के चिन्तन दर्शन से आरंभ हुआ ये कार्तिक स्नान सम्पन्न होता है।

"होत वृन्दावन रास जो ऐ जी ऐ सो देखन मैं न गई,
नाचत गोपी ग्वाल सो ये जी ऐ सो देखन मैं न गई।।

कई दिनों मुग्ध होकर गाते रहके अतीत के उस पुण्य सम्मेलन के सपनों में कतक्यारियां खोई रहके आगे भी इस प्रकार के अवसर प्राप्त होने की कामना करती रहतीं।

आवश्यकता इस बात की है हम आज भी इन अनुष्ठानों लोक भजनों लोक रंजन के फलितार्थ को जाने समझें और इनको पूरी आस्था से आयोजित करते रहके इनमें सर्वतोमुखी आकर्षण स्थापित करें तो उनमें समाई भक्ति की भावना और ध्यान धारणा, लोक संस्कृति, लोक रंजन को भव भय भंजन का आधार बना के हम आज भी भोगवादी भटकानों से अपनी पीढ़ियों को बचा सकेंगे, अपने महिमा भक्ति पूर्ण मूल्यों की रक्षा कर सकेंगे।

- नरसिंहगढ़ पुरवा, छतरपुर

खजुराहो के कन्दरिया महादेव मन्दिर की शैव प्रतिमायें

– प्रो. चित्रलेखा अवस्थी

भारतवर्ष का धर्म ही प्राण है। उसकी अपनी प्राचीनतम सांस्कृतिक परम्परा भी है। इस कारण धर्म एवं संस्कृति से सम्बन्धित कल्पना तथा विचार शैली मूर्ति-निर्माण के आधार-भूत विषय थे। इन्हीं बातों को ध्यान में रखकर निर्माण कार्य सर्वदा प्रगतिशील रहा। इतिहास यह घोषित करता है कि अत्यन्त प्राचीन युग में प्रतीक पूजा द्वारा मानव अपने हृदयगत विचारों को व्यक्त करता था। विभिन्न धर्मों में यही प्रथा मान्य थी।

भारतीय देववाद में शिव का असाधारण महत्व है। सब कुछ शिव में हैं शिव से भिन्न कुछ नहीं है। खजुराहो शिल्प में शिव के अंकन को प्रमुख स्थान मिला है। शिव प्रतिमायें खजुराहो शिल्प में मिलती है। ऐसा अनुमान है कि शिव-प्रतिमा और पूजा परम्परा का इतिहास प्राग ऐतिहासिक युग से ही प्रमाणित हैं। सिन्धुघाटी की सभ्यता में शिव प्रतीक (लिंग) तथा मूर्त दोनों ही रूपों में पूजे जाते थे। उस समय की कला में दोनों ही प्रकार के शिव स्वरूपों का अंकन हुआ है। इसी प्रकार वैदिक रुद्र कभी सूर्य तथा कभी विष्णु से तुलनीय हैं, किन्तु उत्तर वैदिक साहित्य में यथा- अथर्ववेद, सांख्यायन, कौसितिकी ब्राह्मण, श्वेताश्वेतर उपनिषद मे शिव अनेक नामों से ज्ञात हैं, यथा भाव - शर्व, पशुपति, उग्र, महोदय, अशनि, ईशान, मायिन, माहेश्वर आदि। महाभारत में शिवोपासना के स्पष्ट संकेत मिलते हैं, पुराणों में शैव धर्म की विस्तृत व्याख्या की गई है। इस युग में मुख्यतया दो शाखायें थी - वैदिक और अवैदिक।

आगमान्त तथा वेदान्त शैव धर्म छः सम्प्रदायों में विभक्त था - शैव, पाशुपात, कालमुख, कापालिक, वीरशैव, प्रत्यज्ञाभि। शैव सम्प्रदाय दक्षिण भारत में विशेष लोकप्रिय था जिसके पांच मुख-सद्योजात, कामदेव, अघोर, तत्पुरुष, ईशान नाम से सम्बोधित हैं जिनमें २८ तंत्रों की कल्पना की गई हैं।

कापालिक को पशुपत सम्प्रदाय की शाखा मानते हैं। कालमुख वाममार्गी सम्प्रदाय है। शिव शैव को ही लिंगायत सम्प्रदाय कहते हैं। प्रत्यज्ञाभिवादी को ही कश्मीर शैव परम्परा से जोड़ा गया है। इस प्रकार शैव सम्प्रदाय की अनेक शाखायें हैं जिनमें घोर तथा वाममार्गी ही लोकप्रिय हैं।

श्वेताश्वेतर उपनिषद् में शिव के लिये "एक देव रुद्र महर्षि" पद आया है। कालान्तर में शिव-लिंग, महादेव, शिव, महेश्वर, अनेक नामों से पूज्य थे। साधारणतया कल्याणकारी परमात्मा को शिव कहा जाता है जो समस्त जीवों में व्याप्त है तथा जो सबका अधिष्ठान, मूलाधार और अभिन्न निमित्तोपादान कारण है। शिव को मुख्यतया त्रिनेत्रधारी भस्मभूत लपेटे जटाजूट से युक्त एवं दिगम्बर दिखलाया जाता है। साथ ही वृषभ का भी अंकन होता है।

मूर्तिकला की दृष्टि से खजुराहो उत्तर भारत का महत्वपूर्ण केन्द्र है। यहां चन्देलकालीन मूर्तियों का निर्माण हुआ चन्देल शासक हर्ष, धंग और विद्याधर शैव धर्म के प्रवल समर्थक थे। शैव मूर्तियों का प्रभाव खजुराहो कला में सर्वत्र व्याप्त है। शिव मूर्तियों का अंकन खजुराहो में इतना हुआ है कि सम्पूर्ण खजुराहो ही शिव मय लगता है। खजुराहों का कन्दरिया महादेव मन्दिर अत्यन्त विशाल एवं भव्य शिव मंदिर है। मध्यकालीन नागर मन्दिर वस्तुकला का सर्वोत्कृष्ठ उदाहरण है। यह विद्याधर के शासन काल में (१०२५ - १०५० ई.) बना था। कन्दरिया महादेव मंदिर का गर्भगृह एक वर्गाकार प्रकोष्ठ है, जिसमें संगमरमर का शिवलिंग स्थापित है। शिवलिंग का पूजन शिव प्रतिमा से अधिक मान्य है। शिव मंदिरों में लिंग की प्रतिमा होती है तथा मूर्तियां, मंदिरों के अभ्यंतर और बाह्य भित्तियों पर प्रदर्शित होती है, इसीलिये खजुराहो में जितने भी शिव मन्दिर बने हैं सभी मन्दिरों में शिवलिंग ही स्थापित हैं

खजुराहो मन्दिरों पर उत्कीर्ण मूर्तियों में शिवलिंग पूजा का दृश्य कई स्थलों पर उत्कीर्ण है। इसी प्रकार का एक दृश्य फलक कन्दरिया महादेव मंदिर के मण्डप में उत्कीर्ण है जिसमें बाहर गन्धर्वो को अपनी-अपनी शक्तियों सहित हाथों में पुष्पमाला लिये पूजा करते दिखाया गया है। इस दृश्य में यह स्पष्ट होता है कि देवता की पूजा में गायन, वादन, घण्टा, ढोलक, पूजा की वस्तु तथा पुष्प मालाओं का प्रयोग होता था।

कन्दरिया महादेव मन्दिर में शिवलिंग के साथ-साथ भगवान शिव के अनेक स्वरूपों की मूर्तियां मिलती हैं। शिव की एकल मूर्तियों का अंकन खजुराहो कला में अत्यधिक हुआ है। इस रूप में शिव को स्थानक तथा आसन दोनों ही प्रकार की मूर्तियों का अंकन हुआ है। इस रूप में शिव को अकेले स्थानक या आसन में मुख्यतया चतुर्भुज ही बनाया गया है। साथ ही इनके हाथों में मुख्य रूप से अभय, वरद, सर्प, त्रिशूल तथा घट का अंकन समान्यतया हुआ है। कन्दरिया महादेव मंदिर पर शिव की स्थानक मूर्तियों का अत्यधिक अंकन मिलता है। इन सभी स्वतंत्र अंकनों में शिव को आभंग तथा अलंकरणों से युक्त चतुर्भुज बनाया गया है। ये सभी मूर्तियां समान भंगिमाओं में बनी हैं। मन्दिर के भीतर प्रदक्षिणा पथ में दो मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। एक मूर्ति के सभी हाथ खण्डित हैं, किन्तु साथ में वृषभ का अंकन हुआ है। दूसरी मूर्ति के हाथों में अभय, त्रिशूल, सर्प, तथा घट का अंकन हुआ है। मन्दिर के बाहर दाहिने जंघा पर शिव की लगभग १६ स्थानक प्रतिमाओं का स्वतंत्र अंकन है। इन सभी मूर्तियों में त्रिशूल और सर्प का अंकन सामान्यतयाः हुआ है। चौथे हाथ में घट का अंकन अधिक हुआ है। किन्तु कुछ प्रतिमाओं में चौथा हाथ कटिहस्त मुद्रा में अंकित है पहला हाथ अभय तथा वरद दोनों मुद्राओं में यथा-स्थान अंकित किया गया है। इसी प्रकार इतनी ही मूर्तियाँ मंदिर के बायी ओर की जंघा पर भी उत्कीर्ण की गयी है। जिनमें इसी प्रकार के आयुधों का अंकन किया गया है। ये सभी मूर्तियाँ भंगिमा की दृष्टि से समान हैं।

खजुराहो में शिव की एकल आसन मूर्तियां ललितासन तथा पद्मासन दोनों ही रूपों में मिलती है। खजुराहो के सभी ब्राह्मण धर्म सम्बनधी मन्दिरों के ललाट बिम्ब पर शिव की ललितासन प्रतिमायें हैं जो ब्रह्मा और विष्णु के साथ में है। इस प्रकार सृष्टि, स्थिति, संहार तीनों ही शक्तियों का अंकन ब्रह्मा, विष्णु और महेश के रूप में त्रिदेव धारणा के अन्तर्गत हुआ है।

कन्दरिया महादेव मन्दिर पर शिव की एकल ललितासन मुद्रा की एक मूर्ति गर्भगृह के प्रवेश द्वार के ललाटबिम्ब पर उत्कीर्ण है यह मूर्ति चतुर्भुज तथा इसके हाथों में वरद मुद्रा, त्रिशूल, सर्प तथा घट का अंकन हुआ है।

शिव की एकल मूर्तियों के अतिरिक्त खजुराहो कला में शिव की युग्म मूर्तियों का भी अंकन हुआ है। इन मर्तियों में शिव पार्वती को आलिंगन मुद्रा में स्थानक तथा आसन दोनों ही रूपों में अंकित किया गया है। इस प्रकार की प्रतिमाओं में शिव को चतुर्भुज तथा पार्वती को द्विभुज बनाया गया है। शिव को एक हाथ से पार्वती का आलिंगन किये तथा पार्वती को अपना हाथ शिव के कंधे पर रखे हुए अंकित किया गया है। कुछ प्रतिमाओं में शिव-पार्वती दोनों को द्विभुज बनाया गया है। उमा-महेश्वर की चार स्थानक मूर्तियां कन्दरिया महादेव मन्दिर के भीतर उत्कीर्ण हैं। इसमें से दो मूर्तियां प्रवेश द्वार पर उत्कीर्ण हैं। इन मूर्तियों में शिव तथा पार्वती दोनों को द्विभुज बनाया गया है। शिव का एक हाथ अभय मुद्रा में तथा दूसरे हाथ से पार्वती का आलिंगन किये दिखाया गया है। पार्वती का दाहिना हाथ शिव के दाहिने कंधे पर स्थित है तथा बायें हाथ में दर्पण अंकित है। शेष दो मूर्तियों में शिव को चतुर्भुज तथा पार्वती को द्विभुज बताया गया है। एक मूर्ति में शिव को दूसरे तथा तीसरे हाथ में त्रिशूल एवं सर्प धारण किये दिखाया गया है इनका पहला हाथ वरद में अंकित हैं चौथे हाथ द्वारा पार्वती को आलिंगन किये दिखाया गया है। पार्वती का एक हाथ शिव के कंधे पर तथा दूसरे हाथ में दर्पण अंकित है। दूसरी मूर्ति में शिव के तीन हाथ खण्डित हो चुके हैं तथा चौथा हाथ आलिंगन मुद्रा में है और पार्वती का दाहिना हाथ शिव के कंधे पर स्थित है। पार्वती का भी बांया हाथ खण्डित हो चुका है।

कन्दरिया महादेव मन्दिर पर उमा-महेश्वर की ललितासन मुद्रा की आठ मूर्तियां अंकित हैं। इसमें अधिकांश मून्रियों के हाथ खण्डित हो चुके हैं। सभी मूर्तियों के दूसरे तथा तीसरे हाथ में सर्प तथा त्रिशूल अंकित है। इसमें दो मूर्तियों के साथ वृषभ का तथा एक मूर्ति के साथ सिंह का अंकन हुआ है। अर्द्धनारीश्वर की कुछ प्रतिमाओं का अंकन खजुराहो कला में हुआ है। इस प्रतिमा के नाम से ही आधा नारी तथा आधा पुरुष की आकृति का परिज्ञान होता है। शिव पुराण की कथा का प्रस्तर पर प्रदर्शन है। ब्रह्मा ने सृष्टि की रचना के साथ प्रजापति को पैदा किया परन्तु उनको यह ज्ञान हुआ कि नारी के बिना पुरुष सृष्टि की ओर अग्रसर नहीं हो सकता है। तब महेश्वर की प्रार्थना की जो अर्द्धनारीश्वर के रूप में प्रकट हुआ। कन्दरिया महादेव मन्दिर पर अर्द्धनारीश्वर की एक प्रतिमा उत्कीर्ण है जिसके एक हाथ में वरद मुद्रा तथा शेष तीन हाथ खण्डित हो चुके हैं। यह मूर्ति चतुर्भुज है तथा शेष तीन हाथ खण्डित हो चुके हैं वह मूर्ति मन्दिर के प्रदक्षिणा पथ में अंकित है।

शिव की सौम्य स्वरूप सदाशिव की एक प्रतिमा कन्दरिया महादेव मन्दिर के महामण्डप में उत्कीर्ण है। इस प्रतिमा में देवता को षड़मुखी तथा द्वादशभुजी बनाया गया है। साथ ही देवता को चार पैरों से युक्त बनाया गया है देवता के दो पैर पद्मासन मुद्रा में अंकित किये गये हैं तथा दो पैर सिंहासन, से लटकते हुये नीचे पाद पीठ पर स्थित अंकित किया गया है। देवता के मुख पर ध्यान का भाव स्पष्ट है। इनको जटाजूट कुण्डल, हार, यज्ञोपवीत, कोटिमेखला तथा भुजबन्ध से युक्त अलंकृत किया गया है। देवता के नीचे के लटकते पैरों के बीच ब्रह्मा को पद्मासन लगाये अंकित किया गया है इनका मुख खण्डित हो चुका है। ब्रह्मा को चतुर्भुज बनाया गया है, किन्तु उनके हाथों के आयुध स्पष्ट नहीं हैं। सदाशिव की मूर्ति के दोनों तरफ ऊपर में दाहिने चतुर्भुज शिव एवं बायें चतुर्भुज विष्णु को भी पद्मासन मुद्रा में अंकित किया गया है। शिव के हाथों में क्रमश वरद मुद्रा, त्रिशूल, सर्प और फल अंकित है तथा विष्णु के दो हाथों में वरद मुद्रा तथा गदा तथा शेष दो हाथ की वस्तु स्पष्ट नहीं है। सदाशिव का दाहिना हाथ वरद मुद्रा में अंकित है तथा शेष सभी हाथ खण्डित हो चुके हैं। देवता के सिर पर शिव लिंग भी बना है।

कन्दरिया महादेव मंदिर के प्रदक्षिणा पथ में एक प्रतिमा भैरव की अंकित है। यह मूर्ति स्थानक तथा चतुर्भुज बनायी गयी है। मर्ति के दो हाथ खण्डित हो चुके हैं तथा दो हाथों में खड्ग तथा पाश अंकित है। मूर्ति दाढ़ी एवं जाटजूट से युक्त है। सर्प का यज्ञोपवीत धारण किये, बनाया गया है। मूर्ति का मुख उग्रभाव में अंकित है। भैरव की मूर्ति कन्दरिया महादेव मंदिर की जंघा पर उत्कीर्ण है।

कन्दरिया महादेव मंदिर के प्रदक्षिणा पथ में गजासुर संहार की एक प्रतिमा अंकित है यह मूर्ति द्वादशभुजी बनायी गयी है। इस मूर्ति के दस हाथ खण्डित हो चुके हैं, केवल ऊपर के दो हाथों में गजचर्म धारण किये दिखाया गया है। मूर्ति का बायां पैर खण्डित हो गया है तथा दाहिना पैर कुछ ऊपर उठा हुआ मुड़ा है। देवता को दाहिने पैर के बल पर खड़े संहार मुद्रा में अंकित किया गया है। शिव प्रतिमा के नीचे वाहन, वृषभ का भी अंकन हुआ है। शिव को जटामुकुट त्रिनेत्र तथा दाढ़ी युक्त बनाया गया है। गले में हार तथा यज्ञोपवीत का भी अंकन हुआ है। हाथों में बाजूबन्ध तथा कटिमेखला का भी अंकन इस प्रतिमा में हुआ है।

गजासुर संहार की दूसरी प्रतिमा भी कन्दरिया महादेव मन्दिर के मण्डप में उत्कीर्ण है। यह मूर्ति दशभुजी हैं किन्तु इसके ऊपर के दो हाथ छोड़कर शेष सभी हाथ खण्डित हो चुके हैं। ऊपर के दोनों हाथों में गजचर्म धारण किये दिखाया गया है। शिव का बायां पैर कुछ मुड़ा हुआ ऊपर उठा है तथा दाहिना पैर तिरछा है जिसके बल पर खड़े हैं।

इस प्रकार कन्दरिया महादेव मन्दिर खजुराहो का अत्यन्त विशाल एवं भव्य शिव मंदिर है इस मन्दिर में भगवान शिव के अनेक स्वरूप की मूर्तियां मिलती हैं। जो कला एवं धर्म में महत्वपूर्ण स्थान रखती है।

- सहा. प्रा. इतिहास, शा. महाराजा महाविद्यालय, छतरपुर

श्रीराम से होली खेलने वाली रानी कंचन कुँवरि

— डॉ. सुश्री शरद सिंह

बेतवा नदी के सुरम्य तट पर बसा हुआ ओरछा जो मध्ययुग में शक्ति का पर्याय था, आज अपनी ऐतिहासिक धरोहरों को संजोए हुए मध्यप्रदेश के टीकमगढ़ जिले में स्थित है। इसी ओरछा पर राज्य करने वाले महाराज सुजान सिंह की रानी का नाम था कंचन कुंवरि। महाराज सुजान सिंह का अधिकांश समय युद्ध भूमि में व्यतीत होता था। शेष समय वे अपने राजकार्य में व्यस्त रहते थे। ऐसे वातावरण में रानी कंचन कुंवरि का भक्तिरस में डूब जाना स्वाभाविक था। रानी कंचन कुंवरि अपनी बाल्यावस्था से ही श्रीराम की अनन्य उपासिका थी। विवाह के उपरान्त ओरछा आने पर भी श्रीराम के प्रति उनकी भक्ति कम नहीं हुई। वे बेतवा के तट पर स्थित उपवन में जा बैठतीं और घंटों बेतवा की लहरों में श्रीराम की ही छवि की कल्पना करती रहतीं। धीरे-धीरे कंचन कुंवरि श्रीराम की भक्ति में इतनी अधिक डूब गई कि उन्होंने अपने आराध्य को अपना सर्वस्व मान लिया। यह भाव ठीक उसी प्रकार का था कि "त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमैव बंधुश्च सखा त्वमैव...."

ब्रजबिहारी श्रीकृष्ण से तो भक्तहृदय कवियों एवं कवयित्रियों न अपनी भक्तिरस की कविताओं के माध्यम से खूब होली खेली है -

फाग में भीर अभीरन की, गहि गोविन्द ले गई भीतर गोरी।
नैन नचाय कहे मुस्काय, लला, फिर आइयो खेलन होरी।।

पद्माकर, रसखान आदि कवियों ने श्रीकृष्ण और गोपियों के परस्पर होली खेलने का जी भर कर वर्णन किया है किन्तु मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम से होली खेलने का साहस कम ही उपासक-उपासिकाएं कर सकी हैं। कंचन कुंवरि ने अपने आराध्य श्रीराम के प्रति अनन्य भक्ति को व्यक्त किया, वहीं उन्होंने अपने काव्य के माध्यम से श्रीराम के संग होली भी खेली। उन्होंने जनकनंदिनी सीता और श्रीराम के होली खेलने का वर्णन करते हुए वे सीता जी के पक्ष में स्वयं को खड़ी पाती हैं -

रसिया हैं खिलाड़ी, होरी की रसिया है
अबीर गुलाल भरत नैनन में, डारत है रंग केशर कौ
पकड़ न पावत भाज जात है, मूठा भर-भर रोरी कौ
कंचन कुंवरि बचो नहीं प्यारे, परही दांव किशोरी कौ।।

श्रीराम मर्यादा पुरुषोत्तम हैं अतः उनके साथ खेली गई होली में मर्यादा की सीमा का विशिष्ट स्थान है। रानी कंचन कुंवरि ने इस सीमा का पूरा-पूरा ध्यान रखा है। श्रीराम के साथ होली खेलने की शैली परम्परागत होते हुए भी मर्यादित है -

खेलत ऐसी होरी, करत रघुबर बरजोरी
नाको गेह खड़ो पनघट में छैल सकारी खोरी
धूम मचावत, रंग बरसावत, गावत हो-हो होरी भरत अकम जोरा-जोरी।।
देखो अली, गली बिच मोहन कैसी करी गत मोरी
केशर रंग-गुलाल डार विंहस मली मुख रोरी झटक बहियां झकझोरी।।
सारी तार-तार कर डारी, मोतिन की लर तोरी
'कंचन कुंवरि' मुरक गई बेसर मैं बहुभांति निहोरी सुनी ऊने एक न मोरी।।

रानी कंचन कुंवरि की काव्यात्मकता में पिरोई हुई मानवीय भावनाएं हृदय को गहरे तक स्पर्श करती हैं। अपने एक छंद में कंचन कुंवरि ने वर्णन किया है कि फागुनी उमंग में डूबे अवध के राजकुमार श्रीराम ने जब उनको मार्ग में रोकने का प्रयास किया तब उन्हें कौशल्या माता की दुहाई देनी पड़ी।

मोरी छैंकौ न गैल खैल रसिया
मदमाते छाके होरी के राजकुंवर हो अवध बसिया
संग की सखियां दूर निकर गईं हो, जो अकेली मोरो डरपै जिया
सास ननद कहूं जो सुन पैहें, गारी देहें, मोरे प्राण पिया
'कंचन कुंवरि' कौशल्या बरै, तन मन तुम पै वार दिया
मोरी छैंकौ न गैल खैल रसिया...

यह अनन्य भक्ति का चर्मोत्कर्ष ही था कि कंचन कुंवरि ने श्रीराम की भक्ति में स्वयं को ठीक उसी तरह पाया जैसे मीरा ने श्रीकृष्ण की भक्ति की थी। कंचन कुँवरि के लिए श्रीराम ब्रज के कान्हा की भांति थे। वे श्रीराम को सखा-भाव से भी देखती थीं। एक ऐसा सखा जिससे वे अपना सारा दुख-सुख कह सकती थीं और जिनके साथ ठिठोली भी कर सकती थीं। इसीलिए वे अपने एक पद में मिथिलापुर की सखियों को सावधान करते हुए लिखती हैं -

द्वारे ठाड़ो छैल मदवारो, गोरी दैलो झपट किवारी
अवध छैल दिलदार यार को बाजै जात निगारौ
मिथिलापुर की नवलनारि सब मानो कहो हमारौ
'कंचन कुंवरि' नहीं अब हर है जग बदनाम तुम्हारौ

रानी कंचन कुंवरि के पदों में जहां भक्तिरस के दर्शन होते हैं, वहीं नारियोचित चंचलता भी दिखाई देती है। किन्तु इस चंचलता में एक सहज संकोच है। वे 'मिथिलेश लली' अर्थात् सीता जी से अनुमति मिलने के बाद ही श्रीराम से होली खेलने पर विचार करती हैं तथा सीताजी की अनुमति मिल जाने पर वे श्रीराम को सीता के वस्त्राभूषण से सजा कर छेड़ना चाहती हैं। इस साज-सज्जा में वे श्रीराम के चरणों में नूपुर और महावर लगाना चाहती हैं। वस्तुतः यह होली खेलने का सखी-भाव होते हुए भी एक मर्यादित रूप है -

रसिया को आज पकड़ लैबी
है आज्ञा मिथिलेश लली की, तुरतई पालन कर लैबी

श्रीराम की भक्त कवियत्री कंचन कुंवरि ने ब्रज और अवधि मिश्रित बुन्देली में भजन, बधाई, दादरा, बन्ना, झूलागीत और फाग गीतों की रचना की है जिन्हें आज भी समूचे बुन्देलखण्ड में ढोलक और मंजीरे के साथ गाया जाता है किन्तु इन सभी रचनाओं में श्रीराम के साथ होली खेलने का वर्णन सबसे विशिष्ट कहा जा सकता है। भक्ति साहित्य में ऐसे उदाहरण कम ही देखने को मिलते हैं।

- एम-३, शांति विहार, रजाखेड़ी, सागर

चित्रकूट की काव्य मनीषा : राजमाता श्यामलता 'श्यामा'

– सुधा रावत 'क्षमा'

बुन्देलखण्ड में साहित्य की धारा तो मानो हर गली हर कूचें से प्रवाहित होती रही है। आदिकाल से देखें तो जगनिक, ईसुरी गंगाधर व्यास, ख्यालीराम, कवीन्द्र केशवदास जी जैसे काव्य साधक हैं, तो दूसरी तरफ कुँवरि गणेश, युगल प्रिया, राय प्रवीण, बृषभानु कुंवरि, पासवान, रामप्रिया, महरानी कंचन कुंवरि, सुश्री निकुंज मलिका, राजकुंवरि आदि अनेक महिला रचनाकारों ने सतत साहित्य-साधना की है।

उपर्युक्त सभी नाम या तो रानी-महारानियों के हैं अथवा राजघरानों से जुड़े हुये हैं। कारण स्पष्ट है कि प्राचीन काल में अन्य महिलाओं में शिक्षा का अभाव था अतः शिक्षित होने के नाते राजघराने की महिलायें ही अधिकांशतः लेखन करती थी। वैभव और विलासपूर्ण जीवन जीने के बावजूद भी उनके लेखन की यह विशेषता थी कि वे भक्ति रचनायें अर्थात् भजनों का लेखन अधिक करती थीं और उनके आराध्य देव श्रीराम और श्रीकृष्ण ही हुआ करते थे। पासवान जैसी कुछ रचनाकारों ने भगवान शिव को केन्द्र में लेकर भी कुछ रचा है। इतना ही नहीं कुछेक ने अन्य छतरपुर रचनाओं के साथ बन्ना-बन्नी की रचना भी की है। इन सबका रचना संसार स्वान्तः सुखाय की भावना लेकर रचा गया। प्रचार-प्रसार और दिखावे से दूर। यही कारण है कि उत्कृष्ट लेखन और सतत साधना के बाद भी अनेक नामों से हम अनभिज्ञ हैं।

इसी क्रम में एक नाम है चित्रकूट की राजमाता स्व. श्यामलता 'श्यामा' का। आपका जन्म सन् १६११ (संवत् ६८) में फाल्गुन मास शुक्लपक्ष की सप्तमी के दिन बड़े गांव जि. जालौन उ.प्र. में हुआ था। आपके पिता श्री शिवचरण मिश्रा बड़े गांव के जमीदार थे। मात्र एक वर्ष की आयु में पिता का स्वर्गवास होने के पश्चात् आपका लालन पालन सौतेले बड़े भाई श्री राम सहाय ने बड़ी जिम्मेदारी और स्नेह के साथ किया। आपका शुभ विवाह १४ वर्ष की आयु में संवत ८२ जून के महिने में चित्रकूट नरेश चौबे शिव प्रसाद जू देव के साथ राजकीय ठाट-बाट के साथ सम्पन्न हुआ। दो वर्ष के बाद गौने के पश्चात् आप चित्रकूट पधारीं। १६ वर्ष की अल्हड़ आयु में चित्रकूट की महरानी बनकर सजपाट और घर-गृहस्थी की जिम्मेदारियों को कुशलता से निभाते हुये, छः पुत्रियों और दो पुत्रों की मां बनने का सौभाग्य भी प्राप्त हुआ। किन्तु तीन पुत्रियों के असमायिक निधन से हृदय विदीर्ण हो गया फिर भी श्यामलता टूटीं नहीं। दृढ़ता से परिस्थितियों का सामना करते हुये पूजा-पाठ में मन रमाने का प्रयास करने लगीं।

५० वर्ष की उम्र पार करते-करते पुत्र-पुत्रियों की जिम्मेदारी से निवृत होकर, ईश्वर भक्ति में निश्चिन्तता से लीन हो गईं और यहीं से लेखन की शुरुआत हुई। मन में भक्ति की भावना और चित्रकूट धाम में निवास बस मिल गई भावों को अभिव्यक्ति और झरने लगे गीतों के झरनें। आपने रामभजन, कृष्ण भजन, चित्रकूट और अनेक बन्ना-बन्नी और कवित्त रचे। श्यामलता जी श्री कृष्ण उपासक थीं इसीलिये 'श्यामा' उपनाम जोड़कर श्यामलता 'श्यामा' हो गईं। उनके कथनानुसार 'श्रीकृष्ण विशाल वृक्ष है और मैं उनसे लिपटी लता हूँ।' श्यामाजी मीराबाई से अत्याधिक प्रभावित थीं और उन्हें ही अपना आदर्श मानती थीं। रात-दिन श्री कृष्ण भक्ति में लीन श्यामा जी 'गोपालो विजयते' कह कर ही अभिवादन किया करती थीं।

गेहूँआं रंग, साधारण कदकाठी प्रथम दृष्टया कोई नहीं कह सकता था कि ये राजमाता हैं। अधिक सुन्दर नहीं किन्तु रोब से भरपूर, मुख मण्डल पर अपूर्व आभा, कार्य कुशलता व निर्णय क्षमता में सक्षम और समर्थ। दृढ़ व्यक्तित्व की धनी होने के बावजूद स्वभाव से सहज व सरल। सन् १६८६ में पति के स्वर्गारोहण के बाद तो जैसे सारा जीवन ही श्रीकृष्ण को समर्पित हो गया। यूँ तो श्यामलता जी का पूरा जीवन ही एक तपस्या था। साधना में तो वे बड़े-बड़े साधकों को भी पीछे छोड़ गईं। राजघराने की होने के बावजूद सोने-चांदी के बर्तनों को त्यागकर पत्थर और लकड़ी के बर्तनों में भोजन किया करती थीं। उनकी रसोई शुद्ध साफ अमनियां (कोसा की साड़ी) पहन कर बनाई जाती थी। तला भुना खाना उन्हें बेहद पसन्द था किन्तु रात्रि में वे कभी भी भोजन नहीं करती थीं। प्राणी मात्र से उन्हें असीम प्रेम था। उनके यहाँ हाथी से लेकर गाय, कुत्ते तोता आदि अनेक पशु-पक्षी पले थे, उन सबकी देखभाल श्यामाजी की दिनचर्या में शामिल थी। धार्मिक पुस्तकों में भागवत पुराण उन्हें सर्वप्रिय थी और वे उसका नित्यपाठ भी करती थीं। बुन्देली पारम्परिक रहन-सहन और ठेठ बुन्देली बोली की लटक उनकी विशेषता थी। किन्तु बड़े-बड़े शब्दों की व्याख्या वे अपनी तरह से चुटीले अंदाज में यूँ करतीं - कीर्तन का उल्टा होता है नर्तकी अर्थात कीर्तन में नृत्य आवश्यक है। और देखने वाले बताते हैं कि वे अपने लिखे कीर्तन ढोलक बजाकर गाती थी, और भाव-विभोर होकर नृत्य भी करने लगती थीं। इसी तरह वे लोगों से पूंछती थी। "नंदलाल लाल हैं तो राम हरे क्यों हैं? जब सामने वाला उनका मुंह ताकता रह जाता तब वे कहतीं - "अरे भाई प्रभु राम नीलवर्ण हैं और माता सीता पीतवर्ण। जब सीता जी की आभा श्री राम के मुख मण्डल पर पड़ती है तब श्रीराम हरे दिखने लगते हैं। इसी लिये सब कहते हैं हरे राम। इस तरह अनेक शब्दों की सार गर्भित व्याख्या करते हुये वे लोगों को चकित कर दिया करती थी। हालांकि उन्होंने किसी महाविद्यालय में जाकर शिक्षाग्रहण नहीं की बल्कि आपकी शिक्षा-दीक्षा घर पर ही हुई।

चित्रकूट तो यूँ भी शान्ति और तपस्या का स्थल माना जाता है। वहाँ के तो कण-कण में भक्ति रस समाहित है। उस पुनीत स्थल के सौभाग्य से तो स्वयं सौभाग्य को भी ईर्ष्या हो सकती है। जहाँ त्रिदेव बाल्य रूप में झूले। महासती अनुसुइया के

सतीत्व के बल पर ब्रह्मा, विष्णु, महेश, छिः-छिः माह के बालक बन गये।

और - माता अनुसुइया ने डार दये पालना।

तीन देव झूलत हैं बन कर के लालना।

कितना सुख वर्षा होगा चित्रकूट में, जहाँ अजन्मा त्रिदेव झूला में पड़े रो रहे होंगे। इसके अलावा चित्रकूट ही वह पावन भूमि है जहाँ श्रीराम, माता सीता और भैया लक्ष्मण जी ने तेरह वर्षों तक कामद गिरि में निवास किया और वनवास का समय यहाँ बिताया। धन्य है वह भूमि जो बुरे समय में श्री राम के साथ रही। चित्रकूट का रामघाट उस समय का भी साक्षी है जहाँ श्री राम ने महाराजा दशरथ का तर्पण किया। यह पुण्य स्थली भरत मिलाप के भावुक और करुण क्षणों की प्रत्यक्ष दृष्टा भी कही जाती है। जहां हनुमान धारा, रामघाट, मंदाकिनी घाट, कामदगिरि जैसे पावन स्थल हों। सीता रसोई, अनुसुइया आश्रम, स्फटिक शिला और गुप्त गोदावरी जैसे चार धाम हो वहां का कण-कण तो काव्य-मय होगा ही।

जहाँ पत्थरों से भी कविता फूटती हो वहाँ श्याम लता जी जैसी सहृदय व भावुक नारी के मन में काव्य के बीज अंकुरित हो गये इसमें आश्चर्य की क्या बात है। बहुत कम लोग जानते हैं कि महाराज चित्रकूट शिव प्रसाद जू देव स्वयं भी बहुत अच्छे रचनाकार थे। उन्होंने अनेक रचनाओं का सृजन किया वे 'शिवेन्द्र' उपनाम से लिखते थे। एक पति के रूप में आपने श्यामा जी को बहुत प्रोत्साहित किया।

चित्रकूट का राज महल ऐसे स्थान पर बना है जहाँ से चित्रकूट स्थित सभी तीर्थो के दर्शन राजमहल में बैठकर किये जा सकते हैं। चित्रकूट धाम के बारे में श्यामलता जी का यह कथन "यदि आपने चित्रकूट धाम के दर्शन कर लिये फिर आपको अन्य किसी भी तीर्थ स्थल के दर्शन करने की आवश्यकता नहीं है" और उनका यही भाव 'चित्रकूट वर्णन' कविता में उभरकर सामने आता है -

रे मनवा भजन करो चित्रकूट में।
रे मनवा भ्रमण करो चित्रकूट में।।
भूमि विलोकि राम पद अंकित,
दरस मिलै कण-कण में,
जो सुख है चित्रकूट धाम में,
सो सुख नैयां तीनों लोकन में।।
संत दरस गिरवर परकरमा,
स्नान करो मंदाकिनी में।
जेहि वन विहरत राम, लखन सिय,
'श्याम लता' निरखो नयनन में।
रे मनवा भजन करो चित्रकूट में।

श्यामा जी की भाषा पर पूरी पकड़ है। सौष्ठव शब्द चयन, उत्तम संयोजन और सुगठित छन्द आपके गीतों की पहचान है। संस्कृत के शुद्ध शब्दों के साथ हिन्दी के मानक व बुन्देली के लोक शब्द मुंदरी में नग की तरह जड़े लगते हैं। भक्ति आराधना और प्रेम पगे इस गीत में मुरली मनोहर का आवाहन उन्हीं के शब्दों में देखें -

श्याम प्यारे डगरिया में आया करो।
वाँकी-झाँकी सांवरिया दिखाया करो।
क्या लटक है मुकुट की,
माथे सुन्दर तिलक है।
नैन रतनारे बने हैं
मोहन रेखा झलक है।
तिरछी चितवन इधर भी घुमाया करो
कान में कुण्डल जड़ित
मन हरन सुषमा धाम है।
लटकती अलकें कपोलों पर,
लजाया काम है।
रस भरी भीनी बंसी सुनाया करो
श्याम प्यारे डगरिया में आया करो
श्याम सुन्दर की यह छटा,
घन-घटा झांकते रहो।
मन्द मुख मुस्कान
मूरत माधुरी लखते रहो।
भक्त वत्सल अनाथों पै छाया करो।
श्याम प्यारे डगरिया में आया करो।

कहा जाता है कि श्री राधे जू की कृपा के बिना श्री कृष्ण को नहीं पाया जा सकता। अतः सभी भक्त श्री कृष्ण का सानिध्य पाने के लिए "राधे-राधे श्याम मिला दे" का जाप करते हैं। जिनकी आराधना प्रभु श्रीकृष्ण स्वयं करते हैं उन श्रीजू को श्यामलता कुछ इस तरह मनाती-रिझातीं हैं -

जिनको नित प्रभु आराधे।
जय राधे-राधे-राधे।।
जिनको आदि अन्त नहीं पायो,
सो प्रभु तीनहू लोक समायो।
ऐसे प्रभु राधे बाँधेः जय राधे.........
कीरत कुँवर भानु जू की प्यारी,
तिनकी कीरत जग उजयारी।।
बिन रधे श्रीकृष्ण हैं आधे।। जय राधे...
श्याम-गौर दोऊ अति सुन्दर।
हे प्रभु आन बसौ मन मंदिर।।
हम चरण कमल के साधे... जय राधे....
श्यामा-श्याम भजौ राधे खों...
छूट जाये जग के बांधे सों।।
कटत कोट अपराधे....
जय राधे - राधे - राधे

और जब राधे जू की स्वीकृति मिल गई तब श्याम लता श्याम के रंग, रंगकर भाव विभोर हो कीर्तन कर नृत्य करने लगी-

गोविन्द हरे गोपाल हरे।
राधा पति राधे-श्याम हरे।
निस वासर तुम्हे नमामि हरे।
श्री मोहन राघव श्याम हरे।।

मुरलीधर मुरली अधर धरे।।
जै श्री पति केशव कृष्ण हरे।।
श्यामा में श्याम घनश्याम हरे।
करुणा निधि दीनानाथ हरे।।
वंशीधर नित्य किशोर हरे।।
शरणागत पाल-कृपाल हरे।।
श्रीकृष्ण हरे 'श्यामा' श्याम हरे
गोविन्द हरे गोपाल हरे।।

यह सत्य है कि श्यामलता जी कृष्ण उपासक थीं और उनकी भक्ति में मीरा की तरह दीवानिगी भी थी। किन्तु चित्रकूट में रह कर कोई श्री राम को कैसे भूल सकता है? वहां का तो कण-कण श्रीराम के गुण गाता है। क्योंकि उन्हीं के श्रीचरणों का स्पर्श पा कर तो वह धरती धन्य हुई। श्याम लता जी ने भी श्रीराम को केन्द्र में लेकर जो लिखा वह संख्या में भले कम हो किन्तु उत्कृष्टता में अद्वितीय है। एक ऐसी ही अत्यन्त अनूठी रचना देखें-

झूला झूलत शिया रघुनंदन।
रतन जटित के बने हैं हिंडोला,
क्रीट-मुकुट की लटकन।
धन्य अवधपुर धन्य राजा दशरथ,
जिन देखी मूरत निज नयनन।।
ठाड़े भरत, लखन, रिपुसूदन।
हनुमत लाल बुलावत सैनन।।
श्यामलता बलि जाऊँ राम पै।
मधुर-मधुर उनके दोउ नैनन।।
झूला झूलत शिय रघुनंदन....

श्री कृष्ण ने गिनती में भले ही अधिक विवाह रचाये हों किन्तु लोकनायक श्री राम का एक मात्र विवाह जन मानस पर छाया हुआ है और वे ही लोक में विवाह के नायक हैं। बुन्देली लोक गीतों में कार्तिक गीतों की छोड़ कर शेष लोकगीत राम को केन्द्र में रख कर ही गाये जाते हैं। खासकर विवाह में तो राम बन्ना और सीता बन्नी के प्रतीक रूप में स्थापित हो चुके हैं। विवाह गीतों की जितनी भी विधायें हैं उनमें श्रीराम सीता के रूप-गुणों का ही वर्णन मिलता है। श्यामलता जी भी इसी परम्परा का निर्वाहन करते हुये अपने गीतों में बन्ना-बन्नी का यही सोम्य रूप प्रस्तुत करती है -

बन्ने पर टीना मत मारौ।
काजर रेख सम्हारो।। बन्ने पर....।।
रानी सुनयना माता सिया की
अपने नैन सम्हारो।। बन्ने पर....।।
कोटन छबि मूरत मन मोहन
तन-मन-धन सब वारो।। बन्ने पर....।।
जनकपुरी के सब नर नारी,
राई-नीन उतारो।। बन्ने पर....।।
श्याम लता बलि जाऊँ रूप पै
मोरी ओर निहारी।।
बन्ने पर टीना मत मारौ
काजर रेख सम्हारो।।

भजन-कीर्तन और बन्ना-बन्नी के अलावा आपने अन्य छन्दों, सवैया और कवित्त आदि को भी भावाभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। श्यामा जी द्वारा रचित एक सवैया की वानगी प्रस्तुत है -

गंग सती अनुसुइया के अंग, वहै सिया रूप सुहावनियाँ हैं।
तरंग तरै मदगंज के छन्द में, दूध की धार बहावनियाँ हैं।
तट है बजरंग रंगे हरि रंग, बिदारत अंग पिसाचनियाँ हैं।
इत श्यामल अंग किशोरी के संग, मघा उतरंग सुहावनियाँ हैं।
श्री गोपाल कौ, धाम अनूपम, श्याम लता मन भावनियाँ हैं।

श्याम लता जी की रचनायें सहज ही पाठक को आकर्षित करती हैं। लय के धागा में शब्दों के मोती इतने जतन से पिरोये गये हैं कि किसी भी रचना में शब्द अतिक्रमण करते हुये नहीं लगते। गीतों सी उत्कृष्टता लोक-गीतों में भी झलकती है। किसी भी रचना में वे अपने स्तर से नीचे नहीं उतरी है। यही एक उच्च कोटि के रचनाकार की पहचान है और उनके गीतों की मौलिकता ही उन्हीं भीड़ से अलग स्थापित करने में सहायक होगी।

श्यामलता जी का साहित्य यत्र-तत्र बिखरा पड़ा है। अब तक उसे सहेजने का कोई ठोस कार्य नहीं हुआ है। आपके परिजनों द्वारा कुछ थोड़ा बहुत संजोया गया है। कुछ गीत आकाशवाणी द्वारा भी सुगम संगीत और लोकसंगीत में प्रसारित हुए हैं। किन्तु यह पर्याप्त नहीं है। श्यामलता जी पर शोध कार्य होना चाहिए और उनके साहित्य और रचनों को पुस्तकाकार रूप में शोध छात्रों के लिये सुलभ होना चाहिए। मेरा यह छोटा सा प्रयास पहला कदम है। आपकी रचनाओं का खजाना काफी होना चाहिये। क्योंकि ४० वर्षों की अवधि कम नहीं होती। ५० वर्ष से ८८ वर्ष की उम्र तक आपने निरन्तर लेखन किया है। अतः बहुत कुछ मिल सकता है आपकी रचनाओं में।

सन् १९९९ में दशहरे के दिन श्यामलता जी अनन्त में विलीन हो गईं। पर अपने पीछे छोड़ गई अपनी रचनाओं का अनूठा संसार जिसके माध्यम से वे सदैव हमारे बीच रहेंगी।

- श्री हरिहर निकुंज, ७, गीत बंगले फेस-।।,
दुर्गेश विहार, जे.के. रोड, भोपाल

एक निवेदन

बुन्देली बसन्त के सम्मानित पाठकों से निवेदन है कि इसको स्वयं पढ़ें व दूसरे को पढ़ने हेतु प्रेरित करें। साथ ही आप इसे खरीदकर इसके प्रकाशन में सहयोगी बनें। जिससे हमें सम्बल प्राप्त होगा।

आप का सहयोग हमें पूर्व की भांति निरन्तर प्राप्त हो रहा है और इसी तरह से नेह मिलता रहा तो बुन्देली बसन्त की वर्ष में आवृत्ति बढ़ाने की योजना है। इस सम्बन्ध में अपने सुझाव भेजने की कृपा करें।

- सम्पादक

घौरा का दुर्ग : एक दृष्टि में

— चौ. शीलचन्द्र जैन

बुन्देलखण्ड की वसुन्धरा की शिल्पकला अखिल विश्व में धूम मचा रही है। इसी शिल्प के दर्शनार्थ विश्व के अगणित राष्ट्रों से सैलानी यहां आते हैं और अपने जीवन को धन्य करते हैं। इसी प्रकार बुन्देली भूमि रत्नगर्भा तथा वीर प्रसू नामों से भी विख्यात है। विश्व का जनमानस बुन्देलखण्ड की हर वस्तु को चाहे वह नदी हो, पर्वत या वन हो, ग्राम अथवा नगर हो, क्षेत्र अथवा मंदिर हो यह बुन्देली वसुधा प्राकृतिक सुषमा से समृद्ध है, साथ ही यहां का अतीत शौर्य गाथाओं से भी प्रपूरित है।

इस माटी में अनगिनत वीरों ने जन्म लेकर इसका नाम बढ़ाया है। इतिहास इसका साक्षी है। इस धरा की आन, मान और सम्मान की रक्षा करने हेतु इसी माटी के बेटों और बेटियों ने हंसते-हंसते अपने जीवन प्रसूनों का बलिदान किया। समय समय पर विदेशी आक्रमणकारियों ने इसे पदाक्रांत करने का विचार किया किन्तु इस माटी के सपूतों ने, रणवांकुरों ने उनके मंसूबों पर पानी फेर दिया और इसकी चंदन माटी की पवित्रता को अक्षुण्ण बनाये रखा।

इतिहास का अध्ययन करने से हमें पता चलता है कि मध्ययुग में राज्य विस्तार की लिप्सा अत्यंत तीव्र रूप से हमारे सामने आई। राजाओं, नवाबों, जागीरदारों एवं सरदारों ने अपनी शक्ति एवं शौर्य के बल पर अपने-अपने राज्यों का विस्तार एवं राज्य की सुचारू व्यवस्था हेतु, किलों, दुर्गों का निर्माण कराया। जिस तरह राजस्थान एवं महाराष्ट्र में किलों की भरमार है इसी तरह हमारे बुन्देलखण्ड में भी राजाओं, नबाबों, सरदारों ने अपनी सुरक्षा हेतु अत्यंत अजेय, सुदृढ़, उन्नत एवं पेंचीदा किलों का निर्माण कराया, यथा ग्वालियर, झांसी, महोबा, कालिंजर, सागर, रहली, गढ़ाकोटा, ओरछा, टीकमगढ़, बल्देवगढ़, बटियागढ़, धामौनी, खटोला आदि के दुर्ग एवं किले। किलों की इसी श्रृंखला में घौरा के गिरिदुर्ग का भी स्मरण आये बिना रहता नहीं। एक प्राचीन दुर्लभ लेख की प्रतिलिपि निम्न प्रकार दृष्टव्य है -

"याद घौरा में किलो बनवायो ताकी।"

श्री महाराजाधिराज श्री महाराजा श्री राजा छत्रसाल जू देव के बखत में ई. सन् १७२६ संवत् १७८२ के माहु वदि तीज को श्रीराव दलपतरा जू ने पत्थर गढ़वायो नींव के बास्ते और इनके कुंवर श्री सवाई रात उद्देत सिंह ने व इनके कुंवर श्री सवाई राव हिम्मत बहादुर उमराव सिंह जू के बखत में बनकर तैयार हुआ। सो श्री सवाई राव पदम सिंह व श्री सवाई राव हटे सिंह व श्री सवाई राव कीरत सिंह व विश्राम सिंह जू के बख्त में श्री महाराजाधिराज श्री महाराजा श्री राजा किशोर सिंह जू देव पन्ना ने जब्त करो। ई. सन् १८०८ संवत १८६४ के पूस माह में तब जिमीं लगा दई हजार-पन्द्रह की और मुडवारेगरर की जमीं लगा दई हजार दस की। एकत्र पचीस हजार की जिमीं लगी रही माने बनी रही और श्री सवाई राव पदम सिंह जू के कुंवर सवाई राव तेई सिंह इनके कुंवर श्री सवाई राव किशुन सिंह तिनके कुंवर श्री सवाई राव रनदूल्हा दुर्जन सिंह जू व श्री सवाई राव हटे सिंह के कुंवर श्री सवाई राव जशुन सिंह तिनसें भये कुंवर पहलवान सिंह।

संवत् १९२४ ई. सन् १८६८ भर यही तरह खिताब चलत आयो औंर जिस दिन किला और ठकुराईस आबाद है तिस दिन खों जमींन व तफसील व लगात मुकुरवा, सुरई बावरी, कुंआ ताकि विदी के व पाईस सुदा जमा लगे ३३६०००।–।। तीन लाख छत्तीस हजार साढ़े नौ आना रुपया जमा नगद लगे। बांकी और बगीचा, ताल कुआं, बावरी, सुरई को जमा लगीं वह बाहर है। माने इसमें शुमार नहीं हैं।

दुर्ग निर्माण में लगभग ५० वर्षों का समय व्यतीत हुआ। दुर्ग की प्राचीरें, बुर्ज, कंगूरे आदि का निर्माण दुहरा तिहरा किया गया। प्राचीरों की मोटाई करीब ३० फुट, बुर्जों की मोटाई करीब ३८ फुट एवं कंगूरों की मोटाई लगभग २ फुट है। दुर्ग निर्माता की यह दुहरी तिहरी परतदार निर्माण कला का उद्देश्य शायद शत्रु को धोखे में डालने का रहा होगा कि यदि कभी कोई बाहरी शक्ति आक्रमण करती है और यदि दुर्ग की प्राचीरें बुर्ज आदि को क्षति पहुंचाती हैं या ध्वस्त होते हैं तो उसके पीछे ठीक वैसी ही स्थिति बनावट की रचना दिखाई देने लगे ताकि शत्रु ये समझे कि दुर्ग मालिकों द्वारा ध्वस्त इमारत का जीर्णोद्वार शीघ्र ही यथावत करवा लिया गया है।

दुर्ग में एक विशाल बावड़ी, चार चौपड़ा, बारादरी, दीवान आम, दीवान खास, अंतःपुर महल, भंडार, कुठार, मालखाना, तोपखाना, मारकश, चौकी, ध्यानस्तंभ, मंदिर, तुलसाना, स्नानाघर, शौचालय आदि पृथक-पृथक सुन्दर कलात्मक ढंग से निर्मित कराये गये थे। दुर्ग से बाहर निकलने हेतु भूमिगत गुप्त मार्गों का निर्माण भी कराया गया था, जो लगभग १ मील लंबे हैं। दुर्ग का निर्माण तीन खण्ड में हुआ। दो भूमिगत तहखाने आज भी दुर्ग में विद्यमान हैं। दुर्ग के बाहर चारों ओर एक गहरी पक्की खाई (खातिका) का निर्माण भी कराया गया था, जो दुर्ग के सामने की ओर लगभग १५ फुट एवं पीछे की ओर लगभग २० फुट गहरी है। आपातकाल में इसे पानी से भरवा दिया जाता था। दुर्ग के बाहर एक चौकी का निर्माण पृथक से किया गया था जो मुख्य द्वार एवं खाई के बाहरी भाग में स्थित है।

दुर्ग निर्माताओं ने इस दुर्ग के अतिरिक्त और भी बहुत से निर्माण कार्य कराये। यथा ४ तालाब, १४ बावड़ियां, अनेकों कुएं, बाग बगीचा, मकबरा, सुरई, विशाल जगदीश स्वामी मंदिर, जानकी निवास मंदिर आदि। तालाबों से सिंचाई हेतु नहरों का भी निर्माण करवाया गया था। दुर्ग के गंदे एवं दूषित जल की निकासी हेतु नालियां बनाई गई थी।

चौबीसों घंटे नगर की सुरक्षा हेतु नगर के चारों ओर सुरक्षात्मक दीवार (परकोटा) का निर्माण कराया गया एवं उत्तर पूर्व तथा दक्षिण दिशा में विशाल प्रवेश द्वारा बनाये गये, इसके बाहर भी चारों ओर गहरी खाई का निर्माण कराया गया। इससे सिद्ध होता है कि इस नगर के प्रशासकों की सुरक्षात्मक दृष्टि अत्यंत ही सुदृढ़ एवं दूरगामी थी। ये प्रवेश द्वारा प्रातःकाल में खोले जाते थे एवं सांझ होते ही बंद कर दिये जाते थे।

नगर की विकासधारा में जहां इन प्रशासकों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है वहीं बल, विक्रम और शौर्य में भी इनका कोई शानी नहीं। जिस प्रकार स्वराज्य के लिये महाराष्ट्र में छत्रपति वीर शिवाजी सारे जीवन मुगलों के खिलाफ हमेशा युद्ध कर उनकी नाक में दम किये रहे और मुगल सेना के दांत खट्टे करते रहे उसी तरह बुन्देलखण्ड मं भी महाराजा चंपतराय एवं उसके सुयोग्य वीर सुपुत्र महाराजा छत्रसाल ने भी मुगलों को चैन की नींद नहीं सोने दिया। मुगल सेना को इसकी सुरक्षात्मक बाढ़ में सेंध नहीं लगाने दी। बुंदेलखंड केशरी की उपाधि से महाराजा छत्रसाल को इसीलिए विभूषित किया गया था कि इन्हीं के शौर्य एवं अदम्य बहादुरी की बदौलत ही बुन्देलखण्ड की तितर-बितर शक्तियाँ एक संघ में एवं सुगठित स्वतंत्र राज्य के रूप में उजागर हुई और पृथक बुन्देलखण्ड की तस्वीर ही अलग से उभरकर सामने आई। यह सब कुछ महाराजा चंपतराय एवं महाराजा छत्रसाल ने अपने सहयोगी सरदारों के समर्पित एवं अथक सहयोग की निश्वत संभव किया। स्वामी प्राणानाथ के शब्दों में -

छत्ता तेरे राज में, धक-धक धरती होय।
जित-जित घोड़ा मुख करे, तित-तित फत्ता होय।।

महाराजा छत्रसाल ने बुन्देलखण्ड की जो सीमा बनाई एवं तस्वीर खींची वह निम्न पंक्तियों में दृष्टव्य है -

इत जमुना, उत नर्मदा, इत चंबल, उत टोंस।
छत्रसाल से लड़न की, रही न काहू होंस।।

घौरा के सरदारों की शहादतों के कतिपय संस्मरण -

१. कोंकण के पहाड़ की उत्तर दिशा में महाराजा चंपतराय ने युद्ध किया उसमें महाराजा के सहयोगी घौरा के सरदार युद्ध में श्री प्यारे रावत शहीद हुये।

२. दिल्ली वाले बादशाह के आमंत्रण पर महाराजा छत्रसाल के साथ गये सरदार दयाल रावत, लोहागढ़ युद्ध में शहीद हुए।

३. सन् १७२७-२८ में महाराजा छत्रसाल का नवाब बंगस से कांगर के खदा से युद्ध हुआ तब रामन रावत शहीद हुए। बंगस नवाब पराजित होकर भाग गया।

४. रीवा युद्ध में सरदार वृसंगदेव रावत ने रीवा किला के लौह जटित फाटक पर अपने जिस्म को टिकाकर हाथी के मस्तक की टक्कर खाकर अपनी शहादत देकर किले का फाटक ध्वस्त कराकर रीवा विजय कराई। फलस्वरूप रीवा में आज भी बुन्देला दरबाजा कहलाता है।

५. जोधपुर में मुहम्मद शाह से युद्ध हुआ, महाराजा छत्रसाल के पुत्र हिरदेशाह का तब श्री सवाई राव उद्देत सिंह शहीद हुए।

६. महाराजा छत्रसाल की आला चौधरी से गठोरा में युद्ध हुआ तब घौरा के सरदार दलपतरा जू की भुजें पूंजी एवं वे शहीद हुए।

७. मुड़वारेगरर व हटा में युद्ध हुआ तब राव उमराव सिंह शहीद हुए।

८. गठोरा में बैनी हजूरी व नौने अर्जुन सिंह से युद्ध हुआ तब राव पदम सिंह घायल हो गये।

९. रीवा युद्ध में अदम्य साहस एवं शौर्य के रण कौशल के फलस्वरूप घौरा के सरदारों को सवाई राव रनदूल्हा के खिताब से नवाजा गया।

१०. पृथ्वीराज चौहान, नवाब बंगश मुहम्मद खान, आला चौधरी, नौने अर्जुन सिंह आदि से युद्ध में शौर्य प्रदर्शन कर अपराजेय का खिताब हासिल किया।

विक्रम संवत् १८६४ सन् १८०८ में महाराजा किशोर सिंह जू देव पन्ना नरेश ने किसी कारण रुष्ट होकर घौरा दुर्ग पर अपना कब्जा कर यहां के सरदारों से दुर्ग खाली करवाकर उन्हें दुर्ग से निर्वासित कर दिया ताकि उन सरदारों के बछरावनी, बूदौर, चंदौली एवं मदनीवार में रहना पड़ा। इस दुर्ग की बेशकीमती सामग्री तोपें, सिप्पा, बंदूकें, भाले, तलवारें आदि युद्ध सामग्री एवं अन्य महत्वपूर्ण अशवाब यहां से पन्ना ले जाया गया। किंवदन्ती के अनुसार - इस दुर्ग की एक तोप भवानीशंकर जो दैवीय शक्ति संपन्न थी जब पन्ना ले जाई गई तब वह केन नदी में गिरकर डूब गई थी, जब तोप से कहा गया कि हे देवी, घौरा चलो तब वह तैरने लगती थी और जब पन्ना चलने को कहा जाता था, तब वह पुनः डूब जाती थी। शायद वही तोप विगत करीब तीन वर्ष पहले केन नदी से उपलब्ध हुई थी जिसे सिंहगढ़ की तोप बताकर जिलाध्यक्ष छतरपुर द्वारा शायद धुवेला म्यूजियम में अथवा अन्यत्र रखवा दी गई थी।

इस किले के प्रधान सेनापति एवं कारंदा इसी नगर के जैन थे। उनके दर्शन पूजन के लिये एक मानसतंभ जिसमें चारों ओर जैन तीर्थकरों की मूर्तियां उत्कीर्ण थी, आज भी लोगों द्वारा किले में पक्का चबूतरा बनाकर उसमें जड़ दिया गया है और उसे दिवानबाबा के रूप में पूजने लगे हैं।

स्वतंत्रता के पश्चात् विन्ध्यप्रदेश शासन ने इस किला में पुलिस चौकी स्थापित की। धन प्रलोभी असामाजिक तत्वों ने किले की भीतरी दीवारों एवं फर्श का उत्खनन कर बड़ी-बड़ी इमारतें ध्वस्त कर दीं। छत की सहतीरों को कुल्हाड़ी से काटकर छतें गिरा दीं, लोहा एवं लकड़ी के लिये लौहजटित मुख्यद्वार के विशाल फाटक जलाकर राख कर दिये। आज भी दुर्ग में जो कुछ भी जर्जर अथवा ध्वस्त अवस्था में अवशेष रूप में विद्यमान है वह अपने अतीत के वैभव की बुन्देली की गाथा मौन रूप में सुनने को पर्याप्त है।

भारतीय पुरातत्व को इस दिशा में पुरा महत्व की निधि को अपने कब्जे में लेकर इसका संरक्षण एवं मरम्मत करनी चाहिए।

- बस स्टैण्ड, घुवारा, जिला छतरपुर

छतरपुर जिले में शैव धर्म

– डॉ. चन्द्रमौलि शुक्ल

भारतीय संस्कृति में शिव से संबंधित धर्म को शैवधर्म कहा गया है। शिव को अनादि, निर्विकार तथा सर्वज्ञ कहा गया है। शिव की उपासना प्रागैतिहासिक है। सिन्धु सभ्यता के अनेक स्थानों के उत्खनन से बड़ी संख्या में शिवलिंग जैसी आकृतियां मिली हैं। इनकी संभवत् उस युग में पूजा की जाती थी। मिट्टी की मुहर में अंकित श्रृंगधारी मूर्ति को पशुपतिनाथ माना गया है।[१] ऋग्वेद में शिव को रुद्र कहा गया है। रुद्र अपनी कठोरता तथा रुद्रता के लिए ख्यात थे।[२] सूत्रग्रंथों में रुद्र के अनेक नाम मिलते हैं, जिनमें हर, पशुपति, महादेव, शिव, शंकर प्रमुख थे।[३] महाभारत में शिव की महिमा का विस्तृत वर्णन मिलता है। इसमें शिव सर्वोच्च तथा शक्तिशाली देवता के रूप में है।

समाज में शिव की महत्ता लगातार बढ़ती गयी। शिवमूर्ति का अंकन सिक्कों में किया जाने लगा। शक शासक मोगा, पहलव शासक गुण्डफर्न तथा कुषाण शासक विम कैडफिसस के सिक्कों में शिव की आकृतियां अंकित हैं। कुषाण शासक हुविष्क की मुद्राओं पर शिव लिंग का अंकन है।[४]

अधिकांश गुप्त शासक यद्यपि वैष्णव धर्म को मानते हैं। लेकिन उन्होंने धार्मिक सहिष्णुता का परिचय देते हुये अन्य धार्मिक सम्प्रदायों को विकसित होने का अवसर प्रदान किया। इस काल में शैवधर्म का तीव्र गति से उत्थान हुआ। समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति में शिव का उल्लेख हुआ है। इसमें कहा गया है "जिस भांति पशुपति के जटाजूट रूप बंधन से उन्मुक्त होने के कारण गंगा का पाण्डुजल शीघ्र ही त्रिलोक को पुनीत कर देता है।"[५] चन्द्रगुप्त द्वितीय का मंत्री वीरसेन शैव धर्मावलम्बी था। उसने शिव के प्रति भक्ति के कारण उदयगिरि शैवगुफा का निर्माण करवाया था।"[६] यहां इस संबंधी लेख उत्कीर्ण है। कालिदास ने कुमारसंभवम् में शिव महिमा का वर्णन किया है। इन्होंने उज्जैन में शिव मंदिर का भी वर्णन किया है।[७] यह महाकाल मन्दिर था। कुमार गुप्त के मंत्री तथा सेनापति पृथ्वीसेन ने शिवलिंग की मूर्ति निर्मित करवाई थी। यह मूर्ति कमरदण्डा में मिली है।[८]

अर्द्धनारीश्वर के रूप में शिव की लोकप्रियता इस युग में बढ़ी। कालिदास ने कुमारसंभव में इसका वर्णन सुरुचिपूर्ण ढंग से किया है। गुप्तयुग में त्रिमूर्ति पूजा का प्रचलन हुआ। इसमें एक ही मूर्ति में शिव, विष्णु तथा ब्रह्मा को अंकित किया गया है। समन्वय की यह उदार भावना गुप्तयुग की अभूतपूर्व देन है।[९] हरिहर के रूप में शिव तथा विष्णु को एक साथ प्रदर्शित किया गया। हरिहर की अनेक मूर्तियां गुप्त रूप में निर्मित की गयीं। प्रायः मूर्ति के दायें भाग में शिव को तथा बायें भाग में विष्णु को प्रदर्शित किया गया।[१०] वायुपुराण में शिव को देवों में श्रेष्ठ महादेव कहा गया है।[११]

भूमरा के गुप्तकालीन शिव मन्दिर[१२] नचना कुठार के पार्वती मन्दिर[१३] तथा खोह के एकमुखी शिवलिंग[१४], तथा गुप्तों के सामंत हस्तिन के खोह से प्राप्त अभिलेखों से[१५] यह प्रमाणित होता है कि छतरपुर जिला क्षेत्र के समीपवर्ती जिलों में गुप्तकाल में शैव धर्म विकसित था। यद्यपि छतरपुर जिले में शैव धर्म संबंधी गुप्तकालीन पुरातत्व का अभाव है फिर भी इस जिले के समीपस्थ जिलों से प्राप्त पुरातात्विक प्रमाणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि उस काल में इस क्षेत्र में भी शैवधर्म विकसित रहा होगा। वर्धन वंश के प्रारंभिक शासक शैवधर्म के अनुयायी थे। हर्षवर्धन स्वयं प्रारंभ में शैव था।[१६] ह्वेनसांग के अनुसार वाराणसी शैव धर्म का प्रधान केन्द्र था तथा वहां सौ शिव मन्दिर थे।[१७] वर्धनकाल में इस क्षेत्र में शैवधर्म की स्थिति स्पष्ट नहीं है। प्रतिहार शासन काल के शैव धर्म संबंधी अनेक पुरातात्विक प्रमाण इस क्षेत्र में मिलते हैं।

छतरपुर जिला क्षेत्र में शैव धर्म का चंदेल काल में सर्वाधिक विकास हुआ। इस काल में छतरपुर जिला क्षेत्र में बड़ी संख्या में शिव मन्दिरों का निर्माण हुआ, इनमें हिड़ोराबारी का शिव मन्दिर, बृजपुरा का शिव मन्दिर, व्यास बदौरा के शिव मंदिर, बट्टसड़ेरी का शिवयोगिनी मन्दिर, तिंदनी का शिवयोगिनी मन्दिर, घटरा का शिव मन्दिर, भीमकुण्ड मन्दिर समूह का शिव मन्दिर, खजुराहो के प्रमथदेव, कन्दरिया महादेव, विश्वनाथ, मतंगेश्वर, ललगुवां महादेव तथा दूलादेव मन्दिर प्रमुख हैं।

चंदेलकाल में शिव की लिंग प्रतिमाओं की उपासना का प्रचलन अधिक था। अधिकांश मन्दिरों के गर्भगृहों में लिंग प्रतिमायें स्थापित हैं। इस क्षेत्र में सामान्यतः सादे शिवलिंग की मूर्तियों की स्थापना मंदिरों के गर्भगृहों में की गयी। कुछ उदाहरण चतुर्भुज शिवलिंग तथा सहस्त्र शिवलिंग स्थापित किये जाने के मिलते हैं। खजुराहो के ब्रह्मा मन्दिर, विश्वनाथ मन्दिर के एक कोने में निर्मित खूंटरा मन्दिर, भीमकुण्ड मन्दिर समूह में स्थित लघु मन्दिर में चतुर्भुज लिंगों तथा पहाड़गांव, हिड़ोराबारी के चंदेलकालीन मन्दिरों में सहस्त्र शिवलिंग स्थित हैं। सहस्त्र शिवलिंग की एक प्रतिमा अचट में एक छोटी पहाड़ी पर स्थित नव निर्मित मन्दिर में स्थापित है, इसकी जलहरी अभिलिखित है, इसमें संवत् १०४६ स्पष्ट पढ़ा जा सकता है। मातगुँवा के दुर्गादेवी के मन्दिर के बाहर पीपल के पेड़ के नीचे जलहरी में स्थापित शिवलिंग के चारों ओर स्थानक मुद्रा में देवप्रतिमायें निर्मित हैं। ये प्रतिमायें खण्डित हैं, इनमें से एक ओर विष्णु प्रतिमा को पहचाना जा सकता है। मातगुवां के ही दुर्गा देवी के मन्दिर के गर्भगृह में एक अभिलिखत शिलाखण्ड में शिवलिंग की पूजा करते हुए स्त्रियों को प्रदर्शित किया गया है। इस जिले में चंदेल कालीन सामान्य शिवलिंगों की मूर्तियों की संख्या अधिक है। जटयारी, बट्टसड़ेरी, उदयपुरा, बछौन, मह्रावा, सिजई तथा खजुराहो में सामान्य शिवलिंग मूर्तियों को देखा जा सकता है।

छतरपुर जिले में शिव की मानव मूर्तियों में उमा-महेश्वर की

पूजा का प्रचलन अधिक था। उमा-महेश्वर की अनेक मूर्तियां इस जिले के अनेक स्थानों पर स्थित हैं। अचट ग्राम में एक चबूतरे पर दीवार के सहारे निर्मित लघु मन्दिर में उमा-महेश्वर की भव्य प्रतिमा रखी है। मातगुँवा के दुगदिवी के मन्दिर में तथा बछीन के मरहीमाता मन्दिर में भी उमा-महेश्वर की प्रतिमायें विद्यमान हैं। वर्माताल जगारा के मन्दिर के भग्नावशेषों तथा खरोंही के तालाब की बंधान पर भी उमा-महेश्वर की खंडित प्रतिमाओं को देखा जा सकता है। छतरपुर तथा मऊसहानियां से प्राप्त उमा-महेश्वर की प्रतिमाओं को धुबेला संग्रहालय में संग्रहीत किया गया है। खजुराहो संग्रहालय में भी उमा-महेश्वर की एक प्रतिमा संग्रहीत है। खजुराहो, बंजारी, व्यासबदौरा तथा अचट के मन्दिरों की दीवारों अथवा प्रवेश द्वारों में शिव की मूर्तियां विभिन्न मुद्राओं में निर्मित की गई है। खजुराहो के मन्दिरों की भित्तियों में निर्मित शिव प्रतिमाओं में अन्धकान्तक, नटराज तथा त्रिपुरान्तक रूप की प्रतिमायें प्रमुख हैं।[१८] खजुराहो संग्रहालय में शिव के अर्द्धनारीश्वर रूप की मूर्ति ललितासन मुद्रा में संग्रहीत है।

इस क्षेत्र में चंदेल काल में शैवधर्म की लोकप्रियता इससे भी प्रमाणित होती है कि अनेक चंदेल अभिलेखों में शिव के अनेक नाम मिलते हैं। अनेक चंदेल अभिलेखों का प्रारंभ ओं नमः शिवाय से हुआ है।[१९] इन अभिलेखों में कोक्कल का खजुराहो प्रस्तर अभिलेख, धंग का खजुराहो विश्वनाथ अभिलेख, कीर्तिवर्मन का देवगढ़ शिलालेख तथा परमर्दिदेव का कालिंजर शिलालेख प्रमुख है। खजुराहो अभिलेखों में शिव के अनेक नाम मिलते हैं जैसे - रुद्रमहेश्वर, पशुपति, चन्द्रमौलि, वैद्यनाथ, मार्कटेश्वर इत्यादि। अजयगढ़ प्रस्तर अभिलेख में केदार, मदनपुर अभिलेख में चंद्रशेखर तथा देवगढ़ अभिलेख में सदाशिव नाम मिलते हैं।[२०]

बंजारी ग्राम के सूर्य मन्दिर में सभामण्डप के स्तम्भों में शिव से संबंधित कथाओं का सुरुचिपूर्ण ढंग से शिल्पांकन किया गया है। प्रत्येक स्तंभ में एक से अधिक कथाओं का शिल्पांकन देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि मानो शिव की कथाओं की किसी पुस्तक में पढ़ रहे हों। शिव से संबंधित पौराणिक कथाओं का इस तरह का शिल्पांकन इस जिले के अन्य किसी मन्दिर में देखने को नहीं मिलता। मन्दिर के स्तम्भ भग्नावशेषों में पड़े हैं इनके जमीन की तरफ के हिस्सों में भी पौराणिक कथाओं का शिल्पांकन किया गया है।

शिव के वाहन नंदी की प्रतिमायें इस जिले में बड़ी संख्या में मिलती हैं। नन्दी की स्वतंत्र तथा शिव सहित दोनों प्रकार की मूर्तियां मिलती हैं। खजुराहो के विश्वनाथ मन्दिर के सामने नन्दी का स्वतंत्र मन्दिर बनाया गया है। इसमें नन्दी की विशालकाय मूर्ति है। यहां के ललगुवां महादेव मन्दिर के सामने नन्दी प्रतिमा स्थापित है।

संदर्भ -

१. मार्शल ''मोहें जोदड़ो एण्ड द इण्डस सिविलाइजेशन'' भाग पृ. ५२
२. डॉ. जयशंकर मिश्र ''प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास'', पृ. ७४४
३. वही, पृ. ७४७
४. वही पृ. ७४८
५. प्रयाग प्रशस्ति पंक्ति ३१
६. डॉ. राजकुमार शर्मा 'मध्यप्रदेश के पुरातत्व का संदर्भग्रंथ', पृ. १७३, भण्डारकर सूची क्र. १५४१
७. पूर्व मेघदूत ३७
८. डॉ. वासुदेव उपाध्याय ''गुप्त साम्राज्य का इतिहास'' पृ. २२१-२२
९. डॉ. जयशंकर मिश्र 'प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास' पृ. ७५०
१०. वही पृ. ७५१
११. वायुपुराण श्लोक ४१, ''देवेषु महान् देवो महादेव स्ततः स्मृतः।।
१२. डॉ. राजकुमार शर्मा, ''मध्यप्रदेश के पुरातत्व का संदर्भग्रंथ'', पृ. ३३६,
१३. वही
१४. डॉ. वासुदेव उपाध्याय ''गुप्त साम्राज्य का इतिहास'' पृ. २२१
१५. वही
१६. डॉ. जयशंकर मिश्र 'प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास' पृ. २५१
१७. बील, २ पृ. ४४-४५
१८. कन्दरिया महादेव, विश्वनाथ, दूल्हादेव मन्दिर
१९. डॉ. कन्हैया लाल अग्रवाल 'खजुराहो', पृ ३७
२०. वही

– लोकनाथपुरम्, छतरपुर (म.प्र.) ꖴ

होरी पै जिन निकरियो

– दिनेश चन्द्र दुबे

भौजी तनक सम्हर कै रइयो
होरी पै जिन निकरियो।।
बिन ने जौ तय कर लई मननमें
विगार कै रैं तुमै जा होरी पै
पैचाने नई वे मूंढ ढँके से
हम ठाड़े सुन रये ते कुँआ पै
मुइँया नैक न दिखइयो।। भौजी.....

वैसै गलती उनकी भी नई
देखत में लगती तुम एँसियई
हौ भौजी तुम भारी खपसूरत
सांचे ढली ज्यों विधुना मूरत,
हर कोऊ सोचे, पकरियो।। भौजी.....
एक दिना लौट रई तुम कुआँ सें,
नैचे तक गीली ऊपर सें
मैं खुद जनी, तुमाई घाई लेकिन,
देखत रै गई खुद हसरत सें,
सोची जाकी खसम बनाइयो।। भौजी.....

मुइयाँ जैसे चन्दा उतरयाओ,
चलती ज्यों हाथी मस्ता रओ,
देखो हुऔ भईया ने कभऊ तुमैं
उलटी तवई पहुँचाओ रिश्तो ले,
अब घर की लाज बचाइयो। भौजी.....

जे हुरियारे तरकीबें ढूँढ़त
भाँग, नशा, के बहाने घूँमत
होरी के दिना को, कछू कै सकत
मन में बसी बाई है ढूँढ़त
नियत समझ जिन सजियो।। भौजी.....

– ६८, विनय नगर, सेक्टर-१, ग्वालियर (म.प्र.) ꖴ

लरका की बारात

— डॉ. विनोद कुमार खरे

दद्दा-बाई कौ बतकाव :

दद्दा - "लरका की बारात लै जानें, दै मूँछन पै ताव।"

बाई - "घर में नइयाँ चून चनन की, बैठे ती खावे खौं।
तुमें सनक रई है बरात लरका की ले जावे खौं।।
घर में जी कछु हती सी, लरका की पढ़ाई में लग्गव,
अब घर में का है? मड़वा की पंगत दै पावे खौं।।
रूप रखी कैसे बरात की, कैसे चढ़े चढ़ाव?
लल्लू के दद्‌दा तुम मी खौं, पैलें जी समझाव।।"

दद्दा - "पैसा पास नहीं ती का भई! अपनी सान रखें हैं।
गिरवी धर कें घर जमीन खौं, करज अभी लै लैहें।।
लल्लू की बाई तुम मी खौं, कछू नईं समझावो,
नेग मिलेंगे एक लाख के, सब पूरा कर हैं।।
चारों और बजैगी डंका, करी काऊ नें ब्याव।
लरका की बरात लै जैहें, दै मूँछन पैं ताव।।"

बरात की सीन -

धूम धड़ाका, तीन बैंड औ' रंडी नाच दिखाती।
घोड़े पै चढ़ दूला राजा, फुला रये हैं छाती।।
हौवें चाए कुली कबाड़ी, या कोऊ चपरासी,
अफसर और अमीरन घांईं, दिखरए सबइ बराती।।
आतिसबाजी नोटन की जरती होरी वे भाव।
लरका की बरात लै जा रये, दै मूँछन पै ताव।।

मड़वा के नीचें -

मड़वा नीचें लरका अड़ गव, कौर न जौ लौं खैहें।
या ती लौटेगी बरात, या हम स्कूटर लैहें।।
बाप कहै बिटिया की, 'मोरी इज्जत हात तुमाये,
पाँव पडूँ मैं, जीवन भर जो, बन है सो सब दैहें।।'
बाप कहै दूला की, 'ऐसी बातें नइँ बनाव।
लरका को ब्याहन आये हैं, दै मूँछन पै ताव।।'

बिटिया की सोच -

खेत बेंच, गिरवी मकान धर, करजा दद्‌दा लाये।
तब मोरे ब्याव की इत्ती, इन्तजाम कर पाये।।
लगी सोच बे बिटिया, दद्दा की कित्ती मजबूरी,
अब इनकी स्कूटर खौं, कैसें तो पैसा आये।।
कीसें हाल कहूँ घर की, दिल की दुख किये दिखाव।
मूँछन वारे अड़े हुए हैं, दै मूँछन पै ताव।।

लरका बारन खौं समाज नें, दै रक्खी आजादी।
जीसें लरकी बारन की, हो जाती है बरबादी।।
लगी सोचबे बिटिया, जौ यह कैसी परम्परा है,
सरे आम डाका है, जीखौं कैते हैं हम सादी।।
कैसे इनकी माँगें पूरें, कबली सहें दबाव।
डाकू बनकें आये हैं जो, दै मूँछन पै ताव।।

स्कूटर के लानै रुपया, जो घर में आयेगा।
मेरो भइया बैन न कोऊ, आगे पढ़ पायेगा।।
हो सकता है घर में पड़ जायें, खावै के लाले,
यह कलंक टीका मोरे माथे पै, लग जायेगा।।

जौ कलंक औ जौ क्वारीपन, की की करीं चुनाव,
देहों सीख उनें जो आये, दै मूँछन पै ताव।।

बिटिया की ऐलान -

बोल उठी बिटिया तब, अब मैं जादा नाहीं कैहों।
लौटा दो बरात कि मैं यह, रूढ़ि ना हीं सैहों।।
बेसरमी सैं हाथ पसारै, जो औरन के आँगें,
भिखमंगे के संग से अच्छी, क्वारीं हरदम रैहों।।
जो कछु हम तुम खौं दियौ अबै तक, सब हिसाब कर जाव
लरका खौं बेचन आये हों, दै मूँछन पै ताव।।

दूला के बाप की हाल -

मिले न नेंग करज में फँस गये, घर की भई बरबादी।
का कैहै सब लोग, कि बिटिया ने बारात लौटा दी।
बाप कहै दूला की, 'बिटिया गलती भई हमाई'
बिटिया बोली, 'जा टेसू सैं, मैं न करहों सादी।।
सादी एक प्रेम बन्धन, तुमखौं पैसों से चाव।
लरका खौं नीलाम करा दो, दै मूँछन पै ताव।।'

बारात की वापसी -

नई बहू खौं कब देखें, सब खड़ी लगायें आसा।
बैनें लयँ भइयन के लानें, सरबत और बतासा।।
फूली नईं समा रई, सोच रई लल्लू की बाई,
आज हमाई बरसों की, पूरी होगी अभिलासा।।
सब घर भर जैहै दहेज सें, खुशियाँ खूब मनाव।
आज बहू लै आयेंगे वे, दै मूँछन पै ताव।।

आई लौट बरात, खड़े सब मीं लटकायँ बराती।
सब सुनकें लल्लू की बाई, स्वागत बचन सुनाती।।
ये लल्लू के दद्‌दा! जो मैं, पढ़ी लिखी यदि होती,
जब तुम हमें आये ते ब्याहन, ऐसे ही लौटाती।।
घर में तब घुस पै हो, पैलें अपनी मूँछ मुड़ाव।
लरका की बरात लै गये ते, दै मूँछन पै ताव।।

- रीडर, हिन्दी विभाग
बुन्देलखण्ड महाविद्यालय, झांसी

लोक जीवन में लोक कला की परम्परा

— सरोजा शिल्पी, भोपाल

जिस तरह से हर क्षेत्र की अपनी संस्कृति और माटी की गंध अलग-अलग होती है, ठीक उसी प्रकार हर क्षेत्र की लोक चित्रकला की भी अपनी एक अलग पहचान होती है। और यदि हम बुन्देलखण्ड की बात करें, तो ये कहा जा सकता है कि बुन्देली लोक जीवन की कल्पना लोकचित्रों के बिना की ही नहीं जा सकती। यहाँ लोक चित्रकला जीवन में ऐसी रची-बसी है, कि एक दूसरे को अलग किया ही नहीं जा सकता है। सृष्टि व मानव जीवन के आरम्भ से ही लोककला का अभ्युदय हुआ है।

बुन्देलखण्ड में लोककला का इतिहास बहुत ही पुराना एवं बहुत समृद्ध रहा है। आदिम अवस्था के गुफा में ही मानव द्वारा निर्मित चित्र यहां के शैलाश्रयों में मिलते हैं। ई.पू. पांच हजार वर्ष से भी अधिक समयांतर में अंकित चित्र यहां की विंध्य शैल मालाओं में चित्रित हैं। दमोह जिले में फतेहपुर से लेकर सिलापरी तक फैली पर्वतीय गुफाओं में और शिलाओं में इस तरह की चित्र रचनायें उपलब्ध हैं। जो रेखाओं के माध्यम से अंकित किये गये हैं। इनमें मानव आकृतियाँ, धनुष-बाण, सीढ़ी, चौपर, बेल-बूटे, जीव-जन्तु, आखेट के चित्र, नृत्य आदि आकृतियाँ चित्रित की गई है।। साथ ही बांदा के सरहाट, करिया कुण्ड, कर्पटिया में शैल चित्र मिलते हैं। होशंगाबाद की आदमगढ़, गुहासागर के आवचन्द व नरयावली, छतरपुर जिले के किशनगढ़, पन्ना, झांसी, दतिया क्षेत्र में ऐतिहासिक गुहाचित्र बुन्देलखण्ड के लोकचित्र परम्परा का प्रारम्भ माने जाते हैं।

विंध्य-क्षेत्र के घने जंगल, गुफायें और प्राकृतिक सुषमा आदिमानव की शरण स्थली रही है। उसी के प्रमाण गुफायें और शैलचित्र हैं। भाषा के विकास से पूर्व आदि मानव ने अपनी भावनायें पत्थरों पर ही उकेरीं। वर्तमान में लोकचित्रों में उन्हीं प्रतीकों का चित्रण किया जाता है। बुन्देलखण्ड के लोकजीवन पर आदिवासी संस्कृति का प्रभाव रहा तथा ऋषियों की तपोभूमि होने के कारण (महर्षि वेद व्यास, ऋषि वाल्मीकि, वृहस्पति, अंगिरा, परशुराम, गुरु द्रोणाचार्य, मारकण्डेय ऋषि, पाराशर आदि) यहाँ की लोकचित्रकला पर मिला-जुला प्रभाव प्रदर्शित होता है। लोकचित्रकला मानव जीवन पर आच्छादित वह मंगल भाव है जिसका प्रदर्शन चित्रांकन के माध्यम से किया जाता है। वह परिवार व समाज के लिए उत्पन्न भावों का आत्म स्पंदित मूक प्रदर्शन हैं, जो शरीर, आत्मा और ब्रह्म को एकाकार कर देती है। लोकचित्रकला 'सत्यम-शिवम्-सुन्दरम' पर आधारित होती है। जिसमें सामाजिक सत्यता, शिव रूपी कल्याण की भावना, तथा आत्मरूपी सौन्दर्य, विद्यमान रहता है।

लोक चित्रकला के विकास में नारियों की भूमिका सर्वोपरि रही है। उसने तीज-त्यौहारों, वृतों, उपवासों, उत्सवों एवं अनेक प्रकार के मांगलिक पर्वों पर दीवारों, आंगनों, उसरों, दरवाजों, चौखटों आदि से लेकर घर के विभिन्न स्थानों पर अनेक प्रकार की आकृतियों को उकेरा है। इन लोकचित्रों ने ग्राम्य जीवन को ऊर्जा प्रदान की है। इन चित्रों ने जन-मानस में अदम्य उत्साह और विपत्तियों से जूझने का साहस पैदा किया है। सामाजिक उत्थान में इस कला ने अपना योगदान दे कर, लोक को विकास की ओर अग्रसर किया है?

लोक चित्रकला मानव जीवन की आत्मा है। यह धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष देने वाली है। जिस घर में यह कला रहती है। वह घर मांगल्य होता है। विष्णु पुरान में कहा गया है कि "समस्त कलाओं में चित्रकला श्रेष्ठ हैं।" यही चित्रकला लोकजीवन का अंग बनकर मानव की आदिम अवस्था से जुड़ी चली आ रही है। इसके माध्यम से जहाँ उसने अपने मनो-विनोद के भावों को व्यक्त किया है। वहीं उसने मन में उमड़ते-घुमड़ते विचारों को प्रकट कर अपने अनुभवों को उकेरा है। लोक चित्रकला जीवन में नवीनता का संचार करती है। यह पारिवारिक रूप से हस्तांतरित होकर मिली होती है। साथ ही यह अस्थाई होती है। चित्रों में पर्वो के अनुसार भिन्नता पाई जाती है। चित्रों की साज-सज्जा कल्पना योग्यतानुसार की जाती है, तथा चित्र सदैव पवित्र स्थानों पर ही बनाये जाते हैं। लोकचित्र सदैव चौकोर, आयताकार, गोलाकार, व सीमा रेखा के मध्य बनाये जाते हैं। लोकचित्रण श्रद्धा तथा धैर्यपूर्वक करना चाहिये।

बुंदेलखण्ड कृषि प्रधान क्षेत्र होने के कारण यहां कृषि कार्यों में उपयोगी व सहयोगी, जल, पेड़, पशु, सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, बेल, फूल, पक्षी, आदि को ईश्वरीय शक्ति मानकर लोकजीवन में पूज्यनीय माना जाता है। इसीलिए लोकचित्रों में अधिकांशतः इन्हीं चीजों को ही अंकित किया जाता है। बुन्देलखण्ड में लोकचित्रकला बनाने के लिए अधिकतर प्राकृतिक वस्तुओं व रंगों का ही उपयोग किया जाता है। जैसे- आटा, चावल, हल्दी, सिंदूर, रोली, घी, चन्दन, गोवर, मिट्टी, चूना, छुई, चीलवटा, गौरा पत्थर, गेरू, किरकूना ईट, पत्तों का रस, व रंग, महावर, आदि तथा सजाने के लिए सुपारी, खड़े अनाजों में धान, जवा, चावल, तिली, चना के देओल आदि का भी उपयोग किया जाता है। लोकचित्रकला परम्परा व विश्वास का अनोखा संगम है। लोककला को तीन प्रमुख भागों में बांटा जा सकता है।

१. भूमि चित्रण २. भित्ति चित्रण तथा ३. अन्य वस्तुओं पर चित्रण

इसमें पट चित्रण, काष्ठ चित्रण, भाण्ड चित्रण, गृह उपादान चित्रण, पान, पीतल चित्रण, देह चित्रण, तथा खाद्य सामग्री पर चित्रण आदि। देह चित्रण भी बुन्देलखण्ड में करने की प्रथा बड़ी ही प्राचीन है। जिसे बोलचाल की भाषा में गुदना भी कहते हैं।

१. **भूमि चित्रण -**

बुन्देलखण्ड में तीज-त्यौहारों पर विशेष तौर से भूमि-चित्रण किया जाता है, कोई भी कार्य बिना चौक पूरे आरम्भ नहीं किया जाता। चौक बनाने से पहले धरती को गाय के गोबर से लीप कर पवित्र किया जाता है, फिर चौक आटा, हल्दी, सिंदूर, गौरा, पत्थर, व सूखे रंगों से बनाया जाता है। चौक घर के मुख्य द्वार पर, आँगन के बीच में, तुलसी घरा के चारों ओर, पूजा घर में, तथा विवाह मण्डप में विशेष रूप से बनाया जाता है। विवाह का चड़ाये का चौक तो पूरे बुन्देलखण्ड में प्रसिद्ध है। जो आटा, हल्दी और सिंदूर से सजाकर बनाया जाता है। चौक संस्कारों के प्रत्येक चरण पर बनाये जाते हैं और ये चौक कई प्रकार के होते हैं। चर्तुभुजी चौक, छः, सात या अष्टभुजी चौक, नौ खण्डीय चौक, फूलदार चौक, गोलाकार चौक, और चक्राकार चौक आदि। चौक में शुभ चिह्नों का प्रयोग अवश्य होता है। जैसे - कलश, स्वास्तिक, प्रभु चरण, कमल, पुष्प-पत्तियाँ आदि। चौक परम्परा के अनुसार ही बनाये जाते हैं। कुछ विशेष अवसर जैसे नवरात्री में नौरता खेल, दशहरा, दिवाली, दोज, देवठानी ग्यारस, कार्तिक पूजन आदि अवसरों पर तो विशेष रूप से चौक बनाये जाते हैं। चौक आँगन व चारों दिशाओं की पूर्णता का भाव प्रगट करते हैं।

चौक के अलावा कभी-कभी कुछ विशेष पर्वो पर गाय के गोबर से भी भूमि पर आकृतियाँ बना कर भूमि चित्रण किया जाता है। जैसे - दीपावली की परमा, दोज आदि पर कुछ विशेष आकृतियां बनाकर उनकी पूजा करना शुभ माना जाता हैं यहां के लोक गीतों में भी चैकों का वर्णन किया गया है। कुछ इस तरह से-

गइया को गोवर मंगाओ मोरी सजनी,
ढिग धर अंगन लिपाओ महाराज।
मुतियन चौक पुराओ मोरी सजनी,
कंचन कलश धराओ महाराज।।

२. **भित्ति चित्रण -**

भित्ति चित्रण बुन्देलखण्ड की प्रमुख लोकचित्र कला है। यह अधिक स्थाई तथा अधिक प्रयोग में लाई जाती है। भित्ति चित्र विभिन्न रंगों का घोल बनाकर सुई या लकड़ी में रुई लपेटकर उसकी नोक से लिखे जाते हैं चित्र। इन चित्रों को चितोर कहा जाता है। ये चावल, महावर, हल्दी, गेरू, गोवर, छुई, नील, शुद्ध घी, सिंदूर, रोली, रामरज, अनेक पत्तियों के रस, फूलों के रस, (टेसू) आदि को घोलकर प्रयोग में लाये जाते हैं। यह चित्रण अधिक कालत्मक व सघन होता है। इसमें पुतरियाँ, सुरीतियां, श्रृंखलायें, स्वास्तिक, पूर्ण कलश, देवी-देवताओं के चित्र आरते-मोरते, गोल व चौकोर सुरातिया, श्री गणेश, हाथी, घोड़ा, मोर, हिरण, शेर, मछली, ध्वज, चरण, फूल, बेल, पत्ती, पेड़, पक्षी, तुलसी घरा, सूरज, चन्दा, सुअटा, धान से भरीं डारियां, वाद्ययन्त्र, पांच दीपक जो क्रमशः बुद्धि, ज्ञान, स्वास्थ्य, सुख तथा समृद्धि के प्रतीक माने जाते हैं। बिन्दु बनाना, बिन्दु से सृष्टि की रचना मानी जाती है। विश्व की आकृति का आरम्भ भी बिन्दु से ही होता है। इसी तरह श्रीयंत्र चित्रण जो सब ओर से समान्तर संख्या का योग देता है। जो विसम को सम में परिवर्तित करने की स्थिति को दर्शाता है। गाय, गोवर्धन, हाथी, समृद्धि के प्रतीक हैं। तो सर्प विपत्ति नाशक व धन के स्वामी के रूप में चित्रित किये जाते हैं। तो वहीं ध्वज चित्रण अजेय होने का भाव प्रकट करती है। करवा चौथ का चौक भी सौभाग्यसूचक माना जाता है। विवाह, रक्षाबंधन, दिवाली, हरछठ, नाग पंचमी, दुर्गा नौमी पर भी विशेष रूप से भित्ति चित्रण किया जाता है। बुन्देलखण्ड की भित्ति चित्रण की परम्परा बहुत पुरानी व समृद्ध है। इसके बारे में तुलसीदास जी ने भी लिखा है-

तिरिया अपने कारने, लिख पूजत है भींत।
सुभल होय मनकामना, तुलसी प्रेम प्रतीत।।

३. **अन्य वस्तुओं पर चित्रण -** बुन्देलखण्ड में भूमि व भित्ति चित्रण के अतिरिक्त लकड़ी, बर्तन, गृह उपादान चित्रण (सूप, बांस, डलियाँ, टिपारे) पर्ण चित्रण, पट चित्रण, देह चित्रण आदि भी प्रचलित हैं।

१. काष्ठ चित्रण - काष्ठ चित्रण लकड़ी के ऊपर की जाने वाली लोक कला है। इसमें विवाह मंडप का 'खाम', चौखटें, दरबाजे, पालकी, मियाना के महराव, पलका तथा देवी-दवताओं की मूर्ति आदि शामिल की जा सकती हैं।

२. भांड़े (बर्तन) चित्रण - बर्तनों पर चित्रण की परम्परा भी बहुत पुरानी है। इसमें कांसे, पीतल व मिट्टी के बर्तनों पर फूल, वेल-बूटे, सुरातियाँ, गणेश, पुतरियाँ, तोता, मोर, घुड़ला, पवन कुमार आदि विशेष रूप से बनाये जाते हैं।

३. गृह उपादान चित्रण - इन चित्रों के अन्तर्गत घरेलू उपकरणों पर किये जाने वाले चित्र शामिल कर सकते हैं। जैसे बांस से बने सामान डलियां, सूपा, दौरिया, छबला, टिपरा, टिपरिया, इन पर बेलबूटे, घोड़ा, तोता, मोर, हाथी, मछली, फूल-पौधे आदि अनेक रंगों, महावर से बनाये व सजाये जाते हैं।

४. पर्ण चित्रण - बुन्देलखण्ड में पर्ण चित्रण की भी प्रथा है। यहां पान के हरे पत्ते व पीपल के पत्ते पर भी चित्रांकन किया जाता है। पीपल को पवित्रता व पारिवारिक प्रेम का प्रतीक माना जाता है, तो पान को वंश वेल वृद्धि का प्रतीक माना जाता है। ऋषि पंचमी, हलछट, दशारानी की पूजा में पान व पीपल के पत्ते पर चन्दन से आकृतियाँ अंकित करके पूजा के बाद पानी में विसर्जित कर दिया जाता है।

५. पट-चित्रण - यहाँ पट चित्रण भी होता है। कपड़े, चर्म, कागज पत्र पर किये गये चित्रांकन इसी श्रेणी में आते हैं। कपड़े पर अंकित चित्रों में यज्ञ की नवमातृकायें आदि स्थापित होती हैं। इन्हें शुद्ध घी से बनाया जाता है। यह प्राचीनतम पट चित्रांकन है। जन्माष्टमी की पूजा में उपयोग होने वाले कृष्ण लीला के चित्र भी पहले कपड़े पर ही बनाये जाते थे। अब आधुनिक युग में ये कागज पर बनाये जाने लगे हैं। कार्तिक पूजा में स्त्रियां कपड़े पर ही बालू से तुलसी व राधाकृष्ण की लीलायें बनाती हैं। दीपावली पर भी कपड़े पर गेरु से त्रिकोणी तथा चतुर्भुजी चित्र बनाये जाते हैं। कागज पर चित्रांकन पांडुलिपियों में प्राप्त होता है। इनमें पुस्तक की विषय वस्तु से संबंधित चित्रांकन किया जाता है।

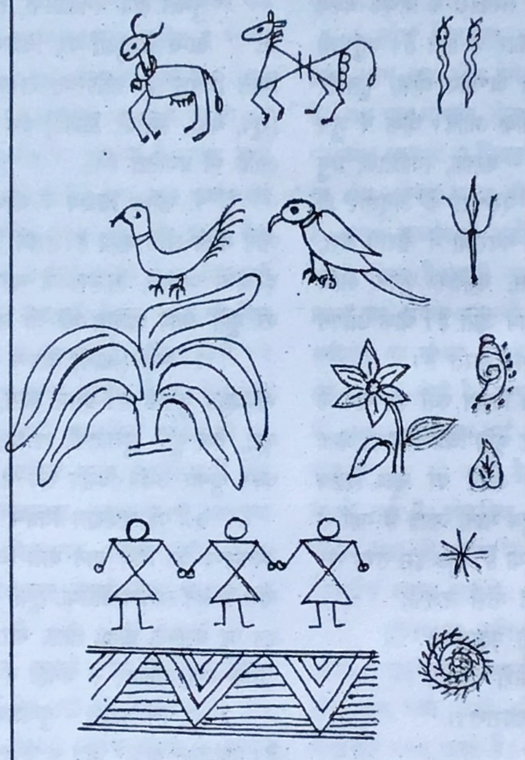
पट चित्रण का एक बढ़िया नमूना विवाह के अवसर पर भी देखने को मिलता है। जब लड़की को शादी के बाद पहली बार लेने जाते हैं, तो मटकी के साथ एक साड़ी जाती है। जिसे हल्दी से रंग कर महावर व सिंदूर से उसमें तरह-तरह की आकृतियां बना कर भेजी जाती हैं। कवि ईसुरी ने भी लिखा है -

जी में लिखीं पपीरा मोरें, ऐसी अंगिया तोरें।
मुतके लाल मुनइयां लिपटे, चिरवा चारू चकोरें।।
पीरी हरी चिरइयाँ चिपकी, सुआ मुरग मुख मोरें।

एक लोकगीत में भी पट चित्रण का वर्णन कुछ इस तरह से किया गया है -

न मानो चूनर धर राखो, लिखे पपीरा दोई छोर रे।

बुन्देलखण्ड में चर्म चित्रांकन की परम्परा भी काफी प्राचीन है। चर्म पर चित्रण दो प्रकार से किया जाता है। एक रंगों से चित्रांकन तथा दूसरा जरी धागे से। इसमें चर्म के पर्स, वैग, जूते, मियान, आदि इसी श्रेणी में आते हैं।


भित्तिचित्र के नमूने

६. देह चित्रण - देह चित्रण बुन्देलखण्ड में अति प्राचीन है। इसे गुदना या गोदना आदि कहा जाता है। गुदना के बारे में ऐसी मान्यता है कि ये मृत्यु होने पर साथ जाते हैं। ये गुदना सौभाग्य का भी प्रतीक माना जाता है। इन्हें स्वास्थ का भी प्रतीक माना जाता है। ये रमतिला में काजल फैंट कर गाढ़ी स्याही से गोदे जाते हैं। गुदना गाल ठोड़ी पर बिन्दू, बांह पर सूरज, चन्दा, फूल, पपीरा, मोरें, विरछा, टिपका, पोहचा पर पुतरियां, फूल, नाम, पैरों में घोड़ा, फूल, विछिया, पुतरियां आदि गुदवाने का चलन है। गुदना की सुन्दरता को कवि ईसुरी ने इस प्रकार अपनी चौकड़िया में लिखा है -

गुदना गुदवाये तन गोरे, खुले दरस भये तोरे।
दाढ़ी पै बूंदा है सुन्दर, मुख चन्दा के दोरे।
कौंचन-कौंचन गुदे पपीरा, लिखीं बांह पै मोरें।
ईसुर पांव पछेला देखे, पुतरीं द्रो कर जोरें।

ईसुरी की इन पंक्तियों से ही देह चित्रण की लोकप्रियता का पता चलता है।

महावर तथा मेंहदी भी देह चित्रण के अन्तर्गत ही लिये जाते हैं। ये भी मंगलकारी तथा सौभाग्य के प्रतीक हैं। मेंहदी व महावर का विवाह तथा सावन माह में रक्षाबंधन पर विशेष महत्व है। ईसुरी ने महावर का भी वर्णन अपनी एक फाग में कुछ इस तरह से किया है -

पिया कैसें डुलाऊँ रस के बिजना, नरम कलाई गरये ककना।
सारी के भार कमर मोरी दूखे, माहुर भार उठें पग ना।।

मेंहदी के बारे में कुछ इस तरह का गीत प्रचलित है -

कानां सैं माँदी आई, हो सौदागर लाल।
काना धरी बिकाय, माँदी रचनू मोरे लाल।।

लोकजीवन में कला दूध में मिश्री की तरह घुली हुई है और तो और बुंदेलखण्ड में तो खाद्य पदार्थों पर भी चित्रांकन की प्रथा प्राचीनकाल से चली आ रही है। यहां खाने के पकवानों पर भी तरह-तरह की साज-सज्जा करने का प्रचलन है। पान, फूल, गुना, गूजा, गुजिया, सता, खोवा के पेड़ा व गुजिया पर भी हाथ से सुन्दर-सुन्दर आकार देकर सजावट की जाती है जो देखते ही बनती है।

बुन्देलखण्ड में लोकचित्रकला की परम्परा पूर्णतः समृद्ध है। ये लोकचित्र जीवन के सुखद क्षणों के साक्षी होते हैं। ये वातावरण को रोचकता तथा मौलिकता प्रदान करते हैं। चित्रण से परिवार तथा सामाजिक संबंधों में उष्णता बनी रहती है। लोकचित्रण परम्परा का स्थायित्व एवं ईश्वरी सान्निध्य का सरल मार्ग है। चित्रांकन से आत्म संतुष्टि एवं चित्रपूजा से आत्मबल मिलता है। जो समलता का प्रथम सोपान है। ईश्वर के अस्तित्व को जड़-चेतन में स्वीकार करने पर ही लोक चित्रों की रचना संभव है। ये परम्परा को पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित करते हैं। लोक चित्रांकन समाज में समरूपता से प्रभावी है। धन्नी हो या निर्धन लोकचित्र सभी के घरों की भूमि-भित्ति को एक सा सजाते संवारते हैं।

लोक चित्रकला एक अथाह सागर है। जरूरत है इस परम्परा को संवारने और सहेजने की। जो आधुनिकता की दौड़ में शनैः-शनैः समाप्त होती जा रही है। यदि हम सच्चे मन से इसे सहेजने की कोशिश करेंगे तो निश्चित ही हम अपनी इस विलुप्त होती विरासत को बचा पाने में सफल होंगे, इसमें कोई संदेह नहीं है। अन्त में यही कहेंगे कि -

कला बिना सूनो लगै, जौ जीवन कौ रंग।
ज्यौं बसंत सूनो लगै, बिन टेसू के संग।।

- श्री हरिहर निकुंज, एफ-७, गीत बंगले फेस-२,
दुर्गेश बिहार, जे.के. रोड, भोपाल

बुन्देली लोककाव्य में प्रकृति और पर्यावरण

— जगदीश रावत

लोककवियों ने पर्यावरणीय चेतना को समर्पित रचनाओं का सृजन किया है जिनकी वर्तमान में ईसुरी से परंपरा का सूत्रपात होता है। वास्तव में अन्य संकट के समय महुआ के सुखाये गये फूल दीनहीनों को बड़ा सहारा देते हैं। इनके लटा, मुरका, और डुबरी बनाकर खाये जाते हैं। हरषष्ठी के दिन तो इन्हीं से पूजा की जाती है तथा प्रसाद के रूप में प्रेम पूर्वक खाते हैं। महुए के फूल को गुली कहते हैं और उसके तेल को गुलिया तेल, इसका भी विविध प्रकार से उपयोग होता है। अतः ऐसे वृक्षों की रक्षा और वृद्धि तो हमारा राष्ट्रीय प्रश्न है। आज का लोक कवि भी वृक्षों को काटना उचित नहीं मानता। राष्ट्र के लिए महुआ जैसे फलदार वृक्षों का कितना महत्व है, इसे हमारा लोककवि भली प्रकार समझता है। एक महुये के वृक्ष को काटते देखकर उसे बड़ा दुख होता है क्योंकि बुन्देलखण्ड में महुआ गरीबों का वृक्ष माना जाता है। अतः जब महुआ कटता है तो लोककवि ईसुरी की वाणी से यह चौकड़िया फूट पड़ती है -

इन पै लगे कुलरियां घालन, महुआ मानस पालन,
इनें काटवी न चइयत तो, काट जेत जे कालन।
ऐसे रूख भूख के लाने, लगवा दए नंद लालन।
जो कर देत नई सी ईसुर, मरी मराई खालन।

प्रकृति परक वर्णन में पं. गंगाधर व्यास की कोई सानी नहीं है। वे प्रकृति का बहुत ही मार्मिक चित्रण अपनी तूलिका से मनोहारी ढंग से करते हैं। भौंरे के माध्यम से एक रूपक प्रस्तुत है-

भौंरा काहे न चम्पै चाहे, ई की कारन का है,
संसारी में सब कोउ जानैं, सुघर फूल चम्पा है
कै कछु जहर भरो चम्पा में, कै कछु रार बढ़ा है,
तजत पराग काये से मधुकर, माने कौन वृथा है।
दशानंद के गुरु गंगाधर सांची भेद बता है।

श्रृंगार में भाव प्रवणता, सूक्ष्म दृष्टि और शब्द चयन का कलाकौशल कवि में है। नायिका के केश वर्णन में नियोजित उपमायें उनकी मौलिकता, दूरवर्ती सूझ-बूझ तथा जीवन परिवेश के उदाहरण हैं-

मानो चंद्रग्रहा के ऊपर, कागा पंख पसारें,
तिरबेनी बेनी खों देखें, रह गई सिमट किनारें।

ऋतुवर्णन श्रृंगार का एक विशिष्ट अंग है, जहां संयोग-वियोग दोनों स्थितियों के चित्रण के प्रचुर अवसर हर कविमन को उसकी दीर्घकालिक काव्ययात्रा के पड़ावों में मिलते हैं। नायक-नायिका के भाव प्रसंगों के निमित्त ऋतुपरक वर्णन अन्य लेखनियों से ख्यालीराम ने सर्वथा हट कर किया है -

लसगर ऋतुराजा के छाये, मदन महीपत आये।
दीरघ दृगन वीर वर बांके, ऊधम अधिक मचाये।
सुमन कली पे कली लहर दे, अलिंगन भाव जगाये,
कवि 'ख्याली' प्रीतम प्यारे ने, अंत बसंत मनाये।

फड़ काव्य के फड़ में नायिका भेद का अपना विशेष महत्व एवं स्थान है। इस विषय में बुन्देली में फड़ साहित्य की समृद्ध परम्परा रही है। श्रृंगार के दोनों पक्षों, संयोग और वियोग का हृदयग्राही, सरल, सरस, और सहज चित्रण लोक काव्य में यत्र-तत्र-सर्वत्र बिखरा पड़ा है, लोक कवि 'बोधन' की एक भावाभिव्यक्ति-

करकें चंद्रमुखी सिंगारन, गई ब्रजराज निहारन।
चलत कुंज वन पुंज सुगंधन, ज्यों रितुराज बहारन।
सारी सेत हीर-हारन गजमुक्ता झरत हजारन।
'बोधन' बता नायिका कौनी, करी नाम उच्चारन।

कहीं अगर पेड़ कटे तो लगता है जैसे हमारे पार्थिव शरीर का कोई अंग कट गया हो। वृक्ष की टहनी अगर टूटती है तो ऐसा प्रतीति होता है, जैसे किसी हृदयहीन क्रूर मनुष्य ने हमारी उंगलियां काट ली हों। जिसने हमारी जिंदगी भर सेवा की उस वृक्ष के साथ हम कैसा सिला देते हैं यही दर्द डॉ. गंगाप्रसाद गुप्त 'बरसैंया' की कलम से निसृत हुआ है -

लख सौ वर्षी पेड़ को, रोउत धारों धार।
पूछा काये रो रये, हमें बताओ यार।।
हमें बताओ यार, कहा तुमें शरम न आई।
मानुष होंके हिंसक बन, कर रये मनुषाई।।
जीने जनम भर सेवा की, सब कछु बांटो।
बई पेड़ खां बेरहमी सें, तुमने काटो।।

गांवों शहरों में आवासीय पर्यावरण ने अपने पांव पसार लिये हैं। आवासीय पर्यावरण भौतिकता के परिणामस्वरूप उत्पन्न हुआ राक्षस है, जो ठीक हमारे घरों में घुस गया है। बाह्य पर्यावरण प्रदूषण के पहले हमें हमारे निवास स्थलों के इस दैत्य को समूल नष्ट करना होगा। शंकर दयाल खरे 'शंकर' की यही चिंता इन लोक पंक्तियों में मुखरित हुई है -

आज नरक सें बढ़कें हो गओ, ई घरकौ जौ नरदा,
कीरा कुलबुलांय अनगिनते, ऐंन ऐड़ में किलकैं।
चींटा-चिंटियां, सड़ी, छिपकुलीं, ढेरन मांछी भिनकें,
जांगन-तांगन खुदो परो जौ, अंत कऊ नई परदा।

प्रकृति हमसे दिनों-दिन रूठ रही है, यहां तक की धूप भी नाराज है। लगता है गरमी सूर्य नहीं दे पा रहा है, इसलिए ऐसा घटित हो रहा है। जिन वृक्षों का हमें अवलंबन था वह भी खड़े-खड़े यह दारुण दृश्य देख रहे हैं। ऐसे में बुन्देली साहित्य और संस्कृति के संरक्षक और पुरोधा पुरुष और कवि डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त को कुछ सूझ नहीं रहा है, लगता है पूरी प्रकृति ही मानो प्रतिकूल हो गई हो -

ऐसी ऐंठी धूप जिठानी, करी खूब मनमानी,
सिगड़ी-से बैठी रइ कोंने, छाया की देवरानी।
देवर बिरछा ठांड़े देखें, ओंठन बात समानी,

गरम जेठ रूठे से रै गये, गिराहार पी पानी।
कात 'प्रसाद' मनई-मन छिद रई, बूदें भीत पिरानी।

जैसे पानी के बिना हमारी छाती दरकने लगती है। जैसे जल बिन मछली बेचैन होती है, वैसे ही यह धरती पानी के बगैर प्यासी रह जाती है। वह अपने गर्भ से नव जीवन, नव पौधों के अंकुर पैदा नहीं कर पाती, क्योंकि पानी का एक नाम जीवन भी है। शायद वैदिक ऋषियों ने यह नाम दर्शिता को देखते हुए ही दिया था। जीवन जल है तो जीवन जिंदगी है। जीवन है तो यह जीवंत जगत है। जल ही सब कुछ है। विंध्यकोकिल भैयालाल व्यास को कदाचित यही चिंता व्याप रही है -

सूखे से कुअला-तरी नैंक पानी, सो फूटत रोज़ गगरिया रे,
सूख गये सब रूख लपट सें, छाती दरक रई भूम की।
जेठ के जोर अषाढ़ समेटे, मैटे घटा घिर सावन की।

किसी स्त्री का पति तंबाकू पीता है। वह इस बात की चर्चा अपनी सखियों से कर रही है। उसकी सखी ऐसे लोगों से बड़ी घृणा करती है, वह उनकी चर्चा भी नहीं सुनना चाहती। उसका कथन है कि जिनके पति तम्बाखू या बीड़ी सिगरेट पीते हैं, उन्हें जीवन में सुख नहीं है। वे पलंग पर लेटते ही खांसने-खंखारने लगते हैं और उनके मुख से रुई धुनकने जैसी आवाज निकलने लगती है, वे बलगम उगलते हैं वायु प्रदूषण फैलता है, मुख और फेंफड़ों का कैंसर ऐसे धूम्रपान करने वाले व्यक्ति को हो सकता है, सगुन कवि कहते हैं-

जिनके पियत तमाखू सैंया, उन तिरियन सुख नैंया।
खाँसत खसम रुई-सी धनुकत, परतन पलका मइयां।।
टन्ना कें टैया से डारें, मांझ मझौटे मैंया।
'सगुन' कहें ऐसिन की चरचा, इते करौ न गुइयां।

मानो यौवन रूपी वातायन प्रदूषित हो गया है। युवावय से सम्बन्धित वातावरण जब अपने पूर्ण यौवन पर होता है, तब उसके सुख की चाहत एक नायिका करती है। वह अपने नायक से याचना करती है कि तुम भौरा बन कर कली का रस लेलो, यह नादानी न करो अन्यथा मेरा यौवन रूपी फूल मुरझा जायेगा। कवि किशोरी लाल सोनी 'विनोदी' का मन भी भ्रमर के रूप में भ्रमित होकर किसी कली का पराग कण लेना चाहते हैं -

मैं तो हो गई पूर्ण सयानी, उन्नमें है नादानी।
फूलो फूल मुरझावे हो गओ, गंध न लै कै जानी।।
गई सूख जब खेती जरसें, तब का बरसो पानी।
दिल तोड़ों न आज 'विनोदी', ई में कछू ना हानी।।

प्रकृति का रंग सबसे न्यारा होता है। हरीतिमा से भरी हुई प्रकृति किसे प्रिय नहीं लगती, जहां खेतों में सुनहरी सरसों फूल रही हों, मानो यह धरती को आभूषण पहनाने का उपक्रम करती रही हो। फूलों की सुगंध का प्रकृतिनटी इत्र लगाये हो। ऐसी कुदरत का क्या कहना। डॉ. कुँजीलाल पटेल 'मनोहर' का मन ग्रामीण अंचल के खेत-खलिहानों में कुछ ऐसा ही नजारा देखता है-

डारन आई प्रेम की डोरी, रसबे छैला भोरी।।
हरे पात रंग चूनर पैरें, ललओ पात रंग जोरी।
सरसों फूल सुनहरे गहने, अरसी सी तन गोरी।।
सुमन वास की अतर लगायें, ओसन सपरी-खोरी।
कुहुक 'मनोहर' कोयलिया-सी, फैली अली बटोरी।।

पावस का मौसम है, पानी की झड़ी लगी है, यह जल मानो सजीवन बूटी हो जिससे वृक्षों में नई कोपलें फूट रही हैं। मखमल जैसी दूब और इसमें दीप्तमान होती हुई वीर बहूटियाँ जड़ और चेतन को खुशियां प्रदान कर रही हैं। ऐसे में प्रमोद कवि का मन गा उठता है -

बदरा ल्याये सजीवन बूटी, नई-नई कोंपल फूटी।
हरी-हरी दूब बिछी मखमल-सी, बिखरी वीर बहूटी।।
ज्यों किलोल में प्रकृति नटी की, मुतियन माला टूटी।
जड़ चेतन ने चहूं दिशन में, सारी खुशियां लूटी।।

पुरवैया हवा में पावस के झोंके, गर्मी के मौसम का लुप्तप्राय होना, खेतों की मोतियों से मांग भरना, पहाड़ों का ढकना यानि नव यौवना ने चुनरिया ओढ़ ली हो, जलधर का पानी बरसाना, यानि हीरा-मोती प्रदान करना आदि उपमाओं, उपमानों, प्रतीकों, और बिंबों से लोकरंजन की न्यारी झलक राजा संतोष सिंह बुन्देला प्रकृति के झरोखों से झांकते हुए अवलोकित करते हैं-

चली हवा पुरवैया जम कैं, बादर बरसे लाल।
कऊं-कऊं भर गये खेत पुखरियां, कऊँ-कऊँ भर गये ताल।
धरती पै लूपा हो आई, मानो बिछे दुलीचा।
सींच दओ ऊपर वारे ने, इतनौ बड़ौ बगीचा।।
बादर की वाहन में बिजली झूला झूल रही।
दुधी सगौनी और तुरइयां, गेंवड़ें फूल रहीं।।
फूल रही कचनार मामुलिया, खेलन भर अनुराग चली।

बुन्देलखण्ड की धरती सभी प्रकार के दुख और कष्टों को दूर करती है। यहां के महुवा, मेवा के समान हैं और बेरों का कलेवा प्रसिद्ध है। प्रकृति इस धरती पर मेहरबान है। इतना ही नहीं यह भूमि हीरा जैसी रत्नप्रसूता भी है। यही कुछ गोपाल दास रूसिया अपनी चौकड़िया में बयान करते हैं -

भैया जा बुन्देली धरती, दुक्ख सबई के हरती।
महुआ मेवा, बेर कलेवा, करा-करा मन भरती।।
औंरा, आम, अचार, मकुइयां, गांवन-गांवन फरतीं।
कहत 'गुपाल' यहां की माटी, हीरा पैदा करतीं।।

बुन्देलखण्ड नदियों के बारे में प्रसिद्ध है। यहां केन, बेतवा, धसान और चंबल जैसी नदियां कल-कल निनाद करती अहर्निश प्रवाहित होती हैं। यह अपने जल से यहां के जनमानस को जीवन प्रदान करती हैं। जल ही जीवन है और ये नदियां बुन्देलखण्ड की जीवन रेखा है। डॉ. अवध किशोर जड़िया इन नदियों से प्रवाहित हैं तभी तो इनके कल-कल स्वर में स्वर मिलाते हुए कूक उठते हैं -

केन की देन है नेक अनेक, जवाहर बाहर डारतीं हैं।
बेतवा राघव राम लला जू के, पावन पांव पखारतीं हैं।।
धान की शान धसान में है, अरु चंबल संबल पारती हैं।
खण्ड बुंदेल के जीवन में, जीवन जीव उवारतीं हैं।।

- कमला कॉलोनी, छतरपुर (म.प्र.)

टीकमगढ़ जिले में पर्यटन विकास की सम्भावनाएँ

– डॉ. एन.डी. सोनी

भारत के वक्षस्थल पर स्थित बुन्देलखण्ड जहां कठोर वक्ष वाले सूरमाओं के लिए पसिद्ध रहा है, वहीं हृदय के समान कोमल भावनाओं और कलाओं का भी केन्द्र रहा है। देश के इस भूभाग ने साहित्य, संगीत, कला और स्थापत्य के क्षेत्र में न केवल भारत में बल्कि संसार में अपना नाम रोशन किया है। बुन्देलखण्ड को जग-जाहर करने वाले वे साहित्यकार, संगीतज्ञ और शिल्पी तो काल के गाल में समा गये किन्तु उनकी लेखनी, उनके राग और उनके शिल्प आज भी सारी दुनियाँ को अपनी ओर आकर्षित कर रहे हैं। स्थापत्य की दृष्टि से खजुराहो और साँची तो दुनियाँ की नजर में चढ़ गये क्योंकि उन्हें पर्यटन केन्द्रों के रूप में विकसित करके प्रचारित किया गया, लेकिन बुन्देलखण्ड में ऐसे बहुत से स्थल हैं जो स्थापत्य और शिल्प कला की दृष्टि से बेजोड़ नमूने हैं, जिनकी ओर शासन और पुरातत्व विभाग समुचित ध्यान नहीं दे रहा है।

बुन्देलखण्ड क्षेत्र में मध्य प्रदेश का एक जिला टीकमगढ़ (जो पुरानी ओरछा रियासत का अंग है) भी ऐसी ही उपेक्षा का शिकार है। यह जिला वेतवा और धसान नदियों के बीच फैला हुआ है जो स्थापत्य और शिल्पकला की पुरातात्विक सामग्री की दृष्टि से बहुत धनी है। यदि जिले के जागरूक नागरिक, नेता और शासन इस ओर ध्यान दें तो इस छोटे से जिले में अनेक पर्यटन केन्द्रों का विकास किया जा सकता है। यदि पुरातत्व विभाग का ध्यान इस ओर आकर्षित किया जा सके तो टीकमगढ़ जिला विश्व के पर्यटन मानचित्र पर महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर सकता है। वर्तमान में जिले में केवल एक ही ऐसा स्थल ओरछा है जहां देशी-विदेशी पर्यटक अने लगे हैं। हम यहाँ जिले के कुछ महत्वपूर्ण ऐसे ही स्थलों की चर्चा करेंगे जिन्हें पर्यटन केन्द्रों के रूप में विकसित किया जा सकता ह। पर्यटकों की सुविधा की दृष्टि से हम इन स्थलों का एक श्रृंखलाबद्ध ढंग से अवलोकन करेंगे।

जिले में पर्यटकों के प्रवेश की दृष्टि से उत्तर प्रदेश का झांसी नगर सेन्ट्रल रेलवे का महत्वपूर्ण स्टेशन है। झाँसी से ओरछा राज्य की पुरानी राजधानी ओरछा नगर मात्र १५ किलोमीटर दूर है, जहाँ सड़क मार्ग से बड़ी आसानी से पहुँचा जा सकता है। टीकमगढ़ जिले के पर्यटन की शुरुआत इसी ऐतिहासिक और ध ार्मिक नगरी से करके क्रमानुसार आगे बढ़ सकते हैं।

१. ओरछा – झांसी से ओरछा आते समय आजादपुरा गाँव मिलता है, जहाँ देश की आजादी के लिए अपनी आहूति देने वाले महान सेनानी चन्द्रशेखर आजाद की भव्य प्रतिमा के दर्शन आजाद स्मारक में सड़क से ही होने लगते हैं। यह दर्शनीय स्मारक उनकी कर्मस्थली सातार नदी के तट पर स्थित है। यहाँ से आगे चलने पर तीन विशाल दरबाजे पार करते हुए जब हम ओरछा पहुँचते हैं तो दूर से ही एक विशाल और भव्य मंदिर दिखलाई पड़ता है जो भगवान रामराजा के लिए बनवाया गया था, जिसमें वे नहीं विराजे और वहाँ चतुर्भुज विष्णु जी की दूसरी मूर्ति प्रतिष्ठापित की गई थी। मंदिर की ऊँचाई, विशालता और शिल्प देखकर आश्चर्य होता है। इसी मंदिर के पास राम-राजा का वह मंदिर है जिसके लिए ओरछा विख्यात है। रानी कुंवरि गनेश द्वारा अयोध्या से लाई गई भगवान रामराजा की श्यामल भव्य मूर्ति अपने परिवार सहित यहां विराजमान है। इस मंदिर परिसर में रामराजा के अलावा भगवान राधा-कृष्ण, शिवजी, हनुमानजी आदि देवताओं के मंदिर तथा अनेक मूर्तियों का संग्रह है। सूर्य भगवान की दो प्रतिमाएँ विशेष रूप से दर्शनीय हैं।

ओरछा नगर व उसके आस-पास पर्यटकों के लिए जो दर्शनीय स्थल हैं उनमें लक्ष्मी मंदिर व उसकी चित्रकला, बजरिया व छार दीवारी के हनुमान मंदिर, विशाल किला व संग्रहालय, बेतवा नदी और उसके तट पर स्थित राजाओं के स्मारक हैं जो हर किसी का मन मोहने में सक्षम हैं। देशी और विदेशी पर्यटकों के लिए यहाँ जो सबसे महत्वपूर्ण बात है वह है यहाँ एक ही स्थल या भवन में बुन्देला शैली, मुगल शैली, राजस्थानी शैली आदि अनेक प्रकार के स्थापत्य के दर्शन जो अन्य ऐतिहासिक स्थलों पर देखने को नहीं मिलता। ओरछा के प्राचीन खण्डहर और नवीन होटल भी दर्शनीय हैं।

२. गढ़ कुढ़ार – ओरछा दर्शन पश्चात् सड़क मार्ग से सीध े कुढ़ार पहुँचा जा सकता है जहाँ का चन्देलकालीन किला या गढ़ अपने आप में अनूठा है। यह विशाल गढ़ जितना जमीन के ऊपर है उतना ही जमीन के नीचे। गढ़ एक पहाड़ी पर बना होने से सुरक्षा की दृष्टि से महत्वपूर्ण है जो काफी दूर से तो दिखता है मगर नजदीक पहुँचने पर आँखों से ओझल हो जाता है। इसे पुरातत्व विभाग द्वारा संरक्षित किया गया है। यहाँ किले के अलावा गिद्धवाहिनी देवी का मंदिर और तालाब भी प्राचीन और दर्शनीय हैं। कुढ़ार, खंगारों और बुन्देलों के राज्य में राजधानी भी रहा है।

३. लिधौरा एवं दिगौड़ा – कुढ़ार से टीकमगढ़ की ओर आने में रास्ते में लिधौरा और दिगौड़ा नामक दोनों ग्रामों में किले हैं, जिनमें वर्तमान में उच्चतर माध्यमिक विद्यालय संचालित होने से वे सुरक्षित हैं।

४. मड़खेरा – दिगौड़ा से मोहनगढ़ मार्ग पर मड़खेरा नामक गाँव है जहाँ चंदेलकालीन शिल्प का पत्थरों से निर्मित सूर्य मंदिर है। यह मंदिर देश के गिने-चुने सूर्य मंदिरों में से एक है जिसकी भव्यता और कला लोगों का मन मोह लेती है। यहाँ नृत्य गणेश और एकमुखी शिव के भी दर्शन होते हैं। यह मंदिर भी पुरातत्व विभाग के अधीन है।

५. मोहनगढ़ – ओरछा के बाद मोहनगढ़, टीकमगढ़ जिले का दूसरे नम्बर का महत्वपूर्ण स्थान जो पुरा सम्पदा की दृष्टि से बहुत धनी है। मोहनगढ़ और उसके आस-पास का क्षेत्र ऐसा है जिसमें छटवीं से बारहवीं शताब्दी की बनी प्रस्तर मूर्तियों का अपार

भण्डार है। जितनी मूर्तियाँ प्राप्त हैं उनके अलावा अनगिनत मूर्तियाँ धरती के गर्भ में दबी पड़ी हैं, जो खेतों, मैदानों और पहाड़ियों में अक्सर निकलती हैं। पुरातत्व विभाग और शासन से इस क्षेत्र में खुदाई की अपेक्षा है। एक से एक सुन्दर और सजीव प्रतिमाएँ मोहनगढ़ ग्राम और वहाँ के किले में रखी हुई हैं जो असुरक्षित होने से चोरी होती रहती हैं। मोहनगढ़ में एक विशाल संग्रहालय बनाने की आवश्यकता है जिसमें सारे क्षेत्र की मूर्तियों को सुरक्षित कर पर्यटकों हेतु दर्शनार्थ रखा जा सके।

मोहनगढ़ का किला एक पहाड़ी पर तालाब के किनारे बहुत ही सुन्दर और विशाल है। इसमें रखी मूर्तियाँ और चित्रकारी दर्शनीय है। किले के भीतर मंदिर में भगवान विष्णु की आदमकद से भी बड़ी प्रस्तर प्रतिमा इतनी भव्य और सुन्दर है कि उत्तर भारत में शायद ही उसके जोड़ की मूर्ति कहीं हो। भगवान के अवतार मुख्य मूर्ति के साथ अंकित है। लक्ष्मीजी की प्रतिमा भगवान के पार्श्व में न होकर सामने की ओर एक बगल में ऐसी प्रतीत होती है जैसे स्वयं लक्ष्मीजी साड़ी पहने हाथ जोड़े खड़ी हैं। इस ग्राम में हिन्दू देवी देवताओं के अलावा जैन और बौद्ध प्रतिमाएँ भी हैं। कुछ महत्वपूर्ण मूर्तियों में शेषशायी विष्णु, हर-गौरी, धर्मराज, दशावतार, विष्णु व लक्ष्मी सुन्दर और अनूठी हैं। यदि शासन प्रयास करे तो यहाँ एक अनूठा पर्यटन स्थल तैयार हो सकता है। मोहनगढ़ से कुछ दूर जिले की सबसे बड़ी झील नदनवारा भी है।

६. **टीकमगढ़ नगर** - मोहनगढ़ से वापिस टीकमगढ़ की ओर जाने पर रास्ते में रानी की बावड़ी है, जिसे देखा जा सकता है। टीकमगढ़ जिला मुख्यालय पर पर्यटकों हेतु विश्राम के लिए रैस्ट हाउस और अनेक होटल है। नगर के दर्शनीय स्थलों में किला, राजमहल, महेन्द्र सागर तालाब और उस पर निर्मित महाविद्यालय भवन (तालकोठी), तालाब मंदिर का शिवलिंग नजरबाग मंदिर की संगमरमर की शिवमूर्ति, परतीतराय मंदिर आदि विशेष महत्वपूर्ण हैं। नगर से चार किलोमीटर दूर बौरी मंदिर की प्राचीन हनुमान जी की प्रतिमा भी दर्शनीय है। टीकमगढ़ से कुण्डेश्वर मार्ग पर तीन किलोमीटर दूर बोतल महल और बाग अपने आप में अनूठा है।

७. **कुण्डेश्वर** - टीकमगढ़ आने वाले हर पर्यटक का कुण्डेश्वर धाम (६ कि.मी.) जाना अनिवार्य है, जहाँ जमड़ार नदी के तट पर स्वयं प्रकट शिवलिंग और मंदिर के दर्शन बगैर यात्रा का सुफल नहीं मिलता। कुण्डेश्वर तीर्थ में कुण्डकोठी, बनारसी बाग, डाइट भवन में पं. बनारसीदास चतुर्वेदी की प्रतिमा, जवाहर नवोदय विद्यालय और पापट संग्रहालय अन्य दर्शनीय स्थल हैं। यहाँ के संग्रहालय में जिले के अनेक स्थानों से लाई गई बहुत सी प्रतिमाएँ हैं जिनमें मोहनगढ़ से प्राप्त विष्णु प्रतिमा अंतर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त है, जिसे विदेशों में भी दर्शनार्थ भेजा जा चुका है।

८. **पपौरा जी** - टीकमगढ़ नगर से तीन किलोमीटर दूर बड़ागाँव मार्ग पर जैन तीर्थ पपौराजी में १०८ जैन मन्दिरों का विशाल समूह है जहां सारे देश से प्रति वर्ष हजारों जैन धर्मावलम्वी दर्शनार्थ आते हैं। प्राचीन मंदिर समूह के अलावा भगवान बाहुवली की लगभग २० फुट की प्रतिमा एवं भगवान पार्श्वनाथ की विशाल पद्मासन प्रतिमा के साथ ही संग्रहालय एवं गौशाला भी दर्शनीय हैं। यात्रियों के रुकने हेतु कई धर्मशालाएँ भी हैं।

९. **बड़ागाँव धसान** - पपौरा जी से आगे बढ़ने पर लगभग २५ कि.मी. दूर बड़ागाँव नाम का ग्राम है जहाँ किला और प्राचीन हुनमान मंदिर के दर्शन होते हैं। यहाँ एक पहाड़ी पर भगवान आदिनाथ की विशाल पद्मासन प्रतिमा भी है।

१०. **ऊमरी** - बड़ागाँव से लगभग २० कि.मी. की दूरी पर ऊपरी नामक ग्राम में टीकमगढ़ जिला का दूसरा प्रसिद्ध चंदेलकालीन सूर्य मंदिर है। जिसका शिल्प खजुराहो के समान है। यहाँ का हनुमान मंदिर भी दर्शनीय है।

११. **बुड़ेरा, लार एवं नारायणपुर** - बुड़ेरा में प्राचीन मठ को देखते हुए कार बंजरया नामक ग्राम में तालाब, किला, जैन मंदिर तथा भगवान विष्णु की सुन्दर प्रस्तर मूर्ति दर्शनीय हैं और आगे बढ़ने पर नारायणपुर के तालाब, शिवालय और जैन मन्दिर देखते हुए अहार गाँव पहुँचते हैं।

१२. **अहार जी** - अहार जी में टीकमगढ़ जिले का दूसरा बड़ा जैन तीर्थ है जहाँ प्रतिवर्ष हजारों यात्री दर्शनार्थ आते हैं। यहाँ जैन मंदिर समूह में भगवान शांतिनाथ की विशाल प्राचीन प्रतिमा और संग्रहालय के अलावा पंचपहाड़ी मंदिर, विशाल मदन सागर तालाब, अहार लड़वारी मन को प्रसन्नता प्रदान करते हैं।

१३. **बल्देवगढ़** - अहार से बल्देवगढ़ जाते समय बल्देवगढ़ से दो कि.मी. पूर्व मुख्य सड़क से लगी हुई पहाड़ी पर विन्ध्यवासनी देवी का प्रसिद्ध मंदिर एक रमणीय धार्मिक स्थल है, जहाँ चैत्र मास की नवदुर्गा में मेला भरता है। मंदिर पर खड़े होकर देखने से बल्देवगढ़ का किला बहुत ही नयनाभिराम छवि प्रस्तुत करता है। बल्देवगढ़ किला भी एक पहाड़ी पर ही बना है जो बहुत विशाल और बहुमंजिला है जिसमें एक विशाल तोप आज भी रखी है। किले से लगा हुआ विशाल मदन सागर तालाब है जो किले से देखने पर अति सुन्दर दृश्य प्रस्तुत करता है। पर्यटकों के लिए इस तालाब में मोटर वोट से घूमने की व्यवस्था हो सकती है।

१४. **भेलसी, खरगापुर, देरी, पचेर** - बल्देवगढ़ से नौगाँव मार्ग पर चलने में सबसे पहले भेलसी में मनसा देवी और विशाल व सुन्दर वराह की मूर्ति अद्बितीय है। इसके आगे खरगापुर ग्राम में किला और तालाब दर्शनीय है। आगे देरी ग्राम में पहाड़ी पर कालका देवी का मंदिर तथा प्राचीन मठ देखे जा सकते हैं। देरी के बाद पचेर ग्राम में धसान नदी का बहुत चौड़ा पाट तथा उसके किनारे बना हुआ प्राचीन किला है जहाँ टीकमगढ़ जिले की सीमा समाप्त होती है।

१५. **सरकनपुर - जतारा - बम्हौरीकलाँ** - पचेर से लौटकर जतारा मार्ग आना होगा जहाँ रास्ते में सरकनपुर में मठ और तालाब, जतारा में किला, तालाब और अब्दापीर के दर्शन तथा आगे मऊरानीपुर रेल्वे स्टेशन उ.प्र. के मार्ग में बम्हौरकलाँ का किला देखते हुए पर्यटक अपनी यात्रा समाप्त कर मऊ से ट्रेन के रास्ते अपने अगले गन्तव्य को जा सकते हैं।

- राजमहल के पास, टीकमगढ़ (म.प्र.)卐

कायम रहे खेत और ग्रामीण होने का गुमान

– अशोक चौहान

अपने गांव या लोक-अस्तित्व के बारे में बात करें। गांव की माटी किसान के माथे का तिलक हुआ करती है। माटी शब्द से ही एक आत्मीयता और जोश भरने वाली सोंधी गंध आती है। लोक-सभ्यता का तिनका-तिनका माटी का एहसानमंद है। लेकिन वही माटी आज अभिशप्त बना दी गई है। उसकी अवमानना में किसान और खेतीहर मजदूर ही दोषी है। हम सभी भूल गये हैं कि लोक-प्रकृति जीवन का पर्याय है। उसके बिना ये तमाम तेल-फुलेल धरे रह जायेंगे। नई पूंजीवादी बुद्धि किसानी को नीची नजर से देखने लगी है। देश की हवा में बाबूगिरी का ऐसा तांडव चल रहा है कि वह गांव और किसानों को खुले मैदान में जांघे पीटकर मुकाबला करने को ललकार रहा है और इधर तो जैसे आत्मा ही मर चुकी है। भूख और कर्ज में सांस्कृतिक स्वाभिमान वैसे भी खत्म हो ही जाया करता है। इस धरती के लिए जंगल और पेड़ जिस तरह जरूरी हैं, उसी तरह गांव की रग-रग में खेतीहर इंसान मौजूद है। विश्व-संस्कृति का सार गांवों की तहजीब और अस्तित्व से अभिभूत होता आया है। भारतीय समाज की नींव में हमारे गांव और देहाती संस्कृति का अथक परिश्रम समाहित है। गांव प्रकृति की रक्षा करने के दायित्व का नाम भी है। यह हमारा दुर्भाग्य है कि हमने गांव को दुकानदार की तौल इकाई का ग्राम बना दिया है। कभी मानवता के लिए प्रेरणादायक समझे जाने वाले गांव आज पूंजीपतियों की अतृप्त भूख और भूमंडीकरण, दुकानीकरण की जालसाजी के शिकार हो रहे हैं। यह वही पैशाचिक संस्कृति है जहां किसान खेतों को प्यार नहीं करता है, बल्कि मोटरसाइकिल पर बैठकर खेत में जाता है और मजदूरों को काम बताकर टीवी पर फिल्में देखा करता है। मिट्टी में रंग सांवला हो जाने का खतरा किसान के बेटों को सताने लगा है आखिर उन्हें भी शहरी नाजनीनों पर अपने रूप का जाल फैलाने का चस्का लग गया है। बनिये की तरह किसान भी सोचता है माल को बेचो और पल्ला झाड़ लो। लो हो गए हम किसान।

प्राकृतिक संसाधनों, दूर-दराज बसी ग्रामीण जातियों के साथ आंचलिक शिल्प तथा आंचलिक विविधताओं के प्रति जवाबदेही अब किस पर होगी? यह चिंतन का विषय है। नए माहौल को देखते हुए कहा जा सकता है कि नया युग पूर्णतया शहर का होगा और गांव अपनी पहचान को समाप्त कर देंगे। जो इस बात से सहमत नहीं उन्हें एक बार विचार कर लेना चाहिए। आज के समाज को इस रूप में लाने की गलती किसी और की नहीं है इस दुर्दशा के जिम्मेदार किसान और उसकी बेफ्रिक्री ही है। गांवों को श्मशान तक ले जाने के लिए नेताओं ने कोई कसर बाकी नहीं छोड़ रखी है और उन्हीं नेताओं की जूतियों को सिर पर किसान ही उठाए घूमा करता है। नेताओं की खातिर गांवों में नफरत के बीज बोता है। आज किसान बदहवास है। सरकारी योजनाओं के प्रति अविश्वास और अज्ञान, अपने अधिकारों के प्रति अनदेखी के कारण। उसे भी किसी तरह पैसा चाहिए। बारिश होनी कम हो चुकी है। खेतों की जमीन परती पड़ी रहने लगी है। उधर किसान की कल्पनाकांक्षा देखिए कि वह खेतों के काम की बनिस्बत राजनीतिकों का सानिध्य चाहता है। जाति का नंबरदार बनना चाहता है। वह भी कार में बैठकर घूमने और होटल में खाना चाहता है। वह अपने खेतों और माटी को दुलारता नहीं है। लगाव के साथ से फसल का हाथ नहीं फिरता है। उधर खेतों में हरी-भरी लहलहाती फसलों से प्रेम करने की जगह उसकी औलादें मोबाइल से संदेशबाजी करती फिरती हैं।

माटी की मूरतें बदरंग हो रही हैं। देश की रिदम में किरकिरी हो रही है। आल्हा और कजलियों में अब रौनक नहीं नजर आती और कभी नौजवानों का सबब कहे जाने वाले फागुन की हवा में मिठास नहीं रही है। हमें इस पर चिंता करने के साथ कर्मशील होने की जरूरत है। बाजारवादी संस्कृति में कुछ छके हुए लोग किसान को बरगलाकर माटी की अवमानना और उसके दायित्वों की अवहेलना पर उतारू है। आज की विज्ञापन कल्चर मिट्टी का अपमान कर रही है। इस अपमान का बदला लेना क्या गांव की इज्जत बचाने जैसा काम नहीं? गांवों ने सदा मिट्टी का सम्मान किया है। मिट्टी हमारी लोक परम्पराओं की अमूर्त प्रतीक नहीं बल्कि जीवंत मां स्वरूप देवी हैं माटी किसान की प्राण संवेदना है। मिट्टी में केवल पौधे ही नहीं उगते हैं बल्कि उसमें मनुष्यता भी पुष्पित-पल्लवित होती हैं अब फिर क्यों न सोचा जाए कि हम लोग मिट्टी को किस प्रकार जीवित रख सकते हैं। उसको बाजार की चोट से घायल होने से बचा सकते हैं। गांव के बच्चे मिट्टी में खेलते हैं, मिट्टी में सीखते हैं और मिट्टी खाकर बड़े होते हैं मगर देश का हतभाग्य ही कहिए कि बनावटी हवा और मक्कारी भरी जिंदगी जीने वाले शहरी शाहबजादे और नौकरशाह उन्हें बेवकूफ समझकर उन पर शासन करते हैं। गांव की जिन्दगी का अपमान मिट्टी का अपमान है। सभ्यता और संस्कृति का अपमान है, प्रकृति का अपमान है। मिट्टी हमारे अस्तित्व का आधार है। टीवी के कार्यक्रम इसी मिट्टी के खिलाफ हमारी नयी पीढ़ी की रगों में कुतर्क और कुविचार का खरपतवार रोप रहे हैं। सिनेमाई भांड और पूंजीपति बता रहे हैं कि मिट्टी से तन सँवला जाता है। उनके बनाये उत्पादों को खाकर और उनकी बनायी क्रीम को मल कर इस मिट्टी दोष से बचा जा सकता है। जरा-जरा सी बात पर लाठी भांजने वाले गांवों के चौधरियों को गांवों और मिट्टी के अपमानित होने पर भी काठ मार जाता है। गांव के ठकुरात कमजोरों पर ही मूछें ऐंठना जानते हैं। पूंजीपति देश की काया में दीमक की तरह लगा है और गांव के बेटे फौज में भर्ती हो सीमा पर बैठे हुए एक छद्म देशभक्ति के संसार में मस्तमग्न हैं। आखिर हम किस रास्ते

पर हैं? दुश्मन सीमा से ज्यादा देश के अंदर घुसा बैठा है। खेती को दोयम दर्जे का काम बताया जा रहा है। अधम है खेती भीख समान। और बाजारवादी प्रतिष्ठानों में कुत्ते की मानिंद खटने वाले पढ़े-लिखें बेगैरत गुलामों से जरा पूछकर देखिए तो अपनी आत्मा को बेचकर उन्हें दुनिया को मुट्ठी में करने का एहसास होता भी है या नहीं।

इधर आजादी के बाद गांवों में काफी बदलाव आए हैं। इस माहौल में सबसे ज्यादा नुकसान किसानों और उनकी औलीदों को हुआ है। सुनार का लड़का सुनार बन जाता है, लुहार का लड़का लुहार का पेशा अपना सकता है, कारीगर के लड़के अपने पैतृक व्यवसाय को अपनाकर खुश होते हैं मगर अभागे किसान का बेचारा लड़का अपने पैतृक व्यवसाय के प्रति समर्पित नहीं हो सकता है, उसे तो बचपन से ही घुट्टी पिलायी जाती है शहर में बसने या नौकरी करने की। वह अफसर बनना चाहता है। वह क्लर्क बनकर खुश हो सकता है मगर किसानी के काम को वह मजबूरी के रूप में देखता है। किसान खुद भी तो नहीं चाहता है कि उसके बेटे अपने खेतों में काम करें। वे आत्मसम्मान के साथ गांव और खेती के विकास के लिए काम करने की बजाय फैक्टरी में गुलामी करके बाजार और शराब के ठेकों पर जीवन का सार ढूंढ़ते फिरते हैं। पूंजीपतियों के दबाव में गांवों-किसानों द्वारा चुने हुए सरकार के नुमाइंदे ही खेती को दोयम दर्जे का काम बताकर जमीनों को कारखानों के लिए बलि चढ़ाना चाहते हैं। इसके बहुत से कारण हैं केवल किसान को दोषी नहीं माना जा सकता है। आजादी के बाद गांवों के साथ जमकर धोखाधड़ी हुई है। हर तरह की सरकारी मशीनरी और शासकों के लालच को पूरा करने का जरिया किसानी और खेतों को माना गया है। आजादी के बाद गांवों की जरूरतों में भी काफी बदलाव आए हैं। गांवों ने तेजी से शहरों को आत्मसात किया है। संसार में बढ़ते बाजारीकरण के उन्माद के बीच किसान अकेला पड़ गया है। दरअसल वह सच और झूठ के बीच के फर्क को समझ नहीं पा रहा है। आपसी धोखेबाजी और रोजी-रोटी की अंधी दौड़ ने उसकी विचार शक्ति को लील लिया है। वैचारिक बौद्धिकता के बीच हम भावनाओं को कैसे सहेजे यह भी उतनी ही जरूरी चीज है कि हम अपनी जिंदगी को कैसे जिएं। प्रकृति के साम्य रखने का नाम है गांव की जिंदगी। उसमें शर्म वाली कोई बात नहीं है संसार में अनेक देशों के गांवों में बहुत ही सम्मान से लोग जी रहे हैं। शहर के दबाव में गांवों में उठापटक मची हुई है। गांवों के लोग शहर में खरीदारी करने आते हैं और बाजार की दमक-चमक को ही असली शहर मान लेते हैं जबकि असली शहर बहुत कम ही हंसता है। वह बाहरी तौर से कैमरे के सामने मुस्कराता भरा है। वह भी नीरस उदास गलियों में रहता है। जहां हवा-पानी जैसी कुदरती तत्वों के लिए भी लोग दिन-रात समस्या से जूझती है। गांवों के लोग शहर भागना चाहते हैं लेकिन शहर के लोग अपनी बनावटी जिंदगी से ऊब चुके हैं। हां, वे बताना नहीं चाहते हैं।

किसान होने के बावजूद अधिकतर किसान अपने इस पवित्र पेशे की इज्जत करना छोड़ चुके हैं। वह अपने ऊपर हुकुम चलाने वाले अफसरों को सम्मान देता है। अपना शोषण करने वाले बनियों और ठेकेदारों की जी-हजूरी करता है, किन्तु अपने किसान भाई को उनके पवित्र पेशे के लिए साधुवाद नहीं देता है। आम, पीपल की ठंडी और सेहतमंद छांव की जगह अब उसे भी कूलर या एयरकंडीश्नर की बनावटी शीतलता का सुख उठाने का चस्का लग चुका है उसे अपने ठंडे मकानों की जगह तपते लिंटर में झुलसना मंजूर है पर गांव क्या पूरे भारत में जीवन शैली में हम इतना विवेक करना भी छोड़ चुके हैं कि हमारी जलवायु और गर्म मौसम हमें किस तरह रहने का संदेश देते हैं और फिर हम दोष लगाते हैं कि बिजली नहीं आती है। जनसंख्या रोकने के दावों को झुठलाकर आबादी में बेतहाशा बढ़ोत्तरी करने वाले तंगहाली के वक्त सरकार को कोसते हैं। अभी किसानों ने शहरी जिंदगी को बाजार की निगाहों से देखा समझा है। उसके जंग खाए हुए पलंग और उसके आदर्शों की देह पर रेंग रहे खटमलों की चुभन को उसने महसूस नहीं किया है अन्यथा उसे अपने गांवों की फिक्र रहती और वह उसी को बेहतर बनाकर जीने की प्रेरणा लेता। शहर जहरीली हो चुकी आबो-हवा से मुक्ति पाने को बेताब है, वहीं दूसरी ओर किसान के पास सब कुछ होकर भी वह अपने कंगाल समझने की रट लगाए हुए है।

अब भाषा और जीवन शैली के संबंध में कुछ विचार करें। हरेक गांव एवं क्षेत्र की अपनी अलग जीवन शैली होती है, हरेक गांव की अपनी विशिष्ट भाषा व बोली और पहनावा होता है। हरेक गांव के अपने तीर तरीके और लोक-पर्व और त्यौहार होते हैं। सबकी अपनी भाषा और मुहावरे और उपमाएं होती हैं। फिर गांव का आदमी शहर के मुकाबले किस बात में हीन भावना रखता है आखिर एक खास तरह के विदेशी कपड़े पहन कर ही हम क्यों ऊँचे स्तर के लोगों में शुमार हो सकते हैं? क्या गांवों के किसानों और कामगारों को भाषा या बोली के सम्बंध में बनावटी शहरी लबादे को ओढ़ने की जरूरत है? गांव की भाषा हमारी बचपन की भाषा है। वह हमारे सुन्दर सलोने संसार की भाषा है और हमारे आपसी व्यवहार की भाषा है। पीपल और अमराईयों से परे हटकर आखिर हम किस सुखद और सुकून भरे जीवन का ख्वाब देख रहे हैं और आखिर वह कितना सही है? इसका हमें विश्लेषण क्या आज नहीं करना चाहिए। गांव को शहर बनने से रोकना एक महान सभ्यता और संस्कृति और मानवीय जीवन के स्रोत को नष्ट होने से रोकना है अन्यथा शहर की गंदी दलदल में, उसकी मारक चपेट में आकर सांस्कृतिक, भाषायी और जैविक विविधता जैसी निधियों के साथ लोक-संस्कृति के सौरभ, बगीचे, पगडंडी, कूल-कछार, पनघट, पतवार, हल और बैल, प्यार, गेहूँ-धान, व्यवहार, रिश्ते-नाते खेलकूद पीपल, नीम, पुरवाई, घड़े, दरांती-कुदाल, चाक, हस्तशिल्प, गिल्ली-डंडा और वह सब कुछ जो इंसान को इंसान बनाता है या उसे दौलत में डूबा हुआ शैतान बनने से रोकता है, वह सब कुछ समाते चले जाएंगे और हमारे पास हाथ मलते रह जाने के सिवाय कोई उपाय नहीं रहेगा।

गांव की विरासतों को सहेजने और आबो-हवा को बचाने की मुहिम पर काम करते हुए जाति, धर्म, पोंगापंथी, राजनीति, मौकापरस्ती, चुनावी दांव-घात जैसी चालाकियों को भूलकर संकल्प लेने की जरूरत है। हमें अपने गांवों और खेतों के सम्मान को बचाना चाहिए। बाजार की चकाचौंध और पूंजीपतियों के बिछाए गए जाल और जल्दी अमीर होने की लुभावनी साजिशों में फंसकर अपनी धरती-खेतों को बंजर होने से रोकना चाहिए। हालांकि गांव में भी लालच और मक्कारी पैर पसार रही है मगर वहां थोड़ी बहुत शर्म अभी बाकी है। अपने कारखानों में बनाए सामान के लिए बाजार तैयार करने के लिए सेठों-पूंजीपतियों के दलाल गांव के किसान-मजदूरों पर दांत लगाए बैठे हैं। धूल भरे घरों में पला ग्रामीण, आज पंखों की हवा व थैली के लालच में अपने खेतों को बेचने को तैयार है, ठेके पर देने को तैयार है। गांव के चौधरियों को फैसला करना है उन्हें समझना है कि वे जीते जी अपने बच्चों के भविष्य से खिलवाड़ न करें क्योंकि अगर वे नहीं सुधरेंगे तो गांव में भावी सन्तानों को तो अपने वाले भीषण संघर्ष का सामना करना ही होगा। शील की ये पंक्तियां हमें अपने लोकाभिमान को संरक्षित करने की प्रेरणा देती है -

"क्षेत्र क्षीण हो जाय न साथी !
हल की मूठ गहो !
नवोन्मेष को मुखरित स्वर दो !
अभ्यागत, आगत को बल दो ?
अंकुर को जल-धूप !
पवन से कह दो ! समुद्र बहो !
हल की मूठ गहो !"...

- ७-जे, इन्द्रा नगर, थाटीपुर, ग्वालियर, (म.प्र.) 卐

कुछ बुन्देलखण्ड के लोकपर्व

— अखिलेश कुमार अरजरिया

卐 **जवारे** - चैत्र और क्वांर मास का नवदुर्गा पूजन 'जवारों' का पर्व कहलाता है, 'जवारे' शक्तिपूजा के रूप में असीम श्रद्धा के परिचायक हैं। चैत्र और क्वांर के महीनों में नवदुर्गा की समाप्ति पर नवमी को ये निकाले जाते हैं कुछ युवक अपने मुख तथा अन्य अंगों में त्रिशूल या सांग छिपाकर मोरपंखों के चंवर मस्ती से हिलाते-झूमते माता के मंदिर तक जाते हैं। उनके पीछे घटों को जिनमें गेहूँ के जवारे उगे होते हैं, सिर पर धारण किये हुए नर-नारियाँ माता के भजन गाते हुए जुलूस में चलते हैं -

दिन की ऊरन, किरन की फूटन,
सुरहिन वन को जायें हो माँय।
एक वन चाली सुरहिन, दोवन चाली,
तिज वन पोंची जाय हो माँय।।

इस गायन को 'अँचरियाँ' कहा जाता है। जवारे परस्पर सद्भाव की दृष्टि से एक-दूसरे को बांटे जाते हैं।

卐 **चैती पूने** - बुंदेलखण्ड में चैत मास की पूर्णिमा को यह पर्व मनाया जाता है। उस दिन चौक पूरकर मिट्टी के कोरे घड़े में लड्डू या खुरमा भरे जाते हैं। हल्दी-चंदन-अक्षत आदि उस घड़े पर लगाकर होम-दीप से पूजन होता है और प्रसाद वितरित किया जाता है।

卐 **गनगौर पूजन** - चैत्र शुक्ल तृतीया को मनाया जाने वाला यह पर्व स्त्रियों का प्रमुख पर्व है जिसमें सुहागिन स्त्रियाँ दिन-भर व्रत रखती हैं, और रात्रि में गौरी पूजा करती हैं। बेसन का पकवान गनगौरा इस पर्व पर प्रमुख रूप से बनाया जाता है। जो आभूषण की भांति माँ गौरी की प्रतिमा को पहिनाया जाता है। यही इस पर्व का प्रसाद है, ो पुरुषों को नहीं दिया जाता -

"गनगौरा के गनगौरा,
पुरुष खों न देऊं एकऊ कौरा।"

- सटई रोड, पावर हाउस के सामने, छतरपुर 卐

चौकड़ियाँ

— एल.एम. चौरसिया

भइया ऐसी गई मति मारी, जीती बाजी हारी।
झूठीं तारीफन के लानें, मारी पांव कुलारी।
बड़ी अनेकता खोजत रये हैं, सदा एकता प्यारी।
पी पी दूध मुटाने विषधर, फूसें खोल पिटारी।।

मारी अपने पांव कुलारी, का करबै संसारी।
पेड़ी छोड़ डार खां पकरो, सांसत में जी भारी।
आधी त्याग दई सारी खां, पूरी भई दुस्वारी।
अस्ताचल की चकाचौंध में, दिव्य दृष्टि गई मारी।।

जबसें भये पश्चिम के चेरे, कसे विपत के घेरे।
उजयारे की किरण न दीखे, चारउ तरफ अंधेरे।
अंधियारे में भौतिकता की, चकाचौंध के फेरे।
आंख मलत थक गये तऊँ पै, लखै दाहिने डेरे।।

मारें अपने पांव कुलारी, फिर काबें लाचारी।
पृथ्वीराज छमाकर कर कें, सारी शान बिगारी।
ताशकंद सिमला में जाकें, जीती बाजी हारी।
बे का जाने पीर लहू की, लगी न जिने कटारी।।

तुमखां अच्छी लगै लड़ाई, कसर न कबहुँ लगाई।
कइयक बेर दिलाशा दैकें, छुपके घात लगाई।
मुख में राम बगल में चापैं, कैंची जहर बुझाई।
पाक नाँव ना पाक बनै हौ, पाक की नाँव डुबाई।।

तुम ना जाने कौन भरन में, डारी मठा जरन में।
भइया बांटन में बेइमानी, देखी कौन धरम में।
औगुण माफ करत रये अबलौ, भईया मान रहम में।
दगाबाज नापाक पाक अब, दैवी मिला धरन में।।

- सीताराम कॉलोनी, छतरपुर 卐

बुन्देली लोकगीत और स्वास्थ्य

– डॉ. आर.बी. पटेल

मैं चाहता हूँ......... मेरे देश के नागरिकों में, लोहे की मांसपेशियाँ, इस्पात सा स्नायुतंत्र और इनमें वास करता, वज्र सा दृढ़ मन।'' स्वामी विवेकानन्द जी हमारे देश के मनीषियों की इसी सोच को बुन्देली साहित्यकारों ने गद्य-पद्य के रूप में मानव स्वास्थ्य पर आधारित साहित्य का सृजन किया है। अधिकांश बुन्देली लोकसाहित्य बुन्देलखण्ड के मानस पटल पर कण्ठस्थ रखा गया है जो पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होता चला आ रहा है।

स्वास्थ्य संबंधी लोकसाहित्य ग्रामीण क्षेत्रों में इतना फैला पड़ा है इसमें अनेकों शोधकार्य सम्पन्न किये जा सकते हैं। बुन्देली लोकगीतों के स्वास्थ्यपरक कुछ अंश यहां प्रस्तुत हैं जिनमें लोगों के रहन-सहन व भोजन संबंधी तौर तरीके निर्धारित किये गये है, जिनका अनुकरण करने व्यक्ति जीवन पर्यन्त नीरोग रह सकता है।

प्रातः उठकर नित्य बबूल की दातून करने से उसके दाँत मजबूत तथा पायरिया रोग कभी नहीं हो सकता है और यदि नीम की दातून प्रतिदिन करते हैं तो दांतों की जड़े कट जाएगी साथ ही दातों से खून निकलने की शिकायत होती है। यथा -

जो दातून बबूल की, नित्य करे मन लाये।
टीस मिटै मजबूत हों, पायरिया मिट जाये।।
जो नर नियमित नीम की, नित्य करै दातून।
कटे मसूड़े जड़ खुले, बन्द होय नहिं खून।।

प्रातः स्नान से रक्तशुद्ध, दीर्घायु औरं ओज की वृद्धि होती है तथा आलस्य, थकावट और चर्मरोग नहीं होता है ऐसा ही उल्लेख एक बुन्देली गीत में किया गया है यथा -

दाह थकावट नष्ट कर, खुजली प्यास बुझाय।
शान्ति क्षुधा वर्धक तथा, हृदय प्रसन्न बनाय।।
मन आलस्य विनाश करे, करे पसीना बंद।
प्रातः समय नहाइये, रहे सदा आनंद।।
सूर्योदय के प्रथम ही, जो नर सदा नहाय।
रक्त शुद्ध दीर्घ आयु हो, ओज शक्ति बढ़ जाय।।

भोजन का भी समय निर्धारण हमारे बुन्देली साहित्य में किया गया। एक निश्चित समय में भोजन करने पर कब्जियत नष्ट होती है तथा बल की वृद्धि होती है। सूर्योदय तथा सूर्यास्त में भोजन नहीं करने की सलाह दी है क्योंकि इस समय भोजन करने वाले की बुद्धि नष्ट हो जाती है। यथा -

सूर्योदय सूर्यास्त में भोजन कबहु न खाय।
जो मनुष्य भोजन करे, बुद्धि नष्ट हो जाए।।
प्रतिदिन भोजन का समय निश्चित कर जो खाय।
मिटे कतब्जियत बल बढ़ै, अरु जठराग्नि बढ़ाय।।

किस माह में क्या-क्या नहीं खाना चाहिए और यदि आप खाते हैं तो आपका बीमार होना निश्चित है -

चैते गुड़ बैसाखे तेल, जेठै महुआ असाढ़े बेल।
सावन भाजी भादों मही, क्वांर करेला कातिक दही।।
अगहन जीरा, पूसे धना, माघ में मिसरी फागुन चना।
इतनी चीजें खेहे सभी, मरही नई तो पर हो सही।।

समस्त ऋतुओं में स्वस्थ्य रहने के लिये नित्य हर्र प्रयोग करने की सलाह भी बुन्देली साहित्यकार ने दी है। यथा -

मधु संग खाय बसंत में, गुड़ सो ग्रीष्म खाय।
बरषा सेधें नमक सो, शक्कर शहद मिलाय।
सोंठ संग हेमंत में, पीपर शिशिर पिसाय।
स्वास्थ्य हेतु यदि विधि सदा, हर्र सवै ऋतु खाय।।

बुन्देली साहित्यकारों ने यहां के निवासियों को सदा कान्तियुक्त रहने तथा चेहरे की सिकुड़न से बचने के लिये धूम्रपान एवं कुछ अन्य वस्तुओं का परित्याग करने की सलाह दी है। यथा -

दस से सोलह बरस तक, धूम्रपान कर जोय।
गर्म दूध भोजन करे, गुप्त पर सिकुड़न होय।।
जूता चप्पल रबड़ की, प्रतिदिन पहने जोय।
मुंह से शक्ति न प्राप्त हो, कॉतिहीन मुख होय।।

मानव शरीर की कुछ स्वाभाविक क्रियायें होती हैं जैसे छींक, अंगड़ाई, अपानवायु, निद्रा, शौच, तृषा आदि जिन्हें व्यक्ति को रोकना नहीं चाहिए यदि इन्हें रोका गया तो शरीर को हानि होती है। छींक से पागलपन, नजला, आलस पीनस आदि रोग हो जाते हैं। यथा -

पागलपन, नजला तथा, आलस पीनस रोग।
अरु दिमाग रोगी बने, छींक रोक जे लोग।।

इसी प्रकार अपानवायु रोकने से भी हानि होती है। यथा -

लकवा, गस, सिरदर्द अरु, वायुशूल मन्दाग्नि।
तन भीतर फोड़ा करे, नष्ट होय जठराग्नि।

भूख रोकने से कान्तिहीनता, बेचैनी, रक्त, शक्ति, एकाग्रता, झुंझलाहट आदि बीमारियां हो सकती हैं। यथा -

कान्तिहीनता तिमिर अरु, चित्त बेचैन बनाय।
रक्त शक्ति का नाश हो, सिर में चक्कर आय।
झुंझलाहट पैदा करे, देवे रक्त जलाय।
नाशे चित्त एकाग्रता, क्षुधा समय नहि खाय।।

बुन्देली साहित्य में रहन-सहन, खान-पान आदि में सावधानी रखने की सलाह तो दी ही गई है और यदि बीमारी हो जाती है तो उसके निवारण हेतु साधारण उपचार भी बताया गया है जैसे फसली बुखार के लिये तुलसीदल, ब्रह्मणी और कालीमिर्च का सेवन करने की सलाह दी गई है यथा -

तुलसीदल, ब्रह्मणी सहित, कालीमिर्च पिसाय।
गोली मटर समान कर, तोला तोला लाय।

प्रात दुपहरी रात में, इक इक गोली खाय।
पुनः घूंटभर जल पियें, देय बुखार मिटाय।।

इसी तरह दाद के लिए भी उपचार बताया है -

माजू फल को लीजिये, तोला आठ पिसाय।
इमली तरु की छाल, की लीजे राख बनाय।
आधा तोला दीजिए, पीस के कपूर मिलाय।
तेल नारियल सान के, लगे दाद मिट जाय।।

अनेकानेक बीमारियों से बचने के सरल से सरल उपाय बुन्देली साहित्य में बताये गये हैं। लेकिन इसके बावजूद पुरुष वर्ग नशाखोरी में अपनी शान समझता है।

एक बुन्देली नारी अपने नशेड़ी पति से परेशान है। उसे बुन्देली गीत के माध्यम से समझाती है। यथा -

सैंया छोड़ो शराब कहीं मानो-२
दो-दो दिना की परन लागी फाँके,
छैला बने वैला से दंडाके, तुम तो नशा में नसा गये
लत हो गई खराब.... कही मानो....।।१।।
दारू में घर को बिको सबरो जेवर,
शादी के लाने सियाने दो देवर,
दम नइया बने फिर रये नवाब....कही मानो....।।२।।
गांजो तमाकू बीड़ी पीवो घातक,
कैंसर की बीमारी बने प्राण घातक,
जीवन है थोरो भजन कर लो.... कही मानो....।।३।।

एक स्थान पर दूसरी बुन्देली नारी अपने प्रीतम को गाँजा पीने से होने वाली बीमारियों को समझाते हुए कहती है कि गांजा पीना छोड़ दो। यथा -

गांजा न पियो मोरे कुँवर कन्हैया, जर जेहै
कोमल शरीर मोरे लाल...।
जितने का स्वामी गाँजा पियत हो, उतने काले
खाओ पान मोरे लाल...।।

इसी तरह के अनेक प्रेरक प्रसंग बुन्देली साहित्य में भरे पड़े हैं। जिनमें मनुष्य के स्वास्थ्य से संबंधित तथ्यों का चित्रण मिलता है।

निष्कर्ष बुन्देली लोकगीत मानव स्वास्थ्य के सजग प्रहरी कहे जा सकते हैं क्योंकि इनमें हमारे नित्यकर्म, भोजन, शयन, सेवन तथा मानव स्वास्थ्य से जुड़े प्रत्येक पहलू का सूक्ष्मता से परीक्षण कर उनका उपचार सरल तरीके से काव्यभाव में समझाया गया है।

- शा.उ.मा.वि. बमनौराकलाँ, जिला छतरपुर (म.प्र.) 卐

बुन्देली लोक विधायें

— पं. राजकुमार पुजारी

बुन्देलखण्ड अंचल की बुंदेली सशक्त एवं वैभव सम्पन्न है। बुन्देलखण्ड में समय समय पर बुन्देली लोक विधायें लोग बड़े चाव से गाते और बजाते हैं। वानगी स्वरूप कुछ इस प्रकार है -

विलवारी -

रथ ठाँड़े करी हो रघुवीर तुमाये, संगे हमहुँ चलें वनवासा खों।
अरे हाँ हाँ तुम्हारे काये के रथला वने,
उर काहेके डरै है बुनाव, तुमाय संगैं पलें
अरे हाँ हाँ... चन्दन के रथला वने,
और रेसम डरे हैं वुनाव, तुमाय संगे बलें -

धूनी भजन -

है कोऊ ऐसो हरि से ध्यान लगावै
जैसे नटिया चढ़ी बरद पै नटनी ढोल बजावै।।
पेट पीठ पापी के पीछूं, सुरत बदन पै ल्यावै है, कोऊ...।

सैरो -

सावन सुहानी हो अरे मुरली लगै हो, भदवाँ सुहानी मोर।
तिरिया सुहानी अरै जबहीं लगै, बारो खेले पींर के दोर।।
सदा तुरइंया हो, अरे फूले नहीं हो, सदा न सावन होय।
सदा न राजा अरे चढ़ नई करें, चाय लाख बात हो जाय।। सावन

सावन -

अब जिन जाओ विदेश, अव की सावन राजा घर करौ
अषढ़ा धनन धन गरजहिं, सवना बरस गये मेह।। अबके सावन.

कजरी -

अरे रामा रिमझिम बरसे पनियां झूले राजा रनियाँ रे।
घिर आये घुमड़ घनकारी
परै रिमझिम बूँद फुहारी
हरे रामा दमक रही दामनियां - झूले....

इसी क्रम में पावस ऋतु में आल्हा, झूलागीत, पावस का दादरा, लेद का दादरा अदि विधायें बुन्देलखण्ड के लोग बड़े चाव से गाते हैं।

राछरौ -

संजा भई रे दिया वाती की वेरा।
वेरा अरे राधा ने सेज सजाई
हो सुनियौ अरे राधा कन्हैया की राछरौ
आधी रैन पै अरे सो गई राधिका, अरे धरै दुलरी में हाथ,
हो सुनियो अरे....

पाई -

टूटी है मोरी टपरिया
उमड़ घुमड़-घुमड़ वरसे बदरिया
कनक दार जा सवरी मींज गई
कैसे जा वनहै गकरिया- उमड़ घुमड़...

मुदन्ना -
यह बुन्देली विधा बुन्देलखण्ड के अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग तरीके से गायी जाती है -

जबलपुर में -
माई तोरे रूप हजार, मात जागदम्बका।
तोरे रूप हजार मात जगदम्बा भवानी।।
तुमसे को लड़ सको, कौन ऐसो वरदानी
मधु-कैटभ से वीर खाँ छिन में दीनी मार
सात दीप नौखण्ड में, हो रई जय जयकार-मात जगदम्बका।।

छतरपुर -
नैचे गडई ऊपर बेला,
कलेवा लैकें निकरी है वेला।
गोटादार गुलाबी अंगिया, ता ऊपर है लाल चुनरिया,
घालें जा रई कंदेला - कलेवा लैकें....

सागर -
खालो खालो मोरे जजमान, कटंगी के रसगुल्ला।
बड्डे की लागी उर मझले की लागी,
साजौ धरौ सामान, कटंगी के रसगुल्ला

अचरी -
मइया तोरी धूरा भरी पैजनियां।
कौना गढ़ा दई पांव पैजनियाँ, हो पाँव पैजनियां
कौना उड़ा दई उड़नियां - मइया तोरी....

कछयाई -
रघुवर चालौ न चलै, तिरिया है बेढंगी, रघुवर चालौ न चलै,
घर में उखरी, घर में मूसर, परघर कूटन जांय।
घर के साजन कछू कवै तौ नाहर सी गुर्राय-रघुवर पालो०

ढिमरयाई -
मोडी मोड़न के खुल गये भाग, वीद गई जल मछरी
मोड़ी टेरे मतारी खो आज, छोंक देंय जल मछरी, मोड़ी

धुवयायी -
भजलो सीताराम, उमरिया रै गई थोरी
बालापन हँस खेल गवाँयो, ज्वानी में इतराऔ
आऔ बुढ़ापौ काँपन लागी, विरथा जनम गंवाऔ-मजलौ

रइया -
घरर घरर नदिया वहै, अरे रैया,
गोरी धना पनियां खो जांय।
सजन वसत परदेश में, अरे रैया
नैना नीर वहाय
सब रानी वृजरानी मिल गाउती है रइया
मेहनत खो पूजत हम तो, गाँव के रहइया, घरर...

जिकड़ी -
विपत परें हैरानी हुइये, विपत परैं हैरानी जी
इक दिन विपदा रामचन्द्र पै, हर गई सिया भवानी जी
शक्तिवान लगै लक्ष्मन खो, रोय रई रजधानी जी। विपत...

ढोला -
विरछा जिन काटो गैल कै, पंछी विलम न पैहें।
आगे सबसें प्रीत निमेहें, ऊँचे उठैं सबै सुख दैहें।।
इन्हें देख राखो, विपद में बड़ो सहारो रै है, विरछा

राई का ख्याल -
भजलो सीताराम भजलो सीताराम, तुलसी की माला लै लो हाथ में।
भजन बिना जीवन में मइया, मिलत चैन है नइयाँ।
भजन बिना सुन लो मन प्यारे, जग में कोऊ नइयाँ।।
उनसें परने काम, सुमरौ राजा राम, तुलसी की...

राई का टप्पा -
बड़ी नटखट कन्हैया बताव रानी।
सुनो सखी हैरान हम, घरै घुसत नन्दलाल।
कभऊँ पकड़ पावै नही, वांको होय न बाल। बड़ी नटखट

चौकड़िया -
ऊधौ जा कइयो रघुवर सें, सखी दरस खों तरसें।
का ता बनी विगर गई हमसें, निकर गये जो घर सें।
दरश दये ना पाती मेजी, प्रीत टोर गये जर सें।
ईसुर राधा जू के नैना, चौमासे से बरसें।।

राई -
लगा कैं प्रीत काय टोरी रे-३
हमखों तो तुम प्यारै लगत हो, तुमै राधा लगै प्यारी रे।

बसंत -
दिन ललित बसंती आन लगे, हरे पात पियरान लगे।
घटन लगी दिन पै दिन रजनी, रवि के रथ ठहरान लगे।।

चैती -
चैता के चरेरे घाम छेल की, मुइयाँ तो झुलस गई घामें में,
अरे हाँ हो छैल खों, जो मैं ऐसो जानती।
घुंघटा में लेती दुकाय, छैल की मुइयाँ...

साके -
रइया राव के, बेटा साहब के हौ बुन्देला राजा,
बड़े हैं लछारे तोरे नाव।
कौन गाँव तोरो बैठका उर, कौन गाँव में ठाँव, रइया

लमटेरा -
दरश की वेरा तो भई रे, वेरा भई रे पट खोलौ
छवीले भोलेनाथ हो।
सब जग ठाड़ो दरशन खो रे, ठाड़ों दरशन खौरे
दानी हो गये जरारू की ओट रे.... दरश

रावला -
लाज मोरी राखो शारदा माई
जिन-जिन ध्यान धरी माता तोरो, सबकी आस पुजाई लाज मोरी

- पुजरयाना मुहल्ला,
पृथ्वीपुर, जिला टीकमगढ़ ❀

बुंदेली ख्यालों में झलकता काव्य-कला कौतुक

{गतागत काव्य (उल्टा सीधा एक समान) के विशेष सन्दर्भ में}

– डॉ. सरोज गुप्ता

बुन्देलखण्ड अपनी समृद्ध सांस्कृतिक एवं साहित्यिक परम्परा के कारण वैदिक काल से लेकर अब तक पौराणिक एवं धार्मिक साहित्य में एक ऐसी चेतना का साक्षात् कराता है जो इस भू-भाग की धरोहर को अन्य सभी परम्पराओं से अलग अस्तित्व प्रदान करता है। विविधता बुन्देलखण्ड की विशिष्टता है। धरती और प्रकृति की विविध रूपता के साथ यहाँ पर काव्य-कला का वैविध्य भी उपलब्ध है।

लोक जीवन में वाचिक परम्परा की समृद्ध विरासत लोकगीतों, कथा, गाथाओं, कविता, कहानी नाटक के अलावा काव्य-कला क्रीड़ा के विविध रूपों पहेलियों, चित्रकाव्य, शब्दक्रीड़ा, गतागत (उल्टा सीधा एक समान) अंक महिमा काव्य, वर्ग पहेली आदि के द्वारा विशिष्ट पहचान बनाये हुए हैं।

गतागत काव्य उल्टा सीधा एक समान मूलतः मनोरंजन प्रधान है। खेल-खेल में बुद्धि परीक्षण कला का उदाहरण है, जो दो अक्षर (चाचा, मामा) से प्रारंभ होकर डालडा, कनक, चम्मच से लेकर 'राधा की बूनी में नीबू की धारा' तक विद्यमान है। गतागत काव्य मनोरंजन के साथ-साथ बौद्धिक प्रतिभा निखारने, ज्ञानशक्ति विकसित करने में सक्षम व समर्थ है। गतागत काव्य के उदाहरण मुझे बुन्देली ख्याल गायक स्व. श्री भोगी लाल गुप्त की प्राचीन पाण्डुलिपियों से प्राप्त हुये हैं। खोजे गये इन मणिमुक्ताओं, काव्यकला कौतुक द्वारा विशिष्ट जानकारी प्राप्त की गयी है। आज के बदलते परिवेश में, आपाधापी के युग में हम सभी सुख-चैन व मनोरंजन से कोसों दूर होते जा रहे हैं। ऐसे समय में गतागत काव्य द्वारा हमें अपनी संस्कृति से जुड़ने, चिन्तन मनन करने का अवसर मिलेगा। गतागत काव्य में भारतीय परम्पराओं, मान्यताओं, समाज, संस्कृति, धर्म, दर्शन, अध्यात्म, ज्ञान-विज्ञान, करणीय, अकरणीय तथा लोक जीवन के व्यावहारिक सूत्रों को रेखांकित किया गया है। तत्सम, तद्भव शब्दावली के साथ स्थानीय शब्दों की छटा से भाषा सहज एवं सरलता से प्रवाहमान हुई है। संगीत की सुरलहरी, लय एवं तान का अद्भुत समन्वय काव्य को जीवन्तता प्रदान करता है। बुन्देली की समृद्ध विरासत एवं अपार वैभव की झांकी इनमें दृष्टव्य है। गतागत काव्य की एक दो पंक्तियां लिखना तो आसान है परन्तु इस प्रकार ख्याल के रूप में कई-कई पंक्तियां लिखना मुश्किल व श्रमसाध्य कार्य है।

ख्याल राधाकृष्ण विलोम में ख्याल गायक ने मानिनी राधिका का स्मरण कर, सभा में सुशोभित साज समाज की चर्चा कर ईश्वर के स्मरण का जाम पीने का आह्वान इस प्रकार किया है-

न सारो मान न मारो सान,
न राहै रोक करो हैरान।
जमा सज सान न साज समाज,
जगा रसु भासु सभा सुर गाज।
जलावे जात तजा वे लाज,
जवानी बास सु बानी बाज।
मनाये टार रटाये नाम,
मजाले पी य पी ले जाम।
सरा या चार रचा या रास,
सदा वे नाव बना वे दास
रटा ना दीसा दीना टार,
रमा रामा सो मारा मार।
रचाया जा या जा या चार,
रसा ई सो है सो ई सार।
न जागा जाना जागा जान,
न माई है सो है ईमान।
सभा साजे हो जैसा भास,
समारा बानें बारा मास।
सदा धौंसा दे साधी दास,
लला गी भो के भोगी लाल।

ख्याल गायक भोगीलाल की कामना है कि बारहों महीने इसी प्रकार फड़ का साज जमा रहे। धौंसा देने वाले श्री साधोदास के साथ वह निरन्तर इसी प्रकार गायन में रत रहे।

रती जान भारी भली भरी भान जा तीर,
रसी तान बानी सखी सनी बान तासीर।

यमुना का किनारा, कृष्ण व राधा का साथ किसे अच्छा नहीं लगता। विभिन्न लीलाओं के प्रसंग माधुर्य भाव को स्पष्ट करने वाले मनोरम प्रसंग जिनमें कृष्ण की असीम शक्ति आदि के उदाहरण दृष्टव्य हैं -

रस रास रचो वन मे नव चोर सरासर,
रच राच रहे न तजे तन हेर चराचर।
नचै बस गान बजे बन वैन, न वैन बजे बन गा सब चैन।

कृष्ण की रासलीला, कृष्ण का वैभव, वेणुवादनकला ज्ञान और भक्ति का विवेचन बड़ी ही सहजता से किया गया है।

मैं राधा जी नाम जपत हों तप जमना जी धारा मैं,
मैं राचा उरीह बस कैसो कै सब हरी उचारा मैं।
है राहा सो कठिन बना ना नीव न ठिक सो हारा है,
है राजा गुन ग्यान विसोना सो बिन याग्न गुजारा है
है राचा सो हीन लै च हो चलै नहीं सो चारा है,
है रामा सब मका दास जो सदा काम बस मारा है
मैं राटा दम कसो भलो सो लोभ सोच मद टारा मैं
है नीकी सो गजो या क्रिया-क्रिया जोग सो कीनी है,
है नीची धावन नीकी जो कीनी नवधा चीनी है
है नीती मत जर तस सब ही बस सत रज तम तीनी है
है नीभी ना धसा उदासी दाव साधना भीनी है।

मैं राहा सत भी कहना हो नाहक मीत सहारा मै।।
है नासी के ठाउ तजा औ जात उठा के सीना है
है नागी नव नीची सांकी सांची नीव नगीना है।
है नाली ना मना वदैना दैव नाम न लीना है
है ना पी सर धूम मजा के जाम मधू रस पीना है
मैं रागा रागा नभ ये सो ये मन गारा गारा मैं।
।ख्याल गतागत राम कृष्णा लोम विलोम।।

इसमें एक पंक्ति उलटकर पढ़ने से दूसरी पंक्तिया स्वतः बन जाती है, लोम विलोम कहलाती है।

राधा पत कहना नव धाना गम मारा,
रामा मग ना धावन नाहक तप धारा।।१।।
री मासि मता रस ले फाड़ता विदारी
री दावि ताड़का ले सर तामसि मारी।।२।।
री प्यासी नव खल जीवा सर जीवारी,
री बाजी रस बाजी लख बनसी फारी।।३।।
री नासी पतरी तास वही थी सारी,
री साबी ही बस तारी तपसी नारी।।४।।
ना था कलह वशि सब चरत से दिखाना,
ना खादि से तरच बस शिव हलक थाना।।५।।
ना सा सर सर दसकंठन सुर सुख माना,
नामा खसु रसु नठ कंस दरस रस साना।।६।।
सीता पत सीता पत तप धारा धासी
सीधा राधा पत तप तासी तप तासी।।७।।
सीलाहु काम रा साली है साखा सी,
सीखा सा हैलीसा राम का हुलासी।।८।।

बुन्देलखण्ड की विलुप्तोन्मुख लोक विधा ख्याल के चर्चित गायक स्व. श्री भोगीलाल गुप्त गुरसराय निवासी थे। इनके पुत्र श्री राघव सेठ ने मुझे इनके द्वारा रचित २५०० ख्यालों की ३ जिल्दें दिखायीं। ख्यालें ऊँचे दर्जे की हैं, वैविध्य तथा भारतीय संस्कृति के सम्यक् ज्ञान की कुंजी इनमें छिपी पड़ी है। वैद्यक, आयुर्वेद, ज्योतिष, प्रकृति, ऋतु वर्णन, श्रृंगार, बारहमासा, नखशिख वर्णन, लोक जीवन के रंग चित्रों से भरी ख्यालों को विविध सनअतों से सजाया गया है।

आवश्यकता है कि इन ख्यालों के सम्पादन एवं प्रकाशन की व्यवस्था हो ताकि बुन्देलखण्ड के दूरस्थ ग्रमीण अंचलों में स्मृति और श्रुति परम्परा से चले आ रहे बोली विषयक ज्ञान को बचाया जा सके।

– शा.स्वशासी स्नात. कन्या उ.महाविद्यालय,
सागर (म.प्र.) 卐

बनें हैं लाल लला के गाल

– डॉ. हरिसिंह घोष

लली ने पोती लाल गुलाल,
बने हैं लाल लला के गाल।।

खेलें लला लली संग होली,
बन आई सखियन की टोली,
पाय अकेली घेर सखिन ने,
करो लला की फगुआ हाल।। लली ने पोती....।।
परदनी पचरंगी रंग रई,
झंगुलिया सतरंगी कर दई,
रचो पट ऐसी कजरारी
सकुचते लला गले में डाल।। लली ने पोती....।।
बेंदा माथे पै चिपकायो,
कजरा कोरन भरो सुहायो,
ढिठौना अर्द्धचन्द्र कारौ
लिखी वर रेख लला के गाल।। लली ने पोती....।।
करो बंसी संग कटु व्योहार,
दये गालन गुलचा दो चार,
पिरोईं चुरियां कर बरजोर,
नेह बस उर लिपटायो लाल।। लली ने पोती....।।

– घोषयाना, संकटमोचन मार्ग, छतरपुर 卐

बुन्देली लघु कथाएँ

– निहाल अहमद सिद्दीकी

लुटेरे या बराती –

जेठ-मास में सर्र-सर्र लू के थपेड़ा चल रए ते, जीसें चिरवा-चिरइया तक की पता नई चल रओ ती, ऐसे में एक जीप चर्राकें रुकी, जीमें तीन-चार तुबक धारी कूंद के बाहर निकरे।

पेड़े के नेंचे बैठे, एक जनन के मौं सें निकरो 'लुटेरे'। तभऊं एक सजी-संवरी लाल जोड़ा में सरमाउत सी बहू उतरी। ऊखौं उतईं छांयरे में एक कुरसी पै बिठा दओ, तभई दूसरे जनें बुदबुदाये 'बरात'।

दोऊ जनन की बातें बहू के कानन तक पौंची, इनमें ऊखों लुटेरे शब्द नौनो लगो।

मिलावट –

घरवारी बंधी के दूद में पानी नई मिला पाई औ दउआ जू पूरी बंधी में निपनियाँ दूद बाँट आए।

दूसरे दिना सब जनन नें दउआ जू सें सिकात करी 'अरे कैसो दूद दओ घर भर खौं नुकसान कर गओ।'

दउआ जू बोले अब ऐंसी गलती न हुइये।

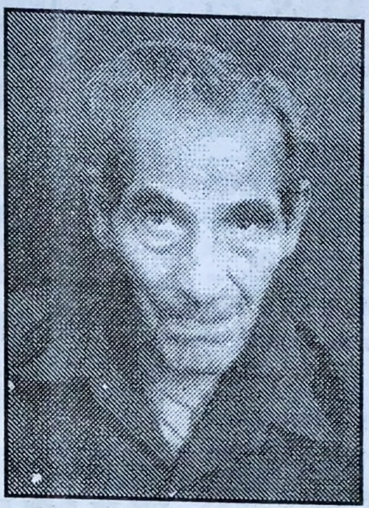
– बेनीगंज, स्टेट बैंक के बगल में, छतरपुर 卐

संस्मरण लेख -

बुन्देली लोक साहित्य के मर्मज्ञ कवि दादा रघुवीर श्रीवास्तव

- मणि 'मुकुल'

सुप्रसिद्ध व्यंग्यकार, कवि पं. श्रीबाल जी पाण्डेय का कथन है कि कविता मनुष्य को समाज से जोड़ती है, तोड़ती नहीं। इसका सीधा अर्थ होता है कवि को सामाजिक होना एक अनिवार्य शर्त है। इसका यह भी अर्थ होता है, समाज के सत्य से जब तक जीवन नहीं जुड़ता तब तक काव्य सार्वजनिक नहीं होता। वर्तमान युग में लेखक या कवि को दोनों दायित्व निभाना पड़ रहे हैं और सफल कवि वही होता है या माना जाता है जो अपने सामाजिक दायित्वों तथा कविताधर्मिता दोनों में सामंजस्य बना कर चले। मुझे यह कहने में कोई हिचक नहीं है कि दादा रघुवीर श्रीवास्तव की कविताओं में यह युक्ति बहुत हद तक लागू होती है। और, यही कारण है कि उनकी कविता में एक सहजता के साथ विविधता के दर्शन होते हैं। अनावश्यक आडम्बर युक्त अर्थ-बोझिलता उनकी किसी भी रचना में नहीं मिलेगी।



'दीवार और अंकुर' के कवि रघुवीर श्रीवास्तव का जन्म ११ अप्रैल १६२२ को ग्राम खकरिया (नरसिंहपुर) में हुआ था। बी.ए., साहित्य रत्न (साहित्य सम्मेलन, प्रयाग) तक शिक्षा प्राप्त कर टैली कम्युनिकेशन विभाग में प्रमुख लेखाधिकारी रहे। लेखन के प्रति आपका रुझान विद्यार्थी काल से ही रहा है। उनके जीवन के विविध अनुभव बिना किसी रचना विधान के बंधन के व्यक्त हुए हैं। उन्होंने खड़ी बोली, बुन्देली बोली, भिन्न तुकांत, छन्द बद्ध कविता की रचना रची है। रचना के दायरे भी काफी विस्तृत है। इनके गीतों में करुणा, ममता, वात्सल्य की सघनता भी मिलती है। हास्य के प्रयाग भी बड़े स्वाभाविक ढंग से, रोचकता के साथ किये हैं। एक बात अवश्य दादा की विशेष रूप से उल्लेखनीय है और वह यह कि खड़ी बोली को कविताओं में उन्होंने ठेठ बुन्देली बोली के शब्दों को बड़ी सहजता से पिरोया है-

"लौलैंयां लग गईं गाँव में, टिमकी टिमक उठी है टिम-टिम,
यहाँ चाँदनी छिटक रही है, अमृत-सा बरसाती रिमझिम।।"

लौलैंयां यहाँ ठेठ बुन्देली बोली का शब्द है। ऐसी अनेक रचनाओं में बुन्देली बोली के शब्दों का प्रयोग किया है। जैसा कि मैंने कहा कि दादा रघुवीर श्रीवास्तव सहजता के कवि रहे हैं। सहजता के साथ ही यदि मुहावरे और लोकोक्तियों की बंदिश आ जाती है तो भाषा में बड़ी रवानी भर जाती है जो कि पाठक के मन पर सीधा असर डालती हैं। जैसे -

सुख के दोई पाँव पनई, दुःख के पाँव कांटे,
मेंहदी बंटे हाथ-हाथ, पीर कौन बाँटे।
दूबा के दिल लौटे, लागे बसकारे,
चल रे खेत हारे, तोहे माटी पुकारे।।

ग्राम पर्यावरण में बाल्यकाल बिताने के कारण लोक जीवन का प्रत्यक्ष प्रदर्शन, निसर्ग प्रेम रघुवीर दादा को प्रकृति ने सौगात में भेंट किये थे। अंगनों से लेकर गलियारे, खेत-कछार, घाटी-माटी, झोरे-नारे, दूर-दूर तक विस्तृत मौरते आमों के बगीचे, महुओं के महमहाते, वन, पलासों के दहकते फागुन इन सभी से उनका रागात्मक लगाव रहा। बुन्देलखण्ड की उर्वरा धरती पर ही पहली सांस ली और आंखें खोली। वय का एक अच्छा भाग भी उसी वातावरण में रचा पगा इसलिए सहज ही बुन्देली बोली में गुन-गुनाना आ गया। बुन्देलखण्ड की यह विशेषता है कि जीवन के हर क्षेत्र में गीतों की प्रधानता पायी जाती है। चाहे खेतों में हल चल रहे हों या बीज बोया जा रहा हो, किसान स्वर लहरी के सहारे ही कार्य सम्पन्न करेगा। महिलायें तुलसा और बालमुकुन्द का, आम और चमेली का विवाह रचातीं, नित्य भोर हुए प्रभाती या अन्य धार्मिक गीत गातीं, नींदते-गोड़ते, मही भांते, चक्की पीसते, पानी भरने के लिए कुएँ - पनघट पर जाते-आते गीत गाती हैं। प्रस्तुत है रघुवीर दादा की एक सदाबहार रचना -

रूखों में मुंद रहीं अटरिये, मुड़-मुड़ देखूं गेल,
धीरे-धीरे हांक रे गाड़ी, ओ मतवाले छेल।
ढोलक ताने कजरी गाये, नाचे सारी रात,
एक रंगीले सावन-सी है, तेरी हर एक बात।
एक सिन्दूरी मांग में गोरी, भई और की और,
नई पाहुनी कह कर टेरे, बाबुल तक की पौर।
झिलमिल घुँघटा भीतर बिन्दिया, कजरारे हैं नैन,
जैसे सावन की रिमझिम में, बिजुरिया बेचैन।
कजरारे नैनों में तेरे, बसे प्रीत के गांव,
रूप-दुपहरिया जैसे बिलमी, घने रूख की छांव।
अंजाने से बोई तैंने, परम प्रीत की बेल,
बाबुल के घर जब थे खेले, घर-घूलों के खेल।
एक बूंद मोती में ढल गई, एक जली ज्यों आग,
एक गली में सावन झूले, दूजे खेले फाग।
घटा-घटा के बीज बिजुरिया, छटा करे अभिसार,
जैसे मुँह-देखी दुल्हिन की, रचें सुहागन नार।
झुलक-झूल जाती अखियों में, नई-नई पहचान,
आम की डाली पर झूलों के, अब भी बने निशान।

बुन्देलखण्ड की वसुंधरा के गौरव पुत्र एवं बुन्देली साहित्य

क्षेत्र के कर्मवीर दादा रघुवीर श्रीवास्तव के प्रति सबसे पहले मैं अपनी श्रद्धा की अभिव्यक्ति करता हूँ जिन्होंने सम्पूर्ण महाकौशल को बुन्देली साहित्य-मृदा की सौंधी सुगंध से बड़े ही सहज, सुबोध शैली द्वारा परिचित कराया।

लोक साहित्य के प्रति उनका अवदान अपने आप में मील का पत्थर है, सहज अनुभूति की अभिव्यक्ति लोककल्याण की साधना के साथ उनकी वाणी और लेखनी के साथ निःसृत हुई है।

'नमामि मातु नर्मदे' तट की पुनीत घाटी में पले-पनपे तथा कर्मरत् रहे दादा रघुवीर श्रीवास्तव ने बुन्देली जैसी लोक भाषा को काव्य भाषा का रूप देकर उसे कलात्मक सौन्दर्य प्रदान किया है। वैसे तो बुन्देली के कई रूप हैं किन्तु दादा ने बुन्देली के उस रूप को अपनाया है जो एक ओर जनता के निकट हो और दूसरी ओर खड़ी बोली से भी सामीप्य रखता है।

दादा रघुवीर श्रीवास्तव के काव्य-संकलन 'दीवार और अंकुर' का एक गीत 'पहले बादल की पाती' जो मन के कुँए को गहराई तक उलीचता है, की कुछ रस भीनीं पंक्तियां देखें -

बरखा के पहले बादल की, घर-घर आईं पतियां होंगी,
दूर गांव में आज खुशी से, झूम उठीं फुलबगियां होंगी।
बिजली की चूनर फहराते, झूले चढ़ने के दिन होंगे,
घर-घर ढोलक ठनकीं होंगी, गली-गली में सावन होंगे।
बड़ी उमंगों से तुमने भी, मेंहदी आज रचाई होगी,
खूब हंसी सखियों में तुमने, मन की बात छिपाई होगी।
भरे गले से रंगी थाप पर, तुमने गाई कजलियां होंगी,
सच कहना यह पाती पढ़कर, भर-भर आईं अखियां होंगी।

सुन्दर काण्ड स्वरांजलि, नमामि मातु नर्मदे, बुन्देली रामायण (महर्षि विश्वविद्यालय के लिए), अइयो भीजें रात दादा की छूटी धरोहर प्रकाशाधीन हैं। स्वर्गीय रघुवीर दादा महाकौशल और बुन्देलखण्ड ही नहीं समस्त भारत के जाने-माने बुन्देली साहित्यकार, लोक-विज्ञानी एवं भाषा विज्ञानी थे। उन्होंने अनेक विधाओं में रचनाएं की हैं। बुन्देली का जितना सार्थक प्रयोग वे करते थे, ग्रामीण क्षेत्र का व्यक्ति भी इतनी तत्परता से नहीं निकाल पाता। यह गुण उन्हें अलग पहचान देता था।

आज भले ही आम की डालियां, झूले और उन पर बने निशान शेष रहे हों लेकिन दादा रघुवीर श्रीवास्तव चौरासी बसंत हंसते-हंसते व्यतीत कर दिनांक १२ फरवरी २००७ को हमसे, आप सबसे विदा लेकर चले गये। कैसो को तेरो कजरा रे, हमने सीख लई गुजराती, जा फागुन में कुंवारी रह गई, आम के अपने बगीचे, पहले बादल की पाती से लेकर स्वयं की विदाई गीत तक 'दीवार और अंकुर' के गीतकार वरिष्ठ साहित्यकार उपरोक्त बुन्देली-साहित्य (जिसका शीघ्र प्रकाशन होगा) धरोहर के रूप में छोड़कर अलविदा हुए। सोद्देश्य और सहजता को लेकर लेखन करने वाले साहित्यकार एवं कवि के रूप में उन्हें हमेशा याद किया जाता रहेगा। उनके रुझाने वाले, रुलाने वाले साहित्यकार एवं कवि के रूप में उन्हें हमेशा याद किया जाता रहेगा। उनके रुझाने वाले, रुलाने वाले सदा बहार गीतों को भूल पाना सहज नहीं हो सकता, 'दीवार और अंकुर' की ये पंक्तियाँ भी देखें -

"संध्या के पहले ही जैसे, उजड़ गई हो प्रेम बजरिया,
कब लपटों की सजी पालकी, सज-धज कर चढ़ गई पुतरिया
किन्तु बजी शहनाई जब, बारात तुम्हारी याद रही...
बात तुम्हारी याद रही...

रघुवीर दादा ने स्वयं अपने विदाई गीत में लिखा है -

"रघुवीर विदा की जा बिरिया में, रुख पखेरू लौं भैराने,
बेई अबोध बालक से राये, जिनखां खेलत रहे हम स्याने।"

काल के दस्तक का उन्हें आभास हो गया था, कहा करते थे - मृत्यु अनिवार्य है। व्यष्टि रूप में प्रत्येक व्यक्ति मरने को बाध्य है जिसका जन्म हुआ है - उसकी मृत्यु होगी। उनका देहान्त भले हो गया हो लेकिन भारतीय संस्कृति और साहित्य के संदर्भ में दादा रघुवीर श्रीवास्तव कभी नहीं मरेंगे, उन जैसे व्यक्ति विरले ही पैदा होते हैं जो कहते रहे -

"कलजुग में सुन्नें में डेरा धरो है,
गिरबो बुरो है मिलबो बुरो है।
सोने के बट्टा को नइयां ठिया -
सोने के कंठा न पहिरो पिया।।"

- जय प्रकाश नगर, अधारताल, जबलपुर

कारे कन्हाई के कुछ छन्द

— डॉ. अवध किशोर जड़िया

शारदे सार दे साज सबै शिशु पै दया दृष्टि पसार दे माई।
दारद दार दे दोष दया करि वेगि विकार निकार दे माई।
डार दे मंत्र मेरी कविता बिच काव्य-निकुंज सम्हार दें माई।
नंद-किशोर की पावन भक्ति में छंद किशोर के ढार दे माई।।

गोपी कहें सुन राधे लली कतरान लगी कत रान लगी है।
रावै इतै, इतरावै नहीं उत रान लगी उतरान लगी है।
बात सुनी इक बागन में बृजवल्लभ सों बतरान लगी है।
भान नहीं बृषभान की कान की कारे कन्हाई के कान लगी है।

नैंन में नींद नहीं रतियान में नैंनन में रति आन लगी है।
चैंन नहीं छतियान में है अब देह में हू क्षति आन लगी है।
मैंन के कारण या मन में ना सु काहु की बात खटान लगी है।
भान नहीं बृजभान की कान की कारे कन्हाई के कान लगी है।

नील सरोज के संग कुमोदनी मोदनी ह्वै दरसान लगी है।
नीलम के संग हीरक की कणिका की प्रभा प्रगटान लगी है।
कैंधों पयोद की गोद में मोद मढ़ी चपला चमकान लगी है।
भान नहीं बृजभान की कान की कारे कन्हाई के कान लगी है।

- हरिहर मार्ग, हरपालपुर, जिला छतरपुर

स्वर लिपियाँ

— डॉ. महेश चन्द्र शांडिल्य, पं. जयराम त्रिवेदी

चौकड़िया

स्थायी : कच्ची ईंट बाबुल देहरी न धरियो
बेटी न दइयो परदेश मोरे लाल।

अन्तरा : डुलिया चढ़त बेटी भेंट करत है।
नैनन नीर बहाय मोरे लाल।

अन्तरा : बाबुल के रोये से गंगा बहत है।
भाई के रोये बेला ताल मोरे लाल।

अन्तरा : मइया के रोये से छतिया फटत है
भौजी के जियरा कठोर मोरे लाल।

अन्तरा : बाबुल कहे बेटी निस दिन अइयो।
माता कहे दोनों जोर मोरे लाल।

अन्तरा : भैया कहे तिथि त्यौहार अइयो।
भौजी कहे का काम मोरे लाल।

अन्तरा : गाँव के बरेदी से कहै बारी बेटी।
बाबुल से कइयो संदेश मोरे लाल।

अन्तरा : मोरे खेलत की धरी हैं पुतरियां।
गंगा में दइयो सिराय मोरे लाल।

अन्तरा : कहत बरेदी बेटी धीर धरो मन।
ससुरे सें लैबी बुलाय मोरे लाल।

ताल दादरा - मात्रा ६

स्थायी -

क ऽ च्ची ग - रे x	ऽ ई ऽ रे ग म 0	ऽ ट बा प - म x	बु ल दे ग रे रे 0

अन्तरा -

ह री ऽ ग म म x	ना ऽ ध ग रे सा 0	रि ऽ यो रे - सा x	ऽ ऽ बे ऩि - ऩि 0
ऽ टी ऽ सा रे ग x	ना ऽ दुई म - ग 0	यो ऽ प ग रे सा x	र ऽ दे ऩि सा रे 0
ऽ श मो रे ग रे x	रे ऽ लाल सा ऩि सा 0	कच्ची.....	

शेष अन्तरे भी इस तरह गाये जायेंगे।

बुन्देली लोकगीत (ताल दादरा)

स्थायी : पिया कैसे डुलाऊँ रस के बिजना
मोरी नरम कलइयाँ गरे ककना।

अन्तरा : बेंदी के बोझ लिलाट दुखत हैं।
हरवा की भार सहो जाय ना।

अन्तरा : कंगन के बोझ कलाई दुखत है
मुँदरी की भार सहो जाय ना।

अन्तरा : साड़ी के भार मोरी कमर दुखत है।
माहुर के भार उठे पग ना।

अन्तरा : काजल के बोझ मोरी आँख दुखत है।
काम करत नहीं दोऊ नैना। पिया कैसे.....

ताल-दादरा - मात्रा ०६

स्थायी -

पि या ऽ सा - सा x	कै ऽ से रे ग म 0	ऽ डु ऽ म - म x	ला ऊँ ऽ ग रे ग 0
र स ऽ ग - रे x	ऽ ऽ के सा - सा 0	ऽ वि ज सा रे रे x	ना ऽ ऽ सा ऩि ऩि 0
पि या ऽ नि - सा x	कै ऽ से रे - रे 0	ऽ डु ऽ ऩि सा - x	ला ऊँ ऽ रे रे - 0
र स ऽ सा - रे x	ऽ ऽ के सा ऩि नि 0	ऽ वि ज सा सा सा x	ना ऽ ऽ सा - - 0
मो री ऽ सा - सा x	न र ऽ रे रे म 0	म ऽ क म - म x	लई ऽ याँ ग रे ग 0
ऽ ऽ ग ग - रे x	रे ऽ ऽ सा सा - 0	कँ क ऽ रे रे रे x	ना ऽ ऽ सा ऩि - 0

अन्तरा -

बें ऽ दी ऩि प़ ऩि x	के बो ऽ ऩि सा - 0	ऽ झ ऽ सा ऩि - x	लि ला ऽ सा रे ग 0
ऽ ट ऽ ग रे सा x	दु ख त सा रे ऩि 0	ऽ है ऽ सा - सा x	
ह र वा रे म - 0	ऽ को ऽ म - म x	भा ऽ ऽ ग रे ग 0	र ऽ स ग - रे x
हों ऽ ऽ सा - सा 0	जा य ऽ रे - - x	ना ऽ ऽ सा ऩि ऩि 0	
पिया ऽ नि - सा x	कै ऽ से रे - र 0	ऽ नि	

- आदिवर्त, जनजातीय कला संग्रहालय,
खजुराहो (म.प्र.) 卐

श्री देवी प्रसाद प्रीतम : कुछ यादें

- श्याम बिहारी व्यास

यद्यपि विगत बसन्तोत्सवों में बसन्त पत्रिका में आपका जीवन परिचय दिया जा चुका है परन्तु फिर भी संक्षेप में जानकारी जानने की पाठकों को जिज्ञासा रहती है इसीलिए उल्लेख करना आवश्यक है।

श्री प्रीतम जी का जन्म सम्वत् १६२६ में कानपुर में एक कायस्थ कुल में हुआ था। पिता का नाम मुंशी रामशरण था उनका पालन छतरपुर (म.प्र.) में हुआ था उन्होंने इन्ट्रेंस पास किया था। उर्दू शायरी विद्यार्थी अवस्था में ही करते थे। इनके उस्ताद मिर्जा गालिब के भतीजे मिर्जा विस्मल थे। ब्रज भाषा में भी वह कवितायें रचते थे। प्रीतम जी सरल स्वभाव के मिलनसार व्यक्ति थे, प्रसिद्ध काव्य मर्मज्ञ भवानीदीन के वह घनिष्ठ मित्र थे। बिजावर से मिलने वह छतरपुर जाते थे तभी श्री वियोगी हरि के उन्हें दर्शन हुए। प्रीतम जी की १२ रचनाओं का उल्लेख 'गुलदस्ता-ए-बिहारी' की भूमिका में पुरुषोत्तम तैलंग ने किया है जो बहुत करके अप्रकाशित ही रहे हैं। जगन्नाथ दास रत्नाकर ने बिहारी रत्नाकर की प्रस्तावना में 'गुलदस्ता-ए-बिहारी' का उल्लेख किया है।

मध्यकाल में व वर्तमान काल में बहुत से ऐसे कवि हैं जिनकी काव्य भूमि बड़ी व्यापक है और जिनकी संवेदना जनमन को स्पर्शनीय है पर वे कवि लोकप्रिय होते हुए भी काव्य जगत में अभी उचित रूप से मयाहत वहीं हुए हैं। क्योंकि उनकी ऐतिहासिक भूमिका को ठीक तरह से समझा नहीं गया है इन कवियों की प्रमुख ऐतिहासिक भूमिका यह है कि इन्होंने मजहब से ऊपर उठकर मानव भाव को परखा है और दरबारी परनेश में रहकर भी जनजीवन में पगे हुए हैं श्री प्रीतम जी भी ऐसे ही व्यक्तित्व के धनी थें। जिस समय श्रीकृष्ण ने ऊधव को सन्देश लेकर भेजा तो उन्होंने बृजबालाओं की ओर से उत्तर भेजा -

जोग लिख धावन पढ़ाया आपने।
खून की दोनों पै दाया आपने।
आपका मुरशिद भी मिलने का नहीं।
जोग हमको ली है माया आपने।
सुनते हैं कुब्जा ठुई है सर्व कद।
क्या ही बिगड़ी को बनाया आपने।।
रंग महलों में मजे लुटने लगे
खूब उल्टा कर दिखाया आपने।।
कहते अब प्रीतम हमें आती हैं लाजं
कह दिया जिनको पराया आपने।

उपरोक्त पद में कवि ने कैसा मीठा व्यंग्य किया है कि आपका मुरशिद (मुरशिद यानि गुरु) भी मिलने का नहीं, त्याग का महत्व हमको पढ़ा रहे हैं और माया को स्वयम् अपना रहे हैं यानि द्वारकापुरी में राजसी ठाठ-बाट में रह रहे हैं।

पुनः दूसरा पद देखिए जहां बृज बालायें ऊधो में कहती हैं कि -

आपकी यह लनतरानी और है।
उनने अपने दिल में ठानी और है।।
ज्ञान है आली दिमागों के लिए।
दर्द दिल की कुछ कहानी और है।
पूछते हैं आप ही यें सच कहो।
क्या कोई कुब्जा सी रानी और है।
क्या मिटै छतियों के इन पतियों से पगा
नेह की प्यारे निशानी और है।
देके दिल दोनों से फिर के फेर लें।
क्या कोई ऐसा भी दानी और है?
आप क्या दिखला रहे हैं सन्न
यह हमारा रंग धानी और है।
प्रान प्रीतम ने जो लेना आपको।
उनमें कुछ राजे निहानी और हैं।।

उपरोक्त पदों में यह सर्वमान्य सत्य है कि कृष्ण ने ऊधो को ज्ञान के अभिमान को नष्ट करने के लिए भेजा था। जिस पर प्रीतम जी का ज्ञान के ऊपर कैसा कटाक्ष किया है, दानी एक बार जो चीज देता है पुनः वापिस नहीं लेता जिस पर कवि ने उल्टा ऊधो से प्रश्न कर दिया कि - क्या कोई ऐसा भी दानी है जो देकर फिर से वापिस ले ले।

फिर अन्त में उन्होंने स्पष्ट कर दिया कि प्राण प्रीतम ने जो भेजा आपको उसमें कुछ राज़-ए-निहानी (छिपा हुआ) और है। एक और नमूना देखिए -

रंग पीले पड़ गए जिनके लिए।
वह हरी आए न दो दिन के लिए।
क्यों न कुम्हला जाए राधे सी कली,
क्या यह गम और ऐसी कमसिन के लिए,
हमने क्या बोये थे कांटे कृष्ण को,
बन गए जो हार मालिन के लिए,
शोक सागर डूबते बृज की सजा
देख जाते हफ्ता-इक दिन के लिए
कोई प्रीतम प्रान प्यारे से कहे
अब जियें बृज बाल किस दिन के लिए?

इस कविता में कवि ने जो बृज की दशा का चित्र खींचा है वह अकथनीय है बृज के लोगों के चेहरे मुरझा गये हैं। पीले पड़ गये हैं। राधिका जी कुम्हला गयी हैं। बृज बालायें कहती हैं कि यह सर्वमान्य सत्य है कि बलदाऊ और कृष्ण को जो अक्रूर लिवा कर गए फिर उन्होंने लौटकर बृज की ओर नहीं देखा और बृज बालायें वियोग में अश्रुधारा बहाती रहीं।

प्रीतम जी ने फागें भी लिखी हैं और ऊधो पर ही कटाक्ष किया है - जैसे

ऊधौ कौन सुनै यह आला? निर्गुण ब्रह्म निराला,
हम तो याँ मदहोश पड़े हैं, पीकर प्रेम पियाला,
हम अब छांड़ लाल अम्बर यह क्यों ओढ़ें मृगछाला?
नटखट यह रच रही कुबरी सौत खसम की खाला,
प्रीतम दो सौगात उसी को यह मुद्रा यह माला।

कवि प्रीतम जी ने ऊधौ पर अधिक आक्षेप उठाये हैं जैसे -

ऊधौ यह भी तुम्हें खबर है, कब से वह दिलवर है,
पता न था ब्रह्मा का जब से, वह आशिक हम पर है,
नूतन नटी नेह यह मधुकर दूर प्रेम का घर है
प्रीतम होय फना फिल्ला, तब यह नशा उतरहै,

इस पद में ईश्वर की अनन्तता और अखण्डता की ओर इंगित किया है। जिसमें फनाफिल्लाह को प्रलय होने पर ही यह नशा उतरने का उदाहरण दिया है।

प्रीतम का अन्तिम पद लिखकर मैं इस चर्चा को समापन दे रहा हूँ। प्रीतम जी हिन्दी, उर्दू, फारसी और अंग्रेजी के ज्ञाता थे, उनका जीवन बड़ा सादा और सरल था। उनमें विद्वता कूट-कूटकर भरी थी। अन्त समय में वह राम और कृष्ण के भजन में ही अपना उद्धार समझते थे, जैसा उन्होंने कहा है -

जिनका जनम इश्क में बीता, वे क्या समझें गीता?
जिसने पिये प्रेम के प्याले, वह मदिरा कब पीता?
मट्ठा छाँड़ि दिया औरों को उठा लिया नवनीता।
सगुण स्वरूप कृष्ण को ध्यावें, जिसमें बड़ा सुभीता?
सब जग जाल छाँड़ के प्रीतम, भजो राम और सीता।

इस पद में उन्होंने राम और कृष्ण को भजने और सगुण स्वरूप को मानने पर ज़ोर दिया है और स्पष्ट किया है।

- हनुमान टौरिया के नीचे, छतरपुर 卐

बुन्देली कहरवा

— डॉ. कुँजीलाल पटेल 'मनोहर'

बुन्देली में लम्बे अरसे से कहरवा गीतों का प्रचलन रहा है। यदि इनका संकलन किया जाए तो कहरवा भी लोकसाहित्य की एक सशक्त और महत्वपूर्ण विधा के रूप में हमारे सामने आ सकती हैं। धीरे-धीरे ये कहरवा गीत विलुप्त होते जा रहे हैं। बानगी स्वरूप कुछ कहरवा गीतों के उदाहरण संकलन के रूप में इस प्रकार है -

गोबर के गनेस, आऊ सखी जुरमिल के पूजिये।
नँगड़ा पै गनेस, ढोलक पै बैठीं मांई सारदा।।
बरयाकें मिले, ऐं सी लगी अब छोड़ेना।
मंदिर में धुन होय, बगिया में होबै रामलीला।
सखीं सोरा हजार, बृज में कन्हैया अकेले।
गहरी है खदान, कइयक गुनी गुटका खा गये।
ऐसी कोऊ ना भओ, कर दई विदा लौटा लाउत तो।
ऐंसें मिलियौ यार, जैसें मिले पानी दूध में।
सारी सोरा हांत, राजा चुनरिया में बीद गये।
हम तो तुमसे लगे, तुम तो लगीं और काऊ सें।
गोरी नैना ना मार, भरकें दुनालू चाए मार दे।
गलगलिया छिनार, कब सें पतिव्रता हो गई।
करवा लइयौ ब्याव, मोरे भरोसें रइयौ ना।
बिदतन बिद गये यार, ईसुर ई जाल सें निनोरियौ।
ऐसी मेर ना करौ, मेर की भँजाई नइयाँ काऊ नें।
खेलें रंग की फाग, कै रये कै छींटा परैं ना।
बूँदें पर गई चार, फूल गई मिंदरिया पानी में।
फट जैहैं दोउ गाल, पन्ना कौ चूना बड़ौ तेज है।
भौतऊं खोदी खदान, धन लुट गये हीरा मिले ना।
हंसा कर ले किलोर, जाने कबै रै मर जाने।
दरसन दइयौ भगवान, धरकें मुकुट नये सोनें कै।
पिंजरा के सुआ, सीताराम, सीताराम बोलियौ।

- रेडियो कॉलोनी के सामने, पन्ना रोड, छतरपुर (म.प्र.) 卐

समोच्चारित भिन्न अर्थ के कुछ बुन्देली शब्द

– सुरेन्द्र शर्मा 'शिरीष'

* अनाँर = ऊधम
अनार = फल का नाम
* अपुनों = आपका
अपनों = हमारा
* अबके = आजकल के
अबकें = इस बार
* अरी = झंझट
आरी = दीवाल में बनी जगह
* इस्त्री = कपड़ों का प्रेस
स्त्री = महिला
* औठ = अटपटा
ओंठ = अधर
* कइ = कहा
कई = अनेक
* कँदइया = कृष्ण
कँदइँयाँ = बच्चे को कंधे पर लेना
* कड़ो = कठोर, निकला हुआ
कड़ी = निकलो
* कड़आवो = बाहर आया
कड़याव = कड़ी सहित भोजन
* करो = किया हुआ
करी = कीजिए
* केदार = तीर्थधाम
कैदार = कितनी बार
* कोर = किनारा
कौर = ग्रास, निराला
* खदरा = गड्ढा
खुदरा = फुटकर
* खाजे = मिठाई का प्रकार
खाजै = खा जाएगा
* गट्टक = धागे की पिण्डी
गिट्टक = लड़की का चौकोर टुकड़ा
* गटकवी = गले के नीचे करना (खाना)
गुटकवी = जल के साथ गले उतारना
* गड़ा = जमीन में दफन, गांठों लगा धागा पूजा का
गढ़ा = गड्ढा
* गइ = छाए हुए खपड़ों की पंक्ति
गई = जा चुकी
* गरो = जो घिसा गया हो (चंदन)
गरी = गर्दन
* गड़ो = भूमि में दफन
गढ़ौ = बनाओ, आकृति दो
* गाँने = आभूषण
गानें = गाना है
* गलाव = असह्य सर्दी
गिलाव = कीचड़
* घेरा = गोला
घैरा = बनावटी प्रदर्शन
* चरो = चर लिया, खा लिया
चरौ = चरिए, खाइए
* चिपकवो = शरीर से सटना
चिपटवी = आलिंगन करना, लिपटना
* चुटियाँ = लटों का बँधा रूप
च्योंटियाँ = हाथ के दो नाखूनों से दबाना
* चिरो = चिड़िया
चिरौ = फटा हुआ
* छालो = छप्पर डालिए, छाइए
छालौ = छाला
* छेंको = घेर लो
छेंकौ = खेत की बारी में छोटा सा रास्ता
* जइ = यही
जईं = वहीं
* जे-जे = ये-ये, यह-यह
जै-जै = जयकारा, अभिवादन का ढंग
* जंगला = खिड़की
जंगलात = वन संबन्धी
* जरो = जला, जला हुआ
जरौ = ईर्ष्या करो, जलिए
* जैवी = प्रस्थान, गमन
जेंवी = भोजन करना
* जोरी = लँहगा, एकत्र करो
जोरो = एकत्र किया
* झरो = साफ किया हुआ (स्थान)
झरौ = बरसो
* झारो = झाड़ दिया (डाँटा), भूतप्रेत उतारना
झारौ = झरिया का बड़ा रूप
* टरो = स्थानच्युत
टरौ = यहाँ से जाओ
* टुनइ = नोंक, सिरा
टुनई = जादू करने वाली
* टाँको = टाँक दिया
टाँकौ = बट्टा (मिलावट सोने में)
* टोंकौ = छेद
टोकौ = टोक देना, रोको
* ठनकवी = बुराई हो जाना, झगड़ा होना
ठुनकवी = ठनगन करना
* ठिकाने = सही ढंग, आश्रय
ठिकानें = असलियत बताना, मार डालना
* ठोलें = पैर की ठोकरें
ठौलें = अदद
* डरो = भयभीत
डरौ = डला हुआ
* डरावने = भयानक
डरावनें = डलवाना है
* ड्योड़ी = गृह द्वार पर बनी चौकीदार की जगह
ड्योढ़ी = डेढ़ गुनी
* ढरो = पानी से सींचा हुआ, अनुकृति
ढरौ = कृपा कीजिए
* तरो = तरण हो गया
तरौ = नीचे वाला हिस्सा
* तानों = खींचो
तानौ = ताना बाना का
* दिनार = देने वाला
दिनारू = बड़ी आयु वाला
* दानों = दाना, कण
दाँनों = राक्षस
* दरो = दल दीजिए
दरौ = गड्ढा
* धरो = रखा हुआ
धरौ = विश्वसनीयता, तराजू के पलड़े सम करने का वजन
* ना दैवी = नहीं देना
नां दैवी = गाड़ी में बैल जोतना, कुएं में पात्र औरे वौ
* परो = लेटा हुआ
परौ = लेटौ
* परे = लेटे
परै = हटके, थोड़ा दूर

* पवरे = आए या गए
पवरै = भाड़ में जाए
* पसारी = फैलाओ
पसारो = विस्तार फैलाव
* पारो = लिटाया
पारी = पहरा, लिटाइए, पारा द्रव
* पाँवने = मेहमान
पाँवनें = प्राप्त करना है, लेना है
* पातर = पत्तल
पातुर = वेश्या
* पूरो = सम्पूर्ण
पूरी = (चौक) बनाइए, सम्पूर्ण
* फसाना = कहानी
फँसाना = बंधन में डालना, फाँसना
* फरो = पेड़ का फूल/फल से भर जाना
फरी = फटा हुआ।
* बारे = नन्हे
बारे = सुभीते सुविधायें
* बरो = जलमया
बरी = पानी सींचने हेतु नाली
* बमकावी = उछालना
भमकावी = व्यर्थ बहाना
* वमनाँट = ब्राह्मण वर्ग
बमनोंट = ब्राह्मणों का पुरा
* बेरा = समय
बैरा = बहरा
* बेई = बही, भाँवरों के कच्चे धैला
बैई = वो दी
* बासी = एक दिन पूर्व की बनी, पुरानी
वासी = निवासी
* बाजे = वाद्य
वाजै = बजती है
* बारी = जाति, खेत की बाड़
वारी = कम उम्र की
* बरी = मुक्त
वरीं = बिना तलीं दाल की पकौड़ियाँ
* बाढ़ = सीमा तोड़ पानी बहना
वाड़ = खेत रक्षा हेतु चारों ओर लगाई गई बारी
* भरो = भरा हुआ
भरौ = भरिए, पूर्ण करो, अदा करो
* भावी = पसन्द आना, अच्छा लगना
भाँवी = बिलौना, घुमाफिराकर कहना
* महाराज = ब्राह्मण
महाराजा = तिलकधारी राजा, शासक

* माय = माता
माँय = वहाँ
* माँगो = मँगाया
माँगौ = मँहगा
* माँगे = मँहगे
माँगै = माँगने पर भी
* मो = मुझ
मों = मुँह
* मोरी = मेरी
मौरी = लकड़ी का सिर गट्ठा/ पेंट, पजामें में पाँयने की चौड़ाई
* मौटो = मोटा, दुहरे बदन का
मौटी = काली मिट्टी वाली धरती
* राश = कटी फसल का ढेर
रास = नृत्य (कृष्ण गोपियों का)
* राते = हते
रातै = रात को
* रोए = रो दिये
रोंए = रोम
* लगे = नजदीक, पेड़ पर खिले/फले फूल/फल
लगै = मारो
* लरो = लड़ पड़ा, खूब लड़ा
लरौ = भिड़ो, झगड़ो
* लिबइया = लेने वाला
लिबउआ = विदा कराने को आने वाला

* लवार = झूठा
लिवार = लेने वाला
* लड़यावी = प्यार में नखरे दिखाना या लाड़-प्यार दिखाना
लिड़यावी = ढीला पड़ना, हिम्मत हारना
* सरो = सड़ा हुआ
सरौ = निपटना, बर्बाद होओ
* सादी = सादगीपूर्ण, सरल
शादी = विवाह
* सारी = पत्नी का भाई
सारो = पूर्ण
* साँसों = यथार्थ में, सही में
साँसौ = धातु ढालने का साँचा
* सुनार = सुयोग्य स्त्री
सुनाँर = स्वर्णकार
* सेई = काँटों वाला जंगली पशु
सैई = पालन पोषण की
* हरो = दूर कीजिए, हरा
हरी = हरे रंग का, दूर करो, इत्यादि
* हारो = थका-मांदा, पराजित
हारौ = वचन दो, हार जाओ
* हाँते = पंजा के चिन्ह हल्दी के
हाँतै = हाथ में आना

- आदर्श मार्ग, शुक्लाना
छतरपुर (बुन्देलखण्ड) 卐

बुन्देली विकास संस्थान द्वारा प्रतिवर्ष आयोजित बुन्देली उत्सव आप सबके आर्थिक सहयोग से सम्पन्न होता है, इसमें आपका छोटा से छोटा सहयोग हमारे लिए महत्वपूर्ण होता है। विगत वर्ष संस्थान के मंच से वरिष्ठ स्वतंत्रता संग्राम सेनानी, पूर्व शिक्षा मंत्री श्री काशीप्रसाद महतों ने अपनी पेंशन से प्रति वर्ष बुन्देली उत्सव के आयोजन हेतु ५०१/- रुपये देने की घोषणा की थी। घोषणा के उपरान्त उन्होंने तत्काल ५०१/- रुपये प्रदान किये और इस वर्ष २००८ हेतु भी उन्होंने अपना घोषित आर्थिक सहयोग कार्यालय में स्वतःस्फूर्त पहुँचाया है। ऐसे व्यक्तित्व समाज के लिए प्रेरक हैं। हम आपसे निवेदन करते हैं कि आप भी अपनी आय में से आंशिक राशि इस सांस्कृतिक यज्ञ हेतु समर्पित करने की कृपा करें।

नई–नई पोथीं अपुन के लाने

बुन्देली बसन्त से इस बार से बुन्देलखण्ड अंचल में प्रकाशित नवीन कृतियों के बारे में सूचनात्मक जानकारी देने हेतु यह स्तम्भ प्रारम्भ किया जा रहा है। लेखकों से अनुरोध है कि वे अपने नवीन प्रकाशन की सूचना सम्पादक मण्डल के पास भेजने की कृपा करें। इस वर्ष हमें डॉ. रामनारायण शर्मा झांसी, श्री हरिविष्णु अवस्थी टीकमगढ़ तथा डॉ. गंगा प्रसाद बरसैंया छतरपुर के माध्यम से जिन पोथियों के प्रकाशन की जानकारी मिली है वे निम्नानुसार हैं -

- ❑ **लोकगीतों में १८५७ की जनक्रांति** - डॉ. रामनारायण शर्मा, झांसी, प्रकाशक : राजकीय संग्रहालय, झांसी
- ❑ **बुन्देलखण्ड का राजनीतिक इतिहास सिक्कों में** - डॉ. मोहन लाल गुप्त 'चातक', झांसी, प्रकाशक : राजकीय संग्रहालय, झांसी
- ❑ **मर्दन सिंह** - डॉ. भगवानदास श्रीवास्तव, भोपाल, प्रकाशक : राजकीय संग्रहालय, झांसी
- ❑ **मर्दन सिंह** - श्री ओमप्रकाश 'असर', झांसी, प्रकाशक : राजकीय संग्रहालय, झांसी
- ❑ **बुन्देलखण्ड में सोलह संस्कार** - डॉ. हरिमोहन पुरवार, संध्या पुरवार, प्रकाशक : बुन्देलखण्ड संग्रहालय, भरतचौक, उरई
- ❑ **१८५७ कुछ टेलीग्राम-कुछ दस्तावेज जनपद जालौन** - डॉ. हरिमोहन पुरवार, देवेन्द्र कुमार सिंह, उरई, प्रकाशक : बुन्देलखण्ड संग्रहालय, भरतचौक, उरई
- ❑ **पं. श्रीनिवास शुक्ल अभिनन्दन ग्रन्थ** - प्रकाशक पं. श्रीनिवास शुक्ल अभिनन्दन समिति, छतरपुर
- ❑ **ओनामासी** - विंध्य कोकिल पं. भैया लाल व्यास, छतरपुर, प्रकाशक बुन्देली विकास संस्थान, बसारी छतरपुर
- ❑ **अमरकान्त का कथा साहित्य** - डॉ. बहादुर सिंह परमार, छतरपुर, प्रकाशक : शिल्पायन प्रकाशन, नई दिल्ली
- ❑ **षट्त्रिंशद् भार्गवाणां वेदोपबृंहणे योगस्तेषां परिचयश्च** - डॉ. के.पी. मिश्र, छतरपुर, प्रकाशक, ऋषि गौतम वैदिक शोध संस्थान, छतरपुर
- ❑ **क्यों न मनाएँ प्रेम दिवस** - डॉ. रजनी सक्सेना, छतरपुर, प्रकाशक : जनपरिषद, भोपाल
- ❑ **मौन तुम्हारा** - डॉ. रजनी सक्सेना, छतरपुर प्रकाशक : जनपरिषद, भोपाल
- ❑ **इण्डोनेशिया की लोक कथाएँ** - प्रीता व्यास, छतरपुर
- ❑ **अश्वत्थः सर्व वृक्षाणां** - राकेश व्यास, छतरपुर
- ❑ **प्रेम कौ प्रभाव** - डॉ. दुर्गेश दीक्षित, कुण्डेश्वर, प्रकाशक : बुन्देली साहित्य संस्थान, सागर
- ❑ **अहिंसा विकास** - पं. दुर्गा प्रसाद शर्मा, स्वतंत्रता सेनानी, टीकमगढ़, प्रकाशक : बीरेन्द्र केशव साहित्य परिषद, टीकमगढ़
- ❑ **हिन्दुस्तान हमारा है** - आर.एस. शाक्यवार, टीकमगढ़ प्रकाशक : अजय स्टेशनरी, टीकमगढ़
- ❑ **बुन्देली वीरांगना : रानी लक्ष्मी बाई** - हरि विष्णु अवस्थी, टीकमगढ़ प्रकाशक : सत्येन्द्र प्रकाशन, इलाहाबाद
- ❑ **बच्चे गायें गाँधी गाथा : राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी** - पं. गुणसागर सत्यार्थी, कुण्डेश्वर, प्रकाशक : बैजनाथ प्रकाशन, भोपाल
- ❑ **अपनौ-अपनौ भाग** - डॉ. दुर्गेश दीक्षित, कुण्डेश्वर, प्रकाशक : सत्येन्द्र प्रकाशन, इलाहाबाद
- ❑ **रजनीगंधा : हाइकूसंग्रह** - राजीव नामदेव, राणा लिधौरी, टीकमगढ़, प्रकाशक : सुकीर्ति प्रकाशन, करनाल रोड, कैथल
- ❑ **बुन्देलखण्ड का सामाजिक आर्थिक इतिहास** - डॉ. काशीप्रसाद त्रिपाठी, टीकमगढ़, प्रकाशक : समय प्रकाशन नई दिल्ली
- ❑ **१८५७ के पहले बुन्देलखण्ड में अंग्रेजों से संघर्ष** - पं. हरगोविन्द तिवारी, शाहगढ़, प्रकाशक : राजकीय संग्रहालय झांसी
- ❑ **अनुभव रत्न मंजूषा** - काशी प्रसाद महतों, गढ़ीमलहरा
- ❑ **झांसी में क्रांति (१८५७-८६)** - वीर सिंह परमार, रक्सा, प्रकाशक : शाश्वत शिक्षा शोध संस्थान, रक्सा, जिला झांसी
- ❑ **कहावत कथांजलि** - रमेश गुप्त, प्रकाशक : आदिवासी लोककला अकादमी भोपाल
- ❑ **अज्ञेय से अरुण कमल** - डॉ. सन्तोष तिवारी, सागर, प्रकाशक : भारतीय ग्रन्थ निकेतन नई दिल्ली
- ❑ **नीम का मीठा स्वाद** - डॉ. सन्तोष तिवारी, सागर प्रकाशक : भारतीय ग्रन्थ निकेतन नई दिल्ली

बुन्देली उत्सव २००७ का प्रतिवेदन

— योगेन्द्र प्रताप सिंह बुन्देला 'गुड्डू राजा'

बुन्देली लोक कला और संस्कृति में केन्द्रित सात दिवसीय बुन्देली-उत्सव २००७ का भव्य शुभारम्भ १७ फरवरी २००७ को हुआ। बसारी के महाराजा छत्रसाल स्टेडियम में नेहरू युवा केन्द्र संगठन, नई दिल्ली की राष्ट्रीय उपाध्यक्षा सुश्री मीनाक्षी नटराजन ने ग्यारहवें बुन्देली उत्सव का शुभारम्भ किया। कार्यक्रम की अध्यक्षता विंध्य प्रदेश के पूर्व शिक्षा मंत्री व स्वतंत्रता संग्राम सेनानी श्री काशी प्रसाद मेहतों ने की तथा इस अवसर पर विशिष्ट अतिथि कृषि उपज मण्डी समिति छतरपुर के अध्यक्ष डीलमणि सिंह 'बब्बूराजा' तथा महाराजा महाविद्यालय, छतरपुर के प्राचार्य श्री जी.पी. राजौरे थे।

बुन्देली विकास संस्थान के संरक्षक शंकर प्रताप सिंह 'मुन्नाराजा' ने सर्वप्रथम मुख्य अतिथि का पुष्प गुच्छ से स्वागत किया तथा अन्य अतिथियों का माल्यार्पण कर स्वागत किया, उसके बाद स्वागत करने वालों में शोभालाल गुप्ता अध्यक्ष बुन्देली विकास संस्थान, दीवान त्रिलोक सिंह, भारत कृष्ण देव सिंह, जीतेन्द्र सिंह 'जित्तू', शारदा शुक्ला, देवेन्द्र प्रताप सिंह तथा आयोजन समिति के पदाधिकारी रहे।

बुन्देली विकास संस्थान के संरक्षक मुन्नाराजा ने चिर परिचित अंदाज में स्वागत वक्तव्य देते हुए मुख्य अतिथि तथा अन्य अतिथियों का बुन्देली उत्सव २००७ में पधारने पर आभार व्यक्त किया तथा बुन्देली उत्सव के ग्यारहवें वर्ष में प्रवेश करने पर क्षेत्रीय जनता और सहयोग प्रदान करने वालों का आभार व्यक्त किया।

मुख्य अतिथि सुश्री मीनाक्षी नटराजन ने बुन्देलखण्ड की आन-बान और शान पर गर्व व्यक्त करते हुए कहा कि बुन्देलखण्ड का साहित्य, वीरता, कला बेजोड़ है। यहां की संस्कृति सरस और सम्मानजनक है। महाराजा छत्रसाल, रानी लक्ष्मीबाई और आल्हा-ऊदल बुन्देलखण्ड के पराक्रम और शौर्य के उदाहरण हैं। बात जब कला की हो तो बुन्देलखण्ड की छवि अद्वितीय हैं, इस बुन्देली उत्सव से ग्रामों में छुपी प्रतिभाओं को अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन करने का एक नया मंच मिला है। बुन्देली संस्कृति के संवर्धन और संरक्षण के लिये शंकर प्रताप सिंह 'मुन्नाराजा' बधाई के पात्र हैं। बुन्देली उत्सव के माध्यम से बुन्देलखण्ड की कला और संस्कृति की विरासत को सहेजा और संवारा जा रहा है।

संस्थान के संरक्षक 'मुन्नाराजा' ने कुश्ती (दंगल) प्रतियोगिता का शुभारम्भ पहलवानों का हाथ मिलवाकर किया। उद्घाटन समारोह के उपरांत दंगल प्रतियोगिता प्रारंभ हुई जिसमें मध्यप्रदेश, राजस्थान, उत्तरप्रदेश, बिहार, पंजाब, हरियाणा के प्रसिद्ध पहलवानों ने अखाड़े में दांव आजमाये।

ग्यारहवें बुन्देली उत्सव के दूसरे दिन बसारी स्टेडियम में कबड्डी और वॉलीवाल मुकाबलों की धूम रही, हजारों खेल प्रेमियों की हर्ष ध्वनियों व तालियों की गड़गड़ाहट के बीच खिलाड़ियों ने भी जबरदस्त प्रदर्शन कर सबके मन जीत लिये। आज के मुकाबले खजुराहो क्षेत्र के सांसद डॉ. रामकृष्ण कुसमरिया के मुख्य अतिथ्य में सम्पन्न हुए। कार्यक्रम की अध्यक्षता सुप्रसिद्ध अभिनेता राजा बुन्देला ने की तथा इस अवसर पर विशिष्ट अतिथि के रूप में नगर पालिका परिषद, छतरपुर के अध्यक्ष सरदार प्यारा सिंह, जिला शिक्षाधिकारी एस.पी. सिंह विशेन रहे।

अतिथियों के स्वागत में सपना रंग मंडल बसारी के कलाकारों ने स्वागत गीत प्रस्तुत किया तथा सपना रंग मण्डल के बाल कलाकारों ने दिवारी नृत्य तथा रणप्पा नृत्य की अनूठी प्रस्तुतियां देकर अतिथियों सहित उपस्थित जनसमुदाय का मन मोह लिया। तत्पश्चात मुख्य अतिथि नें ध्वजारोहण कर खेलकूद प्रतियोगिताओं का शुभारम्भ किया।

मुख्य अतिथि सांसद डॉ. रामकृष्ण कुसमरिया ने अपना उद्‌बोधन भाषण देते हुए कहा कि बुन्देली उत्सव के माध्यम से अंचल की कला और संस्कृति को संवारा जा रहा है। इसके लिये मुन्नाराजा बधाई के पात्र हैं, उन्होंने राजा मनु की संज्ञा देते हुए कहा मुन्नाराजा ने मनु बनकर बुन्देली संस्कृति को सुरक्षित किया है। क्षेत्रीय सांसद ने कहा कि मैं बुन्देली उत्सव में पहले भी आना चाहता था लेकिन नहीं आ पाया किन्तु अब मैं प्रतिवर्ष उत्सव में आऊँगा। उन्होंने बुन्देली उत्सव के आयोजन तथा इसके विकास के लिये हर संभव मदद करने का आश्वासन भी दिया तथा १० लाख रुपये देने की घोषणा की और कहा कि पहली किश्त ५ लाख रुपये की तथा बाद में शेष राशि जल्द उपलब्ध करा दी जायेगी। कार्यक्रम की अध्यक्षता कर रहे सुप्रसिद्ध राजनेता राजा बुन्देला ने जोशीले अंदाज में उद्‌बोधन देते हुए इस आयोजन के लिये मुन्नाराजा को बधाई दी तथा कहा कि जब भी बुन्देलखण्ड का इतिहास लिखा जायेगा उसमें मुन्नाराजा का नाम स्वर्ण अक्षरों में लिखा जायेगा, मुन्नाराजा की मेहनत बेकार नहीं जायेगी, यह उत्सव आने वाले समय में सफलता के चरम पर होगा। उन्होंने पृथक बुन्देलखण्ड राज्य बनाने की बात भी बुन्देली कलामंच से की।

बुन्देली उत्सव के तीसरे दिन कबड्डी, वॉलीबाल, रस्साकशी के मुकाबले बहुत ही रोचक रहे। आज ही बुन्देली व्यंजन प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। जिसमें बुन्देलखण्ड के जहां एक ओर प्रचलित व्यंजन बनाये गये वहीं कुछ ऐसे व्यंजन भी बनाये गये जो अब लुप्त होते जा रहे हैं। बुन्देली व्यंजन प्रतियोगिता का शुभारम्भ मुख्य अतिथि अजयपाल सिंह 'राव साहब' ने किया तथा कार्यक्रम की अध्यक्षता कृषि उपज मण्डी समिति छतरपुर के अध्यक्ष डीलमणि सिंह 'बब्बूराजा' ने की। मुख्य अतिथि ने प्रत्येक प्रतियोगियों के स्टॉल में जाकर व्यंजनों का स्वाद चखा और उनका भरपूर आनन्द लिया। इस प्रतियोगिता को मुख्य अतिथि ने अनोखी प्रतियोगिता बताया। उन्होंने आगे कहा कि इस प्रतियोगिता का आयोजन कर बुन्देलखण्ड अंचल के विलुप्त होते व्यंजनों को

बुन्देली उत्सव के माध्यम से परोसकर पुनर्जीवित किया है।

बुन्देली व्यंजन प्रतियोगिता में कई प्रतियोगियों ने हिस्सा लिया। प्रतियोगिता में सैकड़ों प्रकार के बुन्देली व्यंजन परोसे गये। इस प्रतियोगिता के निर्णायकों में अजयपाल सिंह, श्रीमती गीता शर्मा और डॉ. रविन्द्र कुमार तिवारी ने विजेता का चयन व्यंजन के स्वाद, सजावट, साफ सफाई तथा प्रस्तुतिकरण के आधार पर किया। जिसमें कु. श्वेता अग्रवाल को प्रथम तथा सोनिया गुप्ता को द्वितीय तथा ज्योति अग्रवाल को तृतीय स्थान प्राप्त हुआ।

बुन्देली संस्कृति के कलामंच पर सांझ ढलते ही स्कूली बच्चों ने अपनी बुन्देली संस्कृति पर आधारित मनमोहक प्रस्तुतियों से उपस्थित हजारों दर्शकों का दिल जीत लिया। इस अवसर पर कार्यक्रम के मुख्य अतिथि श्री भरत पाठक महासचिव दीन दयाल शोध संस्थान, चित्रकूट ने दीप प्रज्ज्वलित कर कार्यक्रम का शुभारम्भ किया।

इस अवसर पर कार्यक्रम के मुख्य अतिथि ने कार्यक्रम की सराहना करते हुए कहा कि विपरीत परिस्थितियों के बावजूद बुन्देली उत्सव के ग्यारहवें वर्ष में प्रवेश करने के लिए क्षेत्र की जनता के सहयोग को धन्यवाद देते हुए कहा कि यह बुन्देली संस्कृति की भूमि का सम्मान है, इस क्षेत्र की बुन्देली संस्कृति की रक्षा एवं संवर्धन के क्षेत्र में यहां के सबके प्रिय मुन्नाराजा को श्रेय जाता है। मुख्य अतिथि ने आगे कहा कि यह उत्सव सभी वर्गों का मिलाजुला कार्यक्रम है, इसे खुले मन और खुली आंख से देखकर सभी को सहयोग करना चाहिए।

संस्थान के संरक्षक शंकर प्रताप सिंह 'मुन्नाराजा' ने बुन्देलखण्ड के इतिहास के क्षेत्र में कार्य करने पर श्रीहरिविष्णु अवस्थी, टीकमगढ़ को दीवान प्रतिपाल सिंह बुन्देला स्मृति सम्मान २००७ प्रदत्त किया, जिसमें ग्यारह सौ रुपये की नकद राशि, सम्मान पत्र, शॉल व श्रीफल भेंट किया गया। इस अवसर पर हरिविष्णु अवस्थी ने बुन्देली उत्सव बुन्देलखण्ड अंचल का सबसे बड़ा आयोजन है जिसके लिये मुन्नाराजा एवं आयोजन समिति बधाई के पात्र हैं उन्होंने आगे कहा कि महाराजा छत्रसाल के साहित्य को संकलित व संपादित करके पुनः प्रकाशन की आवश्यकता है, जिसे बुन्देली विकास संस्थान प्रकाशित करे।

बुन्देली पर आधारित कार्यक्रम में समूह नृत्य में मिल्ली एण्ड नीनो ग्रेंडिस प्रायमरी स्कूल, बरियापुर राजनगर ने प्रथम पुरस्कार प्राप्त किया तथा अपनी प्रस्तुति से सभी दर्शकों का मन मोह लिया। इसी प्रकार द्वितीय पुरस्कार सपमा रंग मण्डल, बसारी के कलाकारों ने प्राप्त किया। एकल गायन की प्रस्तुति में आदर्श जोशी, बकस्वाहा ने प्रथम स्थान अर्जित किया तथा रामकुंवर पटेल, गुलैंदयापुरवा नें द्वितीय स्थान प्राप्त किया - समूह गायन में राजा बलवन्त सिंह संगीत महाविद्यालय, राजनगर को प्रथम तथा राजा बलवन्त सिंह संगीत महाविद्यालय खजुराहो को द्वितीय पुरस्कार से नवाजा गया, वहीं बुन्देली पोषाक प्रतियोगिता में गौरव राय को प्रथम तथा द्वितीय पुरस्कार राजेश अग्रवाल को प्रदान किया गया। एकल नृत्य में कनैरादेव सागर की कु. वन्दना ने अपनी प्रस्तुति से दर्शकों का दिल जीत लिया। नाटकों की प्रस्तुति में शा. उच्च. माध्यमिक विद्यालय, गंज को प्रथम स्थान प्राप्त हुआ तथा शा.उच्च.मा. विद्यालय बसारी को द्वितीय पुरस्कार प्रदान किया गया।

बुन्देली उत्सव की चौथी शाम को नाटक प्रतियोगिताओं का मंचन किया गया जिसमें प्रथम पुरस्कार सपना रंग मण्डल, बसारी को भ्रूण हत्या, महिला अत्याचार, दहेज प्रथा जैसे मुद्दे को लेकर उनके द्वारा प्रस्तुत 'ना मारी रे' को दिया गया तथा द्वितीय पुरस्कार अबलम्बन थियेटर, पन्ना के 'कथा उजाले की' के मन को दिया गया। प्रबोध रंग मंडल, खजुराहो के कलाकारों ने वर्तमान राजनीति, देश में फैले व्यापक भ्रष्टाचार को उजागर करने तथा जनचेतना लाने जैसे गंभीर विषय पर विशेष प्रस्तुति "सैंया भये कोतवाल" नाटक का मंचन किया जिसका दर्शकों तथा अतिथियों ने खूब आनन्द उठाया। हिमालय जनसेवा समिति, अल्मोड़ा (उत्तरांचल) के कलाकारों ने सरस्वती वंदना तथा कृषि नृत्य की विशेष प्रस्तुति दी। इसी तरह कछयाई गायन में महोबा के राजाराम कुशवाहा एवं साथियों को प्रथम तथा छत्रसाल चौराहा बजरंग मंडल, बसारी को द्वितीय पुरस्कार दिया गया। चमरयाई (गम्मत) बैठक में लक्ष्मन अहिरवार एवं साथी श्यामरीपुरवा को प्रथम स्थान प्राप्त हुआ तथा गनपत अहिरवार व साथी, गुंदारा को द्वितीय स्थान प्राप्त हुआ। कार्यक्रम देर रात तक चलता रहा दर्शकों के साथ अनेक गणमान्य नागरिक भी मौजूद रहे।

बुन्देली उत्सव के चौथे दिन कबड्डी, बॉलीबॉल और चौपर के सेमी फायनल/फायनल मैच खेले गये। सभी खेलों का मुकाबला बहुत ही रोचक रहा। खेले गये कबड्डी के महिला वर्ग का फायनल जबलपुर और रहली सागर की टीमों के बीच खेला गया बहुत ही रोचक मुकाबले में जबलपुर की टीम विजयी रही। कबड्डी के ही पुरुष वर्ग में बरेठी और सागर के बीच फायनल मैंच खेला गया जिसमें सागर की टीम विजयी रही। वहीं बॉलीबॉल का पहला सेमीफाइनल बांदा हॉस्टल तथा लालगांव रीवा के बीच तथा दूसरा सेमीफायनल बीथराई और गौयरामुगली के बीच हुआ जिसमें पहला बांदा हॉस्टल ने तथा दूसरा बीथराई दमोह ने जीत आज ही बॉलीबाल का फायनल मैच बीथराई दमोह और बांदा हॉस्टल के बीच हुआ जिसमें संघर्षपूर्ण मुकाबले में बांदा हॉस्टल की टीम विजयी रही।

बुन्देली उत्सव २००७ के पांचवें दिन बैलगाड़ी दौड़ का आयोजन किया गया जिसमें हजारों ग्रामीण दर्शकों ने अपने परिवार सहित इस रोमांचक दौड़ का लुफ्त उठाया। बसारी ग्राम के समीप राष्ट्रीय राजमार्ग के किनारे आयोजित इस दौड़ को विदेशी पर्यटकों ने भी देखा।

इस प्रतियोगिता में कुल ६ चक्र हुए जिसमें २७ प्रतियोगियों ने भाग लिया। इसके बाद सेमीफायनल हुआ, तत्पश्चात् फायनल दौड़ सम्पन्न हुई। ग्यारहवें बुन्देली उत्सव का मुख्य आकर्षण बैलगाड़ी दौड़ के बेहद रोमांचक मुकाबले में श्यामलाल नायक ग्राम निवारी ने प्रथम स्थान प्राप्त किया जबकि दूसरे स्थान पर कोमल यादव बंधियन रहे, तीसरा स्थान राजा पटेल लुगासी ने पाया। बुन्देली विकास संस्थान के संरक्षक शंकर प्रताप सिंह 'मुन्नाराजा'

ने प्रथम स्थान पर आये श्यामलाल नायक ग्राम निवारी को एक सुसज्जित गाड़ी तथा २१००/- रुपये, द्वितीय स्थान पद रहे कोमल यादव बंधियन को २१००/- रुपये तथा तीसरे स्थान पर रहे राजा पटेल लुगासी को ११००/- रुपये, इसके अलावा अच्छे बैलों की जोड़ी को ११००/- रुपये तथा सुसज्जित बैलगाड़ी को ११००/- रुपये का पुरस्कार प्रदान किया। बैलगाड़ी की इस रोमांचक दौड़ को देखने हजारों की संख्या में दर्शकगण तथा विदेशी सैलानियों ने भी इस अनोखी दौड़ का भरपूर आनंद लिया।

ग्यारहवें बुन्देली उत्सव की पांचवी संध्या पर बुन्देलखण्ड की विभिन्न लोक परम्पराओं एवं लोक संस्कृति पर आधारित गायन एवं नृत्य आदि की प्रतियोगिताएं हुई। आज के कार्यक्रम का शुभारम्भ मुख्य अतिथि पवई क्षेत्र के विधायक बृजेन्द्र सिंह बुन्देला ने किया तथा कार्यक्रम की अध्यक्षता श्री गंगाप्रसाद बरसैंया ने की एवं विशिष्ट अतिथि के रूप में जिला पंचायत अध्यक्ष वीर सिंह राजपूत, अजयवीर सिंह बमरी, हरगोविन्द विश्व, लखनऊ विश्वविद्यालय के प्रो. कमान सिंह, लल्लन सिंह अधीक्षण यंत्री, विद्युत मण्डल छतरपुर उपस्थित रहे। मुख्य अतिथि ने अपने उद्‌बोधन में कहा कि यह सफल आयोजन आज इस मुकाम पर जा पहुँचा है जहां पर उसकी प्रतिष्ठा और सम्मान का अपना गौरवशाली इतिहास आम जनमानस के मन मस्तिष्क में समाहित हो गया है। इस आयोजन को राजनीति से जोड़कर नहीं देखना चाहिए तथा सभी को मिलकर सहयोग करना चाहिए क्योंकि इस उत्सव के माध्यम से इस अंचल की छुपी हुई प्रतिभाओं को अपनी कला प्रर्शन का मंच मिला है। मुख्य अतिथि ने आगे कहा कि जिस तरह राजस्थान, उत्तरप्रदेश एवं अन्य राज्यों के लोकनृत्यों, लोकगायन को राष्ट्रीय एवं अर्न्तराष्ट्रीय पहचान मिली, उसी तरह इस अंचल के लोकनृत्यों एवं लोक गायनों को इस स्तर तक पहुंचाने का कार्य बुन्देली उत्सव के माध्यम से किया जा रहा है। इसके लिये संस्थान के संरक्षक शंकर प्रताप सिंह 'मुन्नाराजा' एवं आयोजन समिति बधाई के पात्र हैं। मुझे आज मुख्य अतिथि के रूप में आमंत्रित किया गया यह मेंरे लिए सौभाग्य की बात है। मुख्य अतिथि ने कार्यक्रम के आरम्भ में महाराजा छत्रसाल के चित्र पर माल्यार्पण किया तथा दीप प्रज्ज्वलित किया तत्पश्चात् बुन्देली विकास संस्थान के पदाधिकारियों दीवान त्रिलोक सिंह, शोभालाल गुप्ता, देवेन्द्र प्रताप सिंह, भारतकृष्ण देव सिंह, जीतेन्द्र सिंह, लखन दुबे, शारदा शुक्ला ने माल्यार्पण कर मुख्य अतिथि का स्वागत किया। कार्यक्रम की अध्यक्षता कर रहे डॉ. गंगा प्रसाद बरसैंया ने अपने उद्‌बोधन में कहा कि बुन्देली उत्सव सफलता के १० वर्ष पूर्ण कर चुका है एवं आगे भी यह उत्सव सफलता की नई ऊँचाइयां तय करेगा क्योंकि इस उत्सव के माध्यम से कला, संस्कृति एवं साहित्य का संरक्षण व संवर्धन हो रहा। उन्होंने आगे कहा कि कला, साहित्य और संस्कृति किसी दल विशेष की धरोहर नहीं होती यह सारे समाज की धरोहर होती है, इसे जो दलगत दृष्टि से देखते हैं उनकी दृष्टि खंडित होती है और वे समाज का नुकसान करते हैं।

कार्यक्रम की शुरुआत बुन्देलखण्ड की भूली बिसरी गायन एवं नृत्य की उन्नीस लोककलाओं ने 'बुन्देली उत्सव' के मंच पर पूरी रात अपना जलवा दिखाया। गांव-देहात के तमाम कलाकारों ने अपनी प्रतिभा के बलबूते दिवारी, रावला, दलदल घोड़ी, फागें, ख्याल, कहरवा, लमटेरा, गारी, बनरे, सैर आदि को पुनर्जीवित किया। बुन्देलखण्ड का प्रारम्भिक एवं विलुप्त हो रहे सैर की प्रस्तुति गुरु परमानन्द सैर पार्टी, छतरपुर से उपस्थित जनसमुदाय हृदय से भाव विभोर हुआ, ख्याल की प्रस्तुति तो इतनी मनमोहक रही कि निर्णायक भी समय का ख्याल नहीं रख पाये छतरपुर के धनीराम वर्मा एवं साथी ने देर रात तक समां बांधने का सफल प्रयास किया, जिसके लिये उसे प्रथम स्थान प्राप्त हुआ तथा ग्राम पचपहरा की लल्लन भास्कर ख्याल पार्टी को द्वितीय स्थान प्राप्त हुआ। बुंदेलखण्ड अंचल के गांव-गांव में घर-घर में शादी विवाह के मौके पर गायी जाने वाली गारी को सुनकर दर्शक भी मंच के नीचे थिरक उठे, ऐसा लगा मानो कोई विवाह का मंडप हो गारी गायन में बजरंग मण्डल, बसारी को प्रथम तथा संत शिरोमणि समिति, दमोह को द्वितीय स्थान प्राप्त हुआ। रावला एक ऐसी विधा है जो वर्तमान परिदृश्य में कहीं भी देखने को नहीं मिलती है ग्राम बसारी के बजरंग मण्डल ने अपनी ऐतिहासिक प्रस्तुति में शमां बांधा तथा प्रथम स्थान प्राप्त हुआ इसी विधा में देवीदीन अहिरवार व साथी, निवाड़ी को दूसरा स्थान प्राप्त हुआ। बनरा में भी बसारी के बजरंग मण्डल बनाा पार्टी ने यह साबित कर दिया कि हम आयोजक ही नहीं उत्कृष्ट कलाकार भी हैं। जिसके लिये उन्हें प्रथम तथा वन्दना लोक कला मण्डल, कनैरादेव सागर को बनरा गायन में दूसरा स्थान प्राप्त हुआ। लमटेरा में जय दुर्गा मण्डल, भवानीपुरा ने प्रथम स्थान प्राप्त कर ऐसा भावपूर्ण माहौल बनाया कि उपस्थित जनसमुदाय भी मानो बाबा की दरबार की ओर प्रस्थान कर रहा हो तथा दूसरे स्थान पर सपना रंग मण्डल बसारी रहा। दलदल घोड़ी नृत्य ने बुन्देली के साथ भारतीय संस्कृति के पुराने सार्थक तथ्यों की प्रस्तुति के साथ मनोरंजन भी किया। दलदल घोड़ी नृत्य में बजरंग मण्डल, बसारी ने प्रथम स्थान तथा ग्राम कर्री के गढ़ू अहिरवार एवं साथियों को दूसरा स्थान प्राप्त हुआ। कहरवा गायन में बजरंग मण्डल बसारी को प्रथम तथा गणेश लोक कला मण्डल, बकस्वाहा को दूसरा स्थान प्राप्त हुआ। इसी तरह दिवारी नृत्य में श्री मतंगेश्वर लोक कला मण्डल, खजुराहो को प्रथम तथा नटराज जन कल्याण समिति, बड़ोखर बांदा एवं राम बहादुर निषाद, रीवन हमीरपुर उ.प्र. को सामूहिक रूप से द्वितीय स्थान प्राप्त हुआ। बुन्देलखण्ड के लोकगायन तथा लोकनृत्य के अलावा आज के विशेष आकर्षण चरकुला कला केन्द्र, मथुरा के कलाकारों द्वारा पं. मुरारी लाल शर्मा के नेतृत्व में ब्रज की वंदना, मयूर नृत्य तथा विश्व विख्यात ब्रज की होली की आकर्षक प्रस्तुति से पर्यटक ग्राम बसारी के भव्य स्टेडियम में मौजूद हजारों दर्शकों का मन मोह लिया। इसके अतिरिक्त नवप्रयास कला केन्द्र सागर के कलाकारों द्वारा बरेदी नृत्य की विशेष प्रस्तुति भी दर्शकों को रोमांचित कर गई। मुख्य अतिथि एवं संस्थान के संरक्षक ने श्री सीताराम चतुर्वेदी 'अटल' को साहित्य

के क्षेत्र में कार्य करने पर राव बहादुर सिंह स्मृति सम्मान २००७ प्रदत्त किया गया जिसमें सम्मान पत्र के साथ शॉल, श्रीफल व ११००/- रुपये नकद राशि प्रदत्त की गई। कार्यक्रम के अंत में विजेताओं को पुरस्कार प्रदान किये गये। कार्यक्रम का संचालन श्री विष्णु अरजरिया ने कार्यक्रम में निर्णायक की भूमिका गुणसागर सत्यार्थी, कुण्डेश्वर, श्री नवलकिशोर सोनी मायूस, श्री चन्द्रभूषण तिवारी ने निभाई।

बुन्देली उत्सव के छठवें दिन अश्वनृत्य प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। अश्वनृत्य प्रतियोगिता का उद्घाटन आज के मुख्य अतिथि जिला पंचायत छतरपुर के अध्यक्ष श्री वीरसिंह राजूपत ने किया। रोमांच और मनोरंजन से भरी प्रतियोगिता में म.प्र. और उ.प्र. के ५० प्रतियोगियों ने घोड़ों के अनूठे करतब दिखाये। घोड़ों के करतब देखकर खचाखच भरा स्टेडियम तालियों की गड़गड़ाहट से गूँज उठा। दर्शकों ने इस प्रतियोगिता का खूब लुफ्त उठाया।

अश्वनृत्य प्रतियोगिता में प्रतियोगियों को पुरस्कृत किया गया इस प्रतियोगिता में प्रथम स्थान प्राप्त करने वाले ग्राम सुरा के धूप सिंह को ५१००/- रुपये, द्वितीय स्थान प्राप्त करने वाले प्रेमनारायण अवस्थी ग्राम नैगुवां को ३१००/- रुपये तथा तृतीय स्थान प्राप्त करने वाले अर्जुन पाल ग्राम गंज को २१००/- रुपये की नगद राशि पुरस्कार स्वरूप प्रदान की गई इसके अलावा घुड़सवार की साज सज्जा के लिये प्रथम स्थान प्राप्त करने वाले ग्राम गंज के अर्जुन पाल को २१००/- रुपये, द्वितीय स्थान पर आये कल्याण सिंह ग्राम सैला को ११००/- रुपये तथा अच्छे घोड़े की साज सज्जा के लिए प्रथम आये नैगुवां निवासी प्रेमनारायण अवस्थी २१००/- रुपये तथा द्वितीय स्थान पर रहे अर्जुन पाल ग्राम गंज को ११००/- रुपये की राशि पुरस्कार के रूप में प्रदान की गयी। अश्व नृत्य प्रतियोगिता के निर्णायक मण्डल में श्री महेन्द्र सिंह परिहार, अजीम उल्ला खां, हशमत छतरपुरी रहे। प्रतियोगिता का सफल संचालन लोकपाल सिंह परमार ने किया।

बुन्देली उत्सव की छठवीं शाम बुन्देली संस्कृति के लिए महत्वपूर्ण रात रही जिसमें बुन्देलखण्ड की लोक कलाओं की भूली-बिसरी एवं प्रचलित गायन एवं नृत्यों की प्रतियोगिताएं हुई। इन प्रतियोगिताओं में ढिमरयाई, कार्तिक गीत, बहुरूपिया, गोटें, सोहरे, दादरे, बिलवारी, कांडरा, फाग तथा आल्हा गायन की प्रस्तुतियाँ हुई। प्रतियोगिताओं का शुभारम्भ मौदहा क्षेत्र के विधायक कुं. बादशाह सिंह ने किया तथा कार्यक्रम में विशिष्ट अतिथि के रूप में उद्योगपति श्री सुरेश जैन उपस्थित रहे।

इस अवसर पर कुँ. बादशाह सिंह ने बुन्देली उत्सव के सतत् आयोजन पर संस्था के संरक्षक एवं पदाधिकारियों को बधाई दी उन्होंने कहा कि यह उत्सव हमारी संस्कृति और साहित्य को सहेजने का कार्य कर रहा है। यह आयोजन भविष्य में भी शिखर तक पहुँचे। बुन्देली उत्सव के माध्यम से हमारे ग्रामों में छुपी प्रतिभाओं को अपनी कला प्रदर्शन के लिए उपर्युक्त मंच मिला है। मुख्य अतिथि कुँ० बादशाह सिंह तथा बुन्देली विकास संस्थान के संरक्षक मुन्ना राजा ने सागर निवासी लक्ष्मी नारायण रजक को लोककला के क्षेत्र में कांड़रा गायन को नई ऊँचाई पर पहुँचाने के लिये डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त स्मृति सम्मान २००७ प्रदत्त किया। इसमें ग्यारह सौ रुपये की राशि, सम्मान पत्र तथा शाल-श्रीफल प्रदत्त कर कलाकारों की सेवाओं को रेखांकित किया जाता।

ओसाका जापान के कलाकारों ने जापानी लोकनृत्य योसाकोई नृत्य की विशेष प्रस्तुति भी दर्शकों को रोमांचित कर गई। आज के कार्यक्रम के अन्तर्गत हुई प्रतियोगिताओं के निर्णायकों नें ढिमरयाई गायन जिसमें कई प्रस्तुतियों के साथ कड़ी प्रतियोगिता रही जिसमें प्रथम स्थान सपना रंग मंडल, बसारी को दिया इसी विधा में द्वितीय पुरस्कार सरमन रैकवार व साथी, गढ़ीसेमरा को दिया गया। सोहरे गायन में भी कई प्रस्तुतियां हुई जिसमें जागृत महिला मण्डल को प्रथम पुरस्कार तथा छत्रसाल चौराहा बजरंग मण्डल को दिया गया। दादरे गायन में बजरंग कला मण्डल, बसारी की पार्टी को उनकी अद्‌भुत प्रस्तुति के लिए प्रथम पुरस्कार दिया गया तथा इसी विधा में कबीर समहित समूह को द्वितीय स्थान प्राप्त हुआ। कार्तिक गीत गायन में बजरंग मण्डल बसारी को प्रथम एवं करन सिंह यादव व साथी, अस्तारी टीकमगढ़ को द्वितीय स्थान प्राप्त हुआ। इसी तरह फाग गायन में बसारी के कबीर समहित समूह को प्रथम तथा धीरवीर मोती व साथियों, पन्ना को दूसरा स्थान मिला। आल्हा गायन में राम अवतार सिंह व साथी, मवईखुर्द महोबा ने प्रथम तथा दीनानाथ सिंह नागर व साथी, धमना फतेहपुर को द्वितीय स्थान प्राप्त हुआ। इसी तरह गोट गायन में प्रभुदयाल पाल लिधौरा टीकमगढ़ को उनकी अनोखी प्रस्तुति के लिए प्रथम तथा दल सिंह व साथी, आरी महोबा को द्वितीय स्थान प्राप्त हुआ। इसी तरह बहुरूपिया, कांडरा तथा बिलवारी की प्रस्तुतियों ने हजारों दर्शकों का मन मोह लिया। बहुरूपिया में कबीर समहित समूह को मनोरंजक प्रस्तुति के लिये प्रथम स्थान प्राप्त हुआ। बिलवारी गायन में बजरंग मण्डल, बसारी के कलाकारों ने अपनी मनमोहक प्रस्तुति देकर प्रथम स्थान प्राप्त किया तथा श्रीमती मत्थी बाई व साथी को दूसरा स्थान प्राप्त हुआ। कार्यक्रम के अन्त में विजेताओं को पुरस्कारों से नवाजा गया। आज के कार्यक्रम में निर्णायक डॉ. ओमप्रकाश चौबे, सागर, श्री सुरेन्द्र शर्मा 'शिरीष' छतरपुर, तथा बद्री प्रसाद खरे 'निरंकार' रहे। कार्यक्रम का संचालन डॉ. विष्णु अरजरिया, आनन्द शर्मा, जगदीश गंगेले तथा डॉ. बहादुर सिंह परमार ने किया।

ग्यारहवें बुन्देली उत्सव का समापन समारोह बड़ामलहरा क्षेत्र के विधायक कपूर चन्द घुवारा के मुख्य आतिथ्य में सम्पन्न हुआ। समापन समारोह में महाराज टीकमगढ़, मधुकर शाह जू, कृषि उपज मण्डी समिति छतरपुर के अध्यक्ष डीलमणि सिंह 'बब्बूराजा', अध्यक्ष वन समिति जिला पंचायत पुष्पेन्द्र सिंह 'पप्पू राजा', डॉ. अरविन्द पटैरिया अध्यक्ष जनभागीदारी समिति, महाराजा महाविद्यालय, छतरपुर, म.प्र. विद्युत मण्डल के अधीक्षण यंत्री लल्लन सिंह, डॉ. विष्णु पाठक साहित्यकार सागर, स्वतंत्रता संग्राम सेनानी परमलाल अग्रवाल, डॉ. शंकर लाल शुक्ल भाण्डेर दतिया, डॉ. सुरेन्द्र तिवारी आकाशवाणी अधिकारी भोपाल, अनुपम अग्रवाल,

प्रेस क्लब के संरक्षक डॉ. रज्जब खां, डॉ. अजय दोसाज, सुशील दुबे आदि विशिष्ट अतिथि के रूप में उपस्थित रहे। कार्यक्रम के शुभारम्भ में सर्वप्रथम मुख्य अतिथि तथा अन्य अतिथियों ने मां सरस्वती तथा महाराजा छत्रसाल के चित्र पर माल्यार्पण किया तत्पश्चात दीप प्रज्ज्वलन किया। कार्यक्रम में बुन्देली विकास संस्थान के संरक्षक शंकर प्रताप सिंह बुन्देला 'मुन्नाराजा' तथा संस्था के पदाधिकारियों ने अतिथियों का पुष्प मालाओं से स्वागत किया। संस्थान के सचिव जीतेनद्र सिंह जित्तू नें अतिथि का स्वागत बैच लगाकर किया।

स्वागत वक्तत्व देते हुए संस्थान के संरक्षक शंकर प्रताप सिंह 'मुन्नाराजा' ने कहा कि बुन्देली-उत्सव में पधारे अतिथियों का स्वागत करते हुए कहा कि यह उत्सव आपका सबका मनोरंजन करता है साथ ही साथ हमारी संस्कृति का रक्षा भी करता है, यह आयोजन उन ग्रामीण कलाकारों को अपनी प्रतिभा प्रदर्शन का भी अवसर देता है जिन्हें कहीं मौका नहीं मिलता। उन्होंने आगे कहा कि इस उत्सव के माध्यम से बुन्देली संस्कृति, साहित्य, पारम्परिक खेलकूद एवं बुन्देली कला को पुनर्जीवित करने का कार्य किया जा रहा है। बुन्देली उत्सव के आयोजन के लिये समस्त सहयोगियों, ग्राम वासियों तथा मीडिया के लोगों के प्रति आभार व्यक्त किया।

बुन्देली उत्सव में प्रतिवर्ष इतिहास के क्षेत्र में कार्य करने वालों को बुन्देली विकास संस्थान की ओर से दिया जाने वाला 'राव बहादुर सिंह स्मृति सम्मान २००७' भाण्डेर जिला दतिया निवासी डॉ. शंकर लाल शुक्ल को बुन्देली में अनेक ग्रंथों का प्रणयन करके भाषा की महती सेवा जैसे महत्वपूर्ण कार्य को देखते हुए प्रदत्त किया गया। सम्मान पत्र का वाचन आनन्द शर्मा ने किया। सम्मान में ग्यारह सौ रुपये की नगद राशि, सम्मान पत्र, शाल, श्रीफल व प्रतीक चिन्ह डॉ. शंकर लाल शुक्ल को मुख्य अतिथि व विशिष्ट अतिथि द्वारा प्रदत्त किये गये। इस अवसर पर सम्मानित डॉ. शंकर लाल शुक्ल ने बुन्देली विकास संस्थान का आभार व्यक्त करते हुए कहा कि इस एकमात्र संस्थान ने मेरी दीर्घकालिक सेवाओं का मूल्यांकन करते हुए पुरस्कृत किया है, साहित्य, इतिहास, कला और संस्कृति की इस पवित्र भूमि में यह सम्मान पाकर मैं कृतघ हूँ। आज ही १९३१ के चरण पादुका स्वतंत्रता के आंदोलन में अपने प्राणों की आहूति देने वाले अमर शहीदों के परिजनों को सम्मानित किया गया जिसमें अमर शहीद रघुराज सिंह ठाकुर ग्राम कटिया के पुत्र रामस्वरूप सिंह ठाकुर को सम्मानित किया गया सम्मान में ग्यारह सौ रुपये की नगद राशि, सम्मान पत्र, शाल, श्रीफल व प्रतीक चिन्ह प्रदत्त किया गया। आज ही बुन्देली कलामंच से प्रेस क्लब, छतरपुर द्वारा वरिष्ठ पत्रकार स्व. रामानन्द जौर व स्व. देवेन्दु पहारिया स्मृति सम्मान पत्रकारिता के क्षेत्र में उत्कृष्ट कार्य करने के लिये प्रदत्त किया गया। स्व. देवेन्दु पहारिया स्मृति सम्मान दैनिक शुभ भारत के प्रधान सम्पादक श्याम किशोर अग्रवाल को तथा स्व. रामानंद जौर स्मृति सम्मान टीकमगढ़ के वरिष्ठ पत्रकार हरगोविन्द त्रिपाठी को मुख्य अतिथि तथा संस्थान के संरक्षक शंकर प्रताप सिंह 'मुन्नाराजा' द्वारा प्रदत्त किया गया।

बुन्देली उत्सव के अवसर पर प्रतिवर्ष प्रकाशित होने वाली स्मारिका 'बुन्देली बसन्त' का विमोचन अतिथियों द्वारा किया गया विमोचन अवसर पर पत्रिका संपादक डॉ. बहादुर सिंह परमार, डॉ. हरिसिंह घोष तथा डॉ. कुँजीलाल पटेल उपस्थित रहे।

समापन के अवसर पर मुख्य अतिथि विधायक कपूर चन्द्र घुवारा ने अपने उद्‌बोधन में कहा कि मैं इस उत्सव से जुड़ा रहा हूँ। बुन्देली उत्सव के माध्यम से बुन्देली संस्कृति और परंपराओं का संरक्षण व संवर्धन तथा विकसित करने तथा जन-जन तक पहुंचाने का जो कार्य मुन्नाराजा ने किया है उसकी जितनी प्रशंसा की जाये वह कम है। बुन्देलखण्ड की संस्कृति समृद्धशाली तथा इतिहास गौरवमयी है। उन्होंने आगे कहा कि बुन्देली उत्सव को सतत् जारी रखने के लिए जो भी मुझसे सहयोग बन पड़ेगा मैं व्यक्तिगत रूप से प्रयास करूंगा तथा शासन से भी इस उत्सव के आयोजन हेतु सहयोग प्रदान कराने का प्रयास करूंगा। उन्होंने आगे कहा कि इस मंच से आज पत्रकारों को सम्मानित किया गया है यह गौरव की बात है पत्रकार ही क्षेत्र के विकास, शासन की योजनाएँ तथा जन प्रतिनिधियों की बात जन जन तक पहुंचाने का कार्य करते हैं।

कार्यक्रम की शुरुआत में राई व बधाई नृत्य की प्रतियोगिता प्रारंभ हुई जिसके आनंद से दर्शक झूम उठे। इसी मंच से सागर के कलाकारों ने बधाई नृत्य, नौरता तथा भगोरिया नृत्य की विशेष प्रस्तुति देकर बुन्देली कला मंच को रोशन किया, विशेष प्रस्तुति के इसी क्रम को सागर के प्रसिद्ध कलाकार चुन्नीलाल रैकवार व शाहगढ़ के पूरनलाल रैकवार ने ढिमरयाई की विशेष प्रस्तुतियां दीं, सपना रंग मण्डल, बसारी के बाल कलाकारों ने भी राई नृत्य की विशेष प्रस्तुति देकर दर्शकों की खूब तालियां बटोरी। राई नृत्यक प्रतियोगिता में पहले स्थान पर जय माँ बगराजन राई पार्टी, दौरिया तथा दूसरे स्थान पर सुखलाल आदिवासी राई पार्टी बसारी रही। इसी तरह बधाई नृत्य में पहला स्थान सपना रंग मण्डल, बसारी को प्राप्त हुआ। प्रतियोगिता में सागर, पन्ना, टीकमगढ़, दमोह, छतरपुर, महोबा की प्रसिद्ध राई तथा बधाई नृत्य के कला मण्डलों ने भाग लिया।

समापन समारोह के कार्यक्रम में निर्णायक मण्डल में डॉ. कैलाश बिहारी द्विवेदी, टीकमगढ़, श्री सुरेन्द्र शर्मा 'शिरीष', डॉ. अवध किशोर जड़िया रहे। कार्यक्रम का संचालन आनंद शर्मा तथा डॉ. विष्णु अरजरिया ने किया। आज के समापन कार्यक्रम के अवसर पर लगभग ३० स ३५ हजार दर्शकों का जनसमूह व विदेशी पर्यटक मौजूद थे। प्रतियोगिता समाप्ति पर विजेताओं को पुरस्कार वितरण किये। इसके साथ ही उत्सव को सात दिवस तक सफलतापूर्वक सम्पन्न कराने के लिए संचालन करने वालों, प्रतियोगिताओं में निर्णायक की भूमिका का सफल निर्वाहन करने पर निर्णायकों को तथा कार्यकर्ताओं को सम्मानित किया गया। रात भर आसमान में रंग बिरंगी आतिशबाजी चलती रही जिसका उपस्थित जनसमुदाय में खूब लुत्फ उठाया। इस तरह सात दिवस तक चला कला और संस्कृति का महापर्व ग्यारहवें बुन्देली उत्सव २००७ का भव्य समापन समारोह सम्पन्न हुआ।

– महलों के पीछे, छतरपुर

BUNDELI VIKAS SANSTHAN BASARI, CHHATARPUR (M.P.)
INCOME & EXPENDITURE FOR THE YEAR 2006-2007

EXPENDITURE	Rs.	Rs. (R)	INCOME	Rs. (R)
Bundeli Utsav Expenses		11,48,945.00	**Grant Received**	
Medical Camp. Exp.	4,000.00		From Jan Sahyog	15,99,200.00
Hasya Kabi Sameelan	21,000.00			
Plantation Expenses	14.780.00		Grant Received from State Govt.	
Child Labour Act Shivir Ex p.	11,580.00		Sanskriti Department	2,00,000.00
Agriculture Training & Seed Di	10,768.00	62,128.00		
Other Expenses			Grant Dakshin Madhya Chetra Nagpur	4,57,600.00
Salary	84,000.00			
Honararium	43,000.00		Interest From Bank	708.00
Audit Fees & Income Tax	3,500.00			
Misc Exp.	7,618.00		Smarika Advertisement	1,53,000.00
Stationary & Printing	8,000.00			
Teaching learning Exp.	11,350.00		Add Excess of Exp Over Income	603,616.00
Ismarika Printing Exp.	50,000.00			
Sangosthi (Meeting)	22,620.00	2,30,088.00		
Anudan Jansikshan Sansthan Chhatarpur		15,72,000.00		
Depriciation		963.00		
TOTAL Rs. :		**30,14,124.00**	**TOTAL Rs.**	**30,14,124.00**

RECEIPTS & PAYMENTS A/C FOR THE YEAR 2006-2007

RECEIPTS	Rs.	Rs. (R)	PAYMENTS	Rs.	Rs. (R)
OPENING BALANCE			**BUNDELI UTSAV EXPENSES**		**1,148,945.00**
Cooperative Bank (46)	9,815.00		Medical Camp. Exp.	4,000.00	
Canara Bank (S/A) 1608	15,09,767.00		Hasya Kabi Sameelan	21,000.00	
Cash in Hand	468.00		Plantation Expenses	14,780.00	
F.D.R. Cooperative Bank	5,00,000.00		Child Labour Act Shivir Exp.	11,580.00	
		2,020,050.00	Agriculture Training & Seed Dis.	10,768.00	**62,128.00**
GRANT RECEIVED					
From Jan Sahyog		15,99,200.00	**OTHER EXPENSES**		
Grant Received from State Govt.			Salary	84,000.00	
Sanskriti Departmet		2,00,000.00	Honararium	43,000.00	
			Audit Fees & Income Tax	3,500.00	
Grant Dakshin Madhya			Misc Exp.	7,618.00	
chetra Nagpur		4,57,600.00	Stationary & Printing	8,000.00	
INTEREST FROM BANK		708.00	Teaching learnng Exp.	11,350.00	
			Ismarika Printing Exp.	50,000.00	
SMARIKA ADVARTISEMENT		1,53,000.00	Sangosthi (Meeting)	22.620.00	**2,30,088.00**
Loan Received			**Building Construction**		**395,600.00**
			Furniture		**3,5000.00**
From Saririk Siksha Mahavidyalaya Basari		4,30,000.00	**Anudan Jansikshan Jansthan Chhatarpur**		**15,72,000.00**
Refund of old Advance		2,50,000.00	**CLOSING BALANCES**		
From Paramalal (Cont)			Cheques In hand	8,78,000.00	
			Co-operative Bank (46)	11,822.00	
			Canara Bank (S/A) 1608	8,195.00	
			Cash In Hand	280.00	
			F.D.R. Canara Bank	8,00,000.00	**20,20,050.00**
TOTAL Rs.		**51,10,558.00**	**TOTAL Rs.**		**51,10,558.00**

BUNDELI VIKAS SANSTHAN BASARI, CHHATARPUR (M.P.)
BALANCE SHEET AS AT 31-3-2007

FUNDS	Rs.	Rs. (R)	ASSETS	Rs.	Rs. (R)
Society Fund			**Fixed Assets**		
As per L.BS	22,62,206.00		Land (As per last B.S.)		3,08,646.00
Less The year	(6,03,616.00)	16,58,590.00			
			Building Construction	3,00,000.00	
Loans & Deposit			Add this year	3,95,600.00	6,95,600.00
Nehru Yuva Club Basari		1,32,216.00			
			Furniture (As per last B.S.)	6,097.00	
Loans Swami Pravanand Homeo College		5,00,000.00	Add this year	3,500.00	9,597.00
			Less Depreciation	(963.00)	8,666.00
Loans Saririk Siksha Mahavidyalaya Basari		4,30,000.00	Adv.to Paramlal Contractor	2,50,000.00	-
			CLOSING BALANCES		
			Cheques In Hand	8,78,000.00	
			Cooperative Bank (46)	11,822.00	
			Canara Bank (S/A) 1608	8,195.00	
			Cash In hand	280,00	
			F.D.R. Canara Bank	8,00,000.00	16,98,297.00
TOTAL Rs.		**27,20,806.00**	**TOTAL Rs.**		**27,20,806.00**

We certify that receipts & Utilization of Funds & Closing Balance (as above) are correct.

AUDIT REPORT

We have checked (enclosed) receipts and utilization a/c and Balance Sheet as on 31-3-2007 if any we certify them as correct.

शोभालाल गुप्ता
अध्यक्ष

जीतेन्द्र सिंह
सचिव

SAGAR, 22-06-2007

R.V. Agrawal
Chartered Accountants